सचित्र तत्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

PART - 1

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

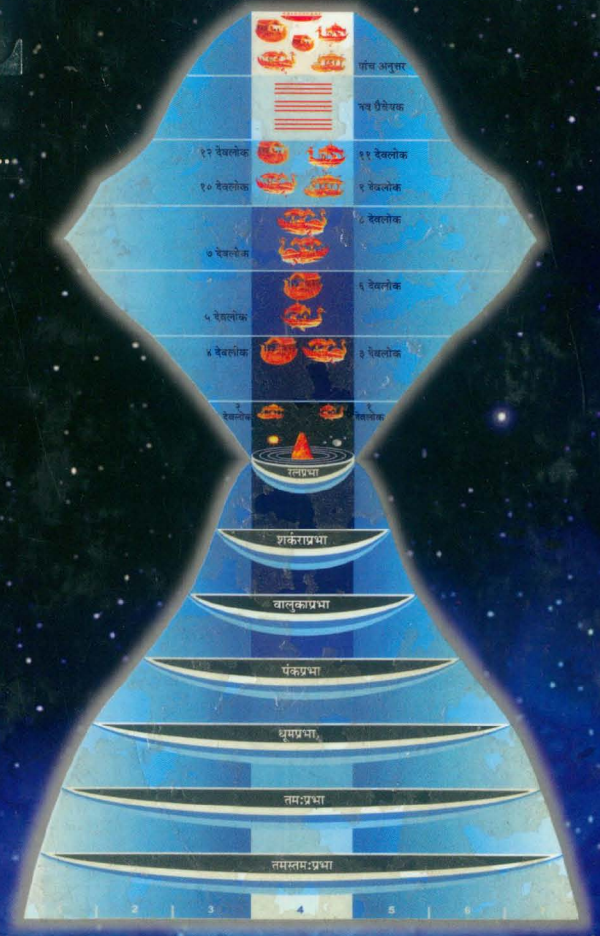

पावन प्रेरणा

प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प. पू. प्रवचन प्रभावक आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

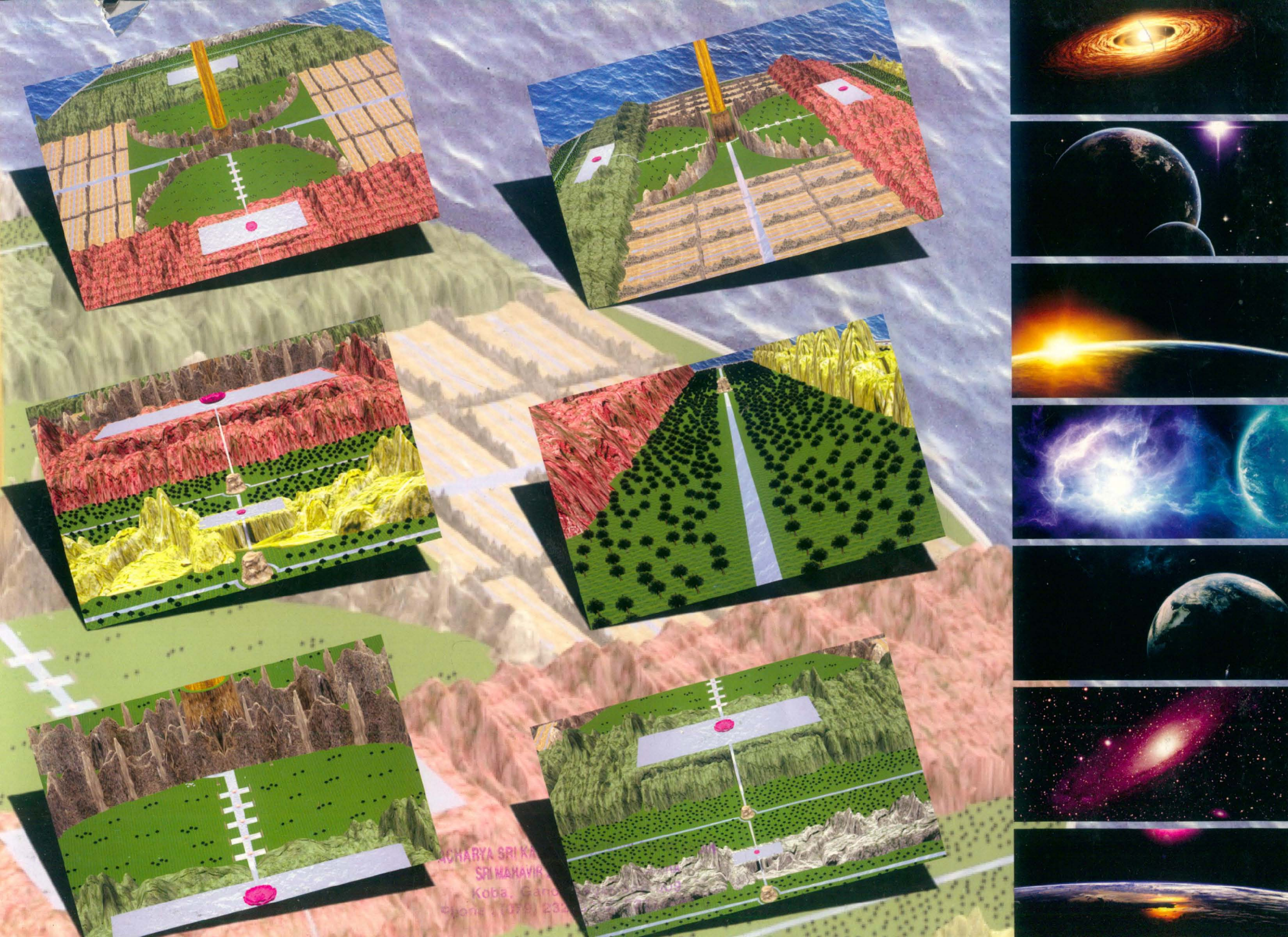

ACHARYA SRI KA
SRI MAHAVIR
Koba, Gand
Phone : (079) 232

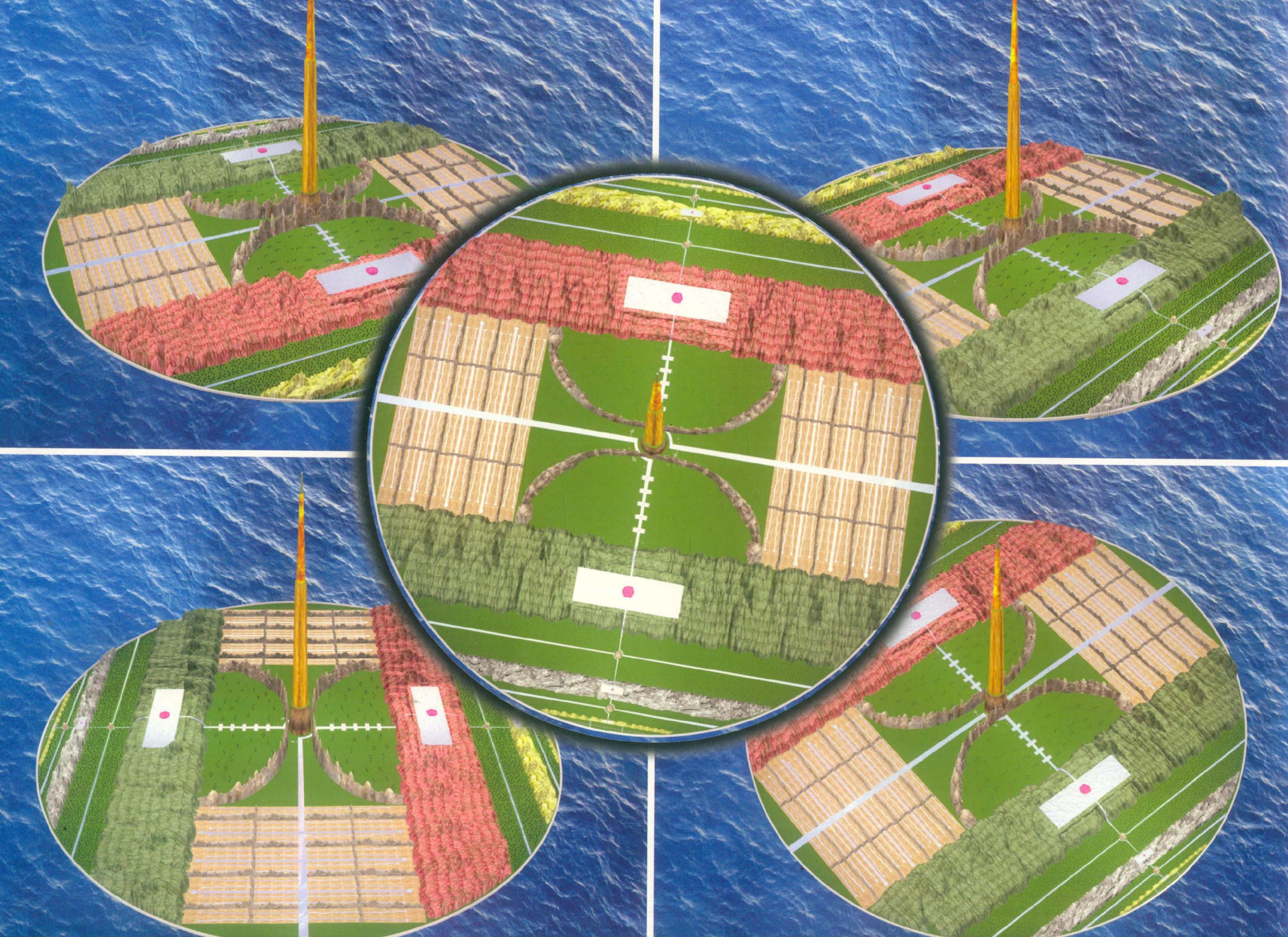

॥ ऐँ नमः ॥ ॥ नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय ॥

॥ श्री तपागच्छाचार्य श्री प्रेम-भुवनभानु-जयघोष-जितेन्द्र-गुणरत्न-रश्मिरत्न-हीररत्नविजय सद्गुरूभ्यो नमः ॥

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

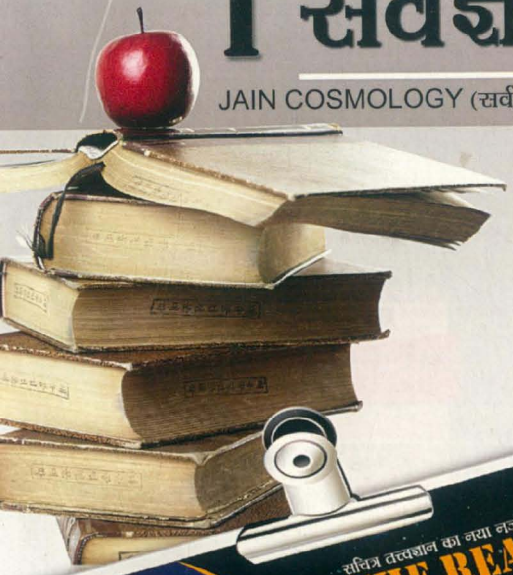

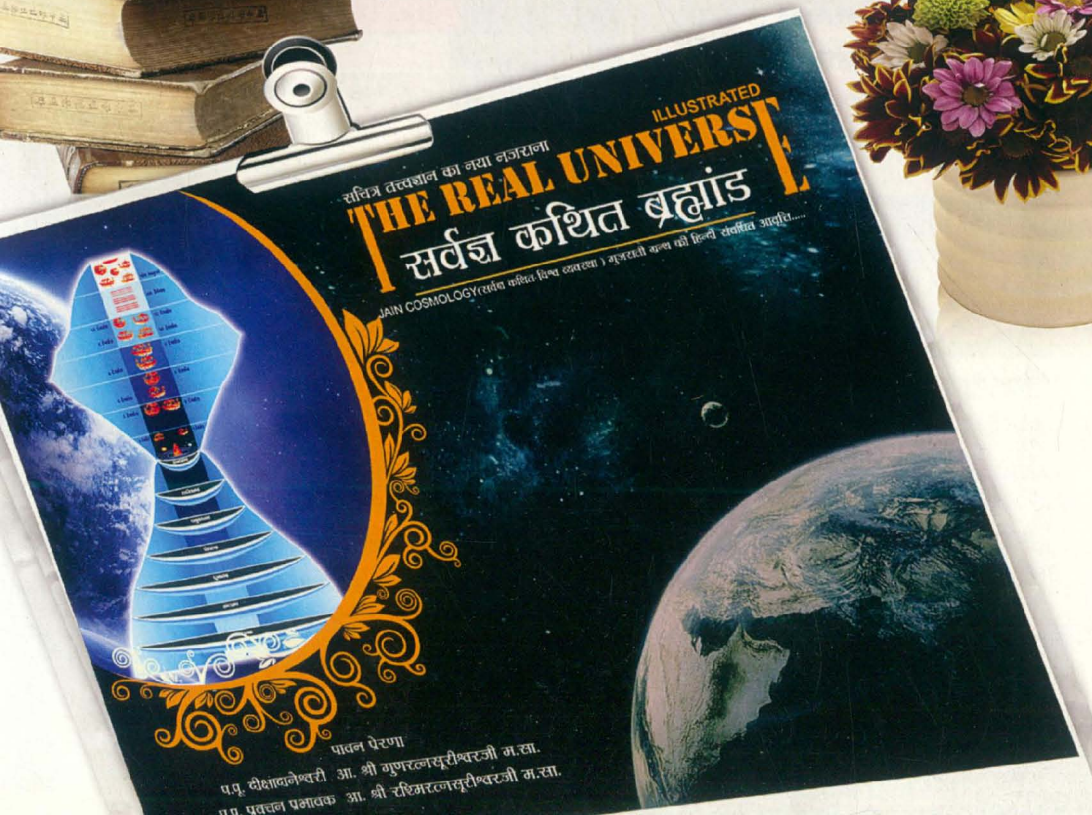

ग्रन्थ की विशेषताएँ

- ८५० से अधिक पृष्ठों में विस्तारित.....
- पांच विभागों में विभक्त एवं आठ द्वारों से सुशोभित हिन्दी आवृत्ति....
- जैनधर्म से संबंधित भूगोल-खगोलादि का सचित्र वर्णन....
- २०० लेखों के ज्ञानार्जन में सहायक ४०० से अधिक थीडी बहुरंगी चित्रों का विशाल संग्रह.....
- ३०० से अधिक आगम - प्रकरण ग्रंथों पर आधारित...
- १५० पृष्ठों में विस्तारित 'जानने जैसी भूमिका' रूप "परिशिष्ट"....
- १०० से अधिक प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियों का अनोखा संकलन....
- तारातंबोल जैसी प्राप्य-अप्राप्य नगरियों का उल्लेख....
- प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक "कृतिसंग्रह"...

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

दिव्याशीर्वाद

162696

सिद्धांतमहोदधि
आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.
युवाशिबिर प्रणेता
आ. श्री भुवनभानुसूरिजी म.
मेवाडदेशोद्धारक
आ. श्री जितेन्द्रसूरिजी म.

शुभाज्ञा-आशिष

सुविशाल गच्छाधिपति
गीतार्थमूर्धन्य
पूज्यपाद आचार्यदेव श्री
जयघोषसूरिजी महाराजा

पावन प्रेरणा

प.पू. दीक्षादानेश्वरी
आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू. प्रवचन प्रभावक
आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू.मु. श्री हीररत्न वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. वर्धमान तपोनिधि
आ.श्री भुवनभानुसूरिजी म.सा.
के शिष्यरत्न
प.पू. पं.श्री पद्मसेन वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. शासन प्रभावक
आ. श्री रत्नाकरसूरिजी म.सा.
के शिष्यरत्न
प.पू.पं.श्री रत्नज्योत वि.म.सा.

संकलक
संयोजक-संपादक

मुनि
चारित्ररत्नविजय...

ग्रंथ विषय

जैनधर्म संबंधी
खगोल-भूगोलादि की
विस्तृत सचित्र जानकारी

प्रुफ संशोधक

प.पू.पं.धर्मशेखरविजयजी म.सा.
प्रो. रमेशभाई बी. शाह (अम.)
कमलेशभाई पुरोहित (सिरोही)
अभिषेकभाई वकील (इंदोर)

ग्रंथ डिझाईनर

ॐकार ग्राफिक्स
पियुषभाई के. शाह
अहमदाबाद- (गुज.)

चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ

गीतार्थ गंगा
जैन मर्चन्ट - पालडी
अहमदाबाद

प्रकाशक

जिनगुण आराधक ट्रस्ट
राजदा बिल्डींग, ओ.नं. ९/११,
दूसरा माला,
जूनी हनुमान क्रोस लेन,
काल्बादेवी रोड, मुंबई - ३

आधार ग्रंथ - साक्षीपाठों के मुख्य आधारस्तंभ

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आ. श्री कैलाशसागरसूरि
ज्ञानभंडार - कोबा

टाईपिंग एवं मुद्रण

नवरंग प्रिन्टर्स
अपूर्वभाई शाह
अहमदाबाद - (गुज.)

आवृत्ति - प्रतिकृति

आवृत्ति - प्रथम
प्रतिकृति - २०००

प्रकाशन वर्ष

वी.सं.२५४१
वि.सं. २०७१
ई.सं. २०१५
विमोचन ता. ३१-५-२०१५
विमोचन ति. जेठ सुद १३

ग्रंथविभाग एवं पृष्ठ

(१) 67+१३३=२००
(२) 25+१६७=१९२
(३) 27+१६७=१९४
(४) 23+१७३=१९६
(५) 14+५२=६६

फोटोग्राफी पिक्चर डिझाईनर

जैनिझम ओनलाईन
श्री हितेशभाई शाह
(नवसारी)

मूल्य

पांच भाग रूप
पूरे सेट का
२५००/-

प्राप्ति स्थान

अहमदाबाद

शाह बाबुलालजी सरेमलजी
"सिद्धाचल" सेन्ट एन्ड स्कूल
के सामने, हीराजैन सोसा.,
साबरमती, अहमदाबाद - ५
(M) 09426585904
(O) 079-22132543
(R) 079-27505720

सुरत

अशोकभाई एम. नागोत्रा
५०१, समवसरण ऐपार्टमेन्ट
लाल बंगला के सामने,
अठवालाईन्स, सुरत
(M) 09825132455
(M) 09428870903
(R) 0261-2669933

पालीताणा

सुघोषा कार्यालय
सोमचंद डी. शाह
तलेटी रोड,
पालीताणा

मुकेशभाई
(M) 09898332245

शंखेश्वर

वंदना बुक स्टोर्स
यात्रिक भवन के पास,
शंखेश्वर तीर्थ,
गुजरात
(M) 09374169618
(M) 09429297740
(M) 09904786962

मुंबई

मांगीलालजी पारेख
NAKODA CREATION
Shop no. 1, Kshirsagar apt,
opp. Maltibai Hospital,
St.John School Road,
THANE (west)
(M)09773329503,
(M)09324286481
(O)022-25309655

पुना

मांगीलालजी सोलंकी
श्री सिद्धाचल सोसायटी,
१८-बी, गुलटेकडी फ्लेट,
एफ-१३, पुणे -411037
(M) 09822271372
(R) 020-24265006

हुबली

AMBAR SAKARIYA
156, Kundan Kunj
Arihant Nagar,
Kushgal Road,
Keshwapur,
HUBLI-580023
(M) 09886217673

चेन्नाई

पारस डी. जैन
c/o, KOLORS KREATIONS
Shringar Plaza, # 359
Mint Street, Sowcarpet,
Opp. Vardhan Complex,
CHENNAI - 600079
(M) 09840208075
(M) 09884553007
(O) 044-23468276

बैंगलोर

एम. चंपालाल
No.531/532, O.T.C.Road,
1st floor,
Near Balpet Circle,
BANGALORE- 560002
(M) 09342727606
(M) 09844760139

दिल्ली

मोतीलाल बनारसीदास
४१, U.A., बंगला रोड,
दिल्ली - ११०००७
Email-mlbd@mlbd.com

रवि जैन
(M) 08800666090
(O) 011-23851985

कायमी संपर्क सूत्र

अरुणभाई - साबरमती
09427522101,
09408252201

मोहितभाई गीरधरनगर
अहमदाबाद
09426707301

INDEX

क्रम	विषय	पृष्ठ
१	ग्रंथ की विशेषता	1
२	**Introduction Pages**	2-3
३	प्राप्तिस्थान	4
४	**Index**	5
५	त्वदीयं तुभ्यं समर्पयामि	6-7
६	प्रकाशकीय निवेदनम्	8
७	लाभार्थी परिवार	9
८	आ. श्री विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	10
९	आ. श्री विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	11
१०	आ. श्री विजय जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	12
११	आ. श्री विजय जितेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	13
१२	आ. श्री विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	14
१३	आ. श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक	15
१४	हृदय की बात	16-29
१५	आशीर्वचन पत्रांशो	30-42
१६	अहो ! सर्वज्ञ शासनम् (प्रस्तावना)	43-45
१७	संपादक की कलम से	46-51
१८	ऋण मुक्ति नही परंतु ऋण स्मृति	52-53
१९	ग्रंथ विभागीकरण एवं परिचय	54-57
२०	मां शारदा स्मरण	58
२१	श्री नमस्कार महामंत्र	59
२२	**The Real Universe (part-1) Index**	60-65
२३	**Stop Look & Read**	66
२४	द्वार -१ लोक विभाग	67
२५	ग्रंथ के मूल १ से ६३ विषय	१-१२८
२६	द्वार १ से ५ के आधार ग्रंथ	१२९-१३३

।। त्वदीयं तुभ्यं समर्पयामि ।।

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ

जिनकी अनंत करुणा-कृपा-आशीर्वाद वरदान एवं वात्सल्य की धारा विश्व के सर्व जीवों पर बरस रही है।

ऐसे विश्वमंगल के मूलाधार, प्राण-प्राणेश्वर, राज-राजेश्वर, मेरे हृदय के हृदयेश्वर, सर्वेश्वर ऐसे कलिकाल कल्पतरु श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के

करकमलों मे...

श्री गौतमस्वामी

भगवान महावीर के प्रथम शिष्य एवं प्रथम गणधर, अनंत लब्धि के भंडार, विनय धर्म के अजोड़ साधक, सूरिमंत्र पंच प्रस्थान पिठीका में मुख्य स्थान को धारण करनेवाले, समर्पण गुण के अद्वितीय धणी, ५०,००० केवली शिष्यो के गुरु, परम श्रद्धेय ऐसे श्री गौतमस्वामी महाराजा के

करकमलों में....

मां सरस्वती

समवसरण में परम पिता परमात्मा के मुखकमल में जो बिराजमान है....और जिनवाणी के स्वरूप में जो प्रकाशित बन रही है ... तथा सर्व अक्षर, सर्व वर्ण और सर्व स्वरमाला की जो माता है और इस ग्रंथ के प्रत्येक अक्षर को जो सम्यग्ज्ञान में परिनमन कर रही है ऐसी वामहस्तक पुस्तकधारिणी, हंसवाहिनी, ज्ञानेश्वरी मां सरस्वती के

करकमलों मे....

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ का.....

॥ त्वदीयं तुभ्यं समर्पयामि ॥

प.पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.

वि.सं. २०६८ (ई.सं २०१२) के वर्ष के प्रथम चातुर्मास में जिनकी अपार कृपा और दिव्य सांनिध्य में श्री पिंडवाडा की पावनभूमि पर इस ग्रंथ रचना के सुंदर मनोरथ उत्पन्न हुए और जिनके अविरत और दिव्य आशीर्वाद से इस ग्रंथरत्न का निर्माण हुआ ऐसे ब्रह्मचर्य सम्राट, त्रिशताधिक श्रमणों के सर्जक, सिद्धांत महोदधि प. पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. के

करकमलों में....

प.पू.आ.श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.

प.पू. सिद्धांतमहोदधि आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. के आजीवन अंतेवासी, परम विनीत शिष्य, आध्यात्म युवा शिबिर के आद्यप्रणेता, संघहितचिंतक, वर्धमान तपोनिधि, न्याय विशारद, स्व हस्ते ४०० से अधिक दीक्षादाता, प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के

करकमलों में.....

प.पू. आ.श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा

मेवाड और मालवा में ३५-३५ साल तक विचरण करके आगमों से संबंधित अकाट्य तर्क युक्त और ऐतिहासिक तथ्य एवं प्रसंगो के साथ प्रवचन की धारा बहाकर मार्ग भूली मेवाडी प्रजा को जैनशासन रूपी मोक्षमार्ग में स्थिर करनेवाले मेवाडदेशोद्धारक, राष्ट्रसंत प. पू. आ. श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा के

करकमलों में...

प्रत्येक द्वार, प्रत्येक विषय, प्रत्येक अक्षर... सादर समर्पणम्.....

प्रकाशकीय निवेदनम्

जैनधर्म वो अनादिकाल से चला आ रहा है एवं अनादिकाल तक यह अनंतानंत आत्माओ को मोक्ष मुक्ति में जाने के लिए निमित्त बन रहा है तथा जैनशास्त्रों (जिनागमों) में विश्व संबंधि संपूर्ण विश्व व्यवस्था (ब्रह्मांड का स्वरूप) असंख्य द्वीप-समुद्रो से व्याप्त मध्यलोक, खगोलीय (आकाश संबंधी) सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा इत्यादि, ऊर्ध्वलोक के रूप में रहे हुए १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तरादि, अधोलोक के रूप में ७ नरको की व्यवस्था, भवनपति-व्यंतर-वाणव्यंतरादि देवो की बाते और प्रकीर्णक रूप में आये हुए जैनशासन के छुटे छुटे पदार्थो की सूक्ष्म एवं स्थूलादि सर्व ठोस हकिकतों को बताने में आई है जो संपूर्ण वैज्ञानिक एवं तर्कबद्ध है।

इस ब्रह्मांड का और उसमें रहे हुए पदार्थो का जो सच्चा स्वरूप बताते है उसे जैनदर्शन में "द्रव्यानुयोग" कहा जाता है। उन द्रव्यों के गुणों से होती हुई गिनती को "गणितानुयोग" कहा जाता है। इन द्रव्यो को परखकर मोक्ष प्राप्त करने का जो भव्य पुरुषार्थ किया जाता है उसे "चरणकरणानुयोग" कहा जाता है एवं जो उस चरणकरणानुयोग को साधकर मोक्ष में चले जाते है उस विशिष्ट आत्मसाधकों की कथा को "धर्मकथानुयोग" कहा जाता है।

प.पू. त्रिशताधिक दीक्षा दानेश्वरी आचार्य श्री विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. तथा प.पू. प्रवचन प्रभावक आचार्य श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा की पावन प्रेरणा को झिलकर (ग्रहणकर) प.पू. मुनिराज श्री हीरत्नविजयजी म.सा. के शिष्यरत्न मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा.ने **Jain Cosmology** (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) नामक ग्रंथ का सफल संपादन कर जिनशासन के चरणों में अब उनके द्वारा दुसरे कदम स्वरूप **THE REAL UNIVERSE** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) नाम का ग्रंथ जो तैयार किया गया है वह जैनशासन के चरणों में एक अद्भूत ग्रंथ की भेंट होगी... जो वस्तुतः बहुत ही उपयोगी एवं अनुमोदनीय है। ऐसे अनेकानेक लोकभोग्य ग्रंथो का सर्जन मुनिराजश्री के हाथों होते रहे....ऐसी भावभरी विनंती....

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ की प्रथम आवृत्ति का चतुर्विध श्री संघ के चरणों मे प्रकाशन करते हम आनंद की अनुभूति कर रहे है... तथा आधुनिक विज्ञान कि कल्पित बातों में अंधश्रद्धा धारण करनेवाले सर्वजन इस ग्रंथ को पढ़कर ब्रह्मांड (विश्व) के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपयोग स्व - पर की आत्मा के उद्धार के लिए करे...

ऐसी अंतर की भावना के साथ ही....

लि. जिनगुण आराधक ट्रस्ट

लाभार्थी परिवार

श्री जिनगुण
आराधक ट्रस्ट
मुंबई

स्व. श्री छोटालाल रीखवचंद
दोशी के आत्मश्रेयार्थे
ह. रीखवचंद त्रीभोवनदास
दोशी परिवार

श्रीमती मोहिनीदेवी
एस. देवराजजी जैन
घाणेराव - (राज.)
चैन्नई, बेंगलोर

-: विशेष सूचना :-

यह ग्रंथ ज्ञानद्रव्य में से छपा हुआ होने से गृहस्थो द्वारा मूल्य दिये बिना मालिकी करनी नहीं ।

भगवान महावीरस्वामी के ७६वें पाट को देदिप्यमान करनेवाले, ब्रह्मचर्य सम्राट, ३०० से अधिक श्रमणों के सर्जक, सिद्धांत महोदधि, प. पू. आचार्य भगवंत

श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

संसारी नाम	-	प्रेमचंद	दीक्षा	-	वि. सं. १९५७, का. व. ६, पालिताणा
माताजी	-	कंकुबेन	दीक्षा नाम	-	मुनि श्री प्रेमविजयजी म. सा.
पिताजी	-	भगवानदासजी	गुरुदेवश्री	-	आचार्यदेव श्रीमद् विजय दानसूरीश्वरजी म. सा.
जन्म	-	विक्रम सं. १९४०, फागण सुद १५	गणिपद	-	विक्रम संवत् १९७६, फागण वदी ६, डभोई
जन्मभूमि	-	नांदिया (राजस्थान)	पंन्यास पद	-	विक्रम संवत् १९८१, फागण वदी ६, अहमदाबाद
कर्मभूमि	-	व्यारा (गुजरात)	उपाध्याय पद	-	विक्रम संवत् १९८७, फागण वदी ३, मुम्बई
वतन	-	पिंडवाड़ा (राजस्थान)	आचार्य पद	-	विक्रम संवत् १९९१, चैत्र सुद १४, राधनपुर

प्रबल वैराग्य	-	१६ वर्ष की आयु में दीक्षा लेने के लिए व्यारा से चलकर सूरत पहुँचे, उसके बाद पालीताणा में खानगी (एकांत में) दीक्षा ली।
गुरु समर्पण	-	गुरुदेवों के प्रति संपूर्ण समर्पित होकर अल्प समय में ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग आदि के साथ जैन शास्त्रों के संपूर्ण ज्ञाता-पारगामी बनें।
नूतन कर्मशास्त्र सर्जन	-	कर्मप्रकृति जैसे जटिल गहन शास्त्रों का गुरुकृपा से अभ्यास किया और शिष्यों को भी करवाया। कर्मप्रकृति विषयक लाखों श्लोक प्रमाण नूतन संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ रूप साहित्य का सर्जन किया।
उच्च ध्येय	-	नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन के साथ साधुओं को प्रेम-वात्सल्यपूर्वक शिक्षा प्रदान कर संयमी-ज्ञानी-त्यागी-तपस्वी और शासनरक्षक एवं शासन प्रभावक बनाये।
अपूर्व शासन प्रभावना	-	सैकड़ों वर्षों तक जिनशासन की नीव को मजबूत कर सके ऐसे पुण्यशाली- प्रभावक समर्थ शिष्यों का निर्माण किया।
संघ एकता के पक्षधर	-	आजीवन पूर्ण समर्पित ऐसे आचार्य श्री यशोदेवसूरिजी, आचार्य श्री हीरसूरिजी, आचार्य श्री भुवनभानुसूरिजी आदि अनेक समर्थ शिष्यों के साथ संघ एकता की भावना से वि. सं. २०२० आदि के पट्टकों को करवाकर साकार की।
प्रसिद्ध विशेषण	-	सिद्धांत महोदधि / कर्मशास्त्र निष्णात / वात्सल्य महोदधि
स्वर्गवास	-	विक्रम संवत् २०२४, वैशाख वद ११, खंभात।
यशस्वी समुदाय प्रणेता	-	समग्र जैन संघ में सर्वतोमुखी प्रगती और प्रभावना करके-करवाकर इनका समुदाय वर्तमान काल में प्रथम श्रेणी में है.....ऐसे महापुरुष के चरणों में कोटि-कोटि वंदना।
शिष्य-प्रशिष्य	-	५९५ साधुगण

भगवान महावीरस्वामी के ७७वें पाट को शोभायमान करनेवाले, अध्यात्म-युवा शिबिर के आद्यप्रणेता
२०० श्रमणों के सर्जक, संघहितचिंतक, वर्धमान तपोनिधि, न्याय विशारद प. पू. आचार्य भगवंत

श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

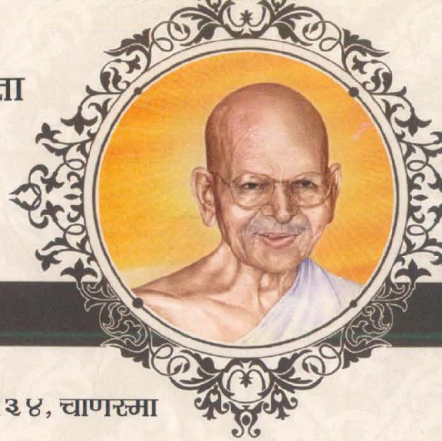

संसारी नाम	-	कांतिभाई	दीक्षा	-	वि. सं. १९९१, पोष सुदी १२, ता.१६-१२-१९३४, चाणस्मा
माताजी	-	भूरिबेन	दीक्षा नाम	-	मुनि श्री भानुविजयजी म. सा.
पिताजी	-	चिमनभाई	गुरुदेवश्री	-	प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी म. सा.
जन्म तिथी	-	जन्म-वि. सं. १९६७, चैत्र वद ६,	बडी दीक्षा	-	वि. सं. १९९१, माह सुदी १०, चाणस्मा,
जन्म तारीख	-	ता.१९अप्रेल १९११,	गणिपद	-	वि. सं. २०१२, फागण सुदी ११, ता. २२-२-१९५६, पूना
जन्मभूमि	-	अहमदाबाद (गुजरात)	पंन्यास पद	-	वि. सं. २०१५, वै. सु. ६, ता. २-५-१९५९
व्यवहारिक अभ्यास	-	G.D.A. (C.A.समकक्ष)	आचार्य पद	-	वि. सं. २०२९, मागसर सुदी २, ता.७-१२-१९७२, अहमदाबाद
वतन	-	चाणस्मा (गुजरात)	कालधर्म	-	विक्रम संवत् २०४९, चैत्र वदी १३ - अहमदाबाद.

सुप्रसिद्ध विशिष्ट गुण - आजीवन गुरुकुलवास, संयमशुद्धि, उछलता वैराग्य, परमात्मा की विशिष्ट भक्ति, विशुद्ध क्रिया, अप्रमत्तता, ज्ञानमग्नता, तप-त्याग-तितिक्षा, संघ वात्सल्य, तीक्ष्ण शास्त्रानुसारी प्रज्ञादि।

विशिष्ट कार्य - शासनोपयोगी धार्मिक शिबिरों में शिक्षण प्रदान कर युवाओं का उद्धार, विशिष्ट अध्यापन, पदार्थसंग्रह शैली का विकास, तत्त्वज्ञान-जीवन चरित्र को लोकमानस में दृढ बनाने वाले दृश्य (चित्रों) का उपयोग, बालदीक्षा प्रतिबंधक बिल का विरोध, कत्लखानों को ताले लगवाये, ४२ वर्ष तक दिव्यदर्शन साप्ताहिक के माध्यम से जिनवचन प्रचार-प्रसार, संघ एकता के लिए प्रचंड़ पुरुषार्थ, चारित्र शुद्धि का यज्ञ, अमलनेर में २७ दीक्षा, मलाड में १६ दीक्षा, कुल ४०० स्वहस्ते दीक्षा, आयंबिल तप को व्यापक रूप से प्रसिद्ध करनेवाले इत्यादि...।

कलात्मक सर्जन - जैन चित्रावली, महावीर चरित्र, प्रतिक्रमण सूत्र चित्र एल्बम, गुजराती-हिन्दी बालपोथी, महापुरुषों के जीवन चरित्रों के १२ और १८ फोटो के २ सेट, कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि म. सा. के जीवन चित्रों के सेट, बामणवाडजी में भगवान महावीर चित्र गैलेरी, पिंडवाडा में पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म. सा. के जीवन चित्रों का संग्रह, थाणा-मुनिसुव्रतस्वामी जिनालय में श्रीपाल - मयणा के जीवन चित्र आदि।

विशिष्टता - शास्त्र स्वाध्याय घोष, साधु वाचना, अष्टापद पूजा में मग्नता, स्तवनो के रहस्यार्थ की प्राप्ति, देवद्रव्यादि की शुद्धि, चाँदनी में लेखन, बीमारी में भी खड़े-खड़े उपयोग पूर्वक प्रतिक्रमणादि क्रिया, संयम जीवन की प्रेरणा, संस्कृत-प्राकृत ग्रंथों की विवेचना।

प्रभावना - ४०० से अधिक स्वहस्त से दीक्षादान, २० प्रतिष्ठा, १२ अंजनशलाका, ११४ से अधिक पुस्तक लेखन,२० उपधानादि विशिष्ट शासन प्रभावना।

तपाराधना - १०० ओली पूर्णाहूति-वि. सं. २०२६, आ- सु. १५, ता.१४-१०-१९७०, १०८ ओली पूर्णाहूति -वि. सं. २०३५, फागण वद १३, ता. २५-३-१९७९, मुम्बइ . छट्ठ के पारणे छट्ठ, पर्वतिथि छट्ठ, उपवास, आयंबिल आदि। फल (फूट), मेवा, फरसाण आदि का आजीवन त्याग।

चारित्र पर्याय - ५८ वर्ष आचार्य पद पर्याय- २० वर्ष कुल आयुष्य-८२ वर्ष

कालधर्म - विक्रम संवत् २०४९, चैत्र वदी १३, ता. १९-४-१९९३, पंकज सोसायटी, अहमदाबाद

भगवान महावीरस्वामी के ७८वें पाट पर बिराजमान,सिद्धांत दिवाकर, गीतार्थ मूर्धन्य, ९०० साधु-साध्वी के अधिपति प. पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

संसारी नाम	-	जवाहर
माताजी	-	कांताबेन
पिताजी	-	मफतलाल शाह
वतन	-	पाटण (गुजरात)
गुरुदेवश्री	-	स्व. मुनिराज श्री धर्मघोषविजयजी म. सा. (संसारी पिताश्री)
दादागुरु	-	प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म. सा.
बाल दीक्षित	-	मायानगरी मुम्बई में १४ वर्ष की अल्पायु में पिताश्री के साथ दीक्षा

जन्म	-	वि सं. १९९२, आसोज वद २, ता. ६-७-१९३६, मुम्बई - गुलालवाडी
दीक्षा	-	वि. सं. २००६, वैशाख वद ६, ता. ७-५-१९५०, मुम्बई - भायखला
बडी दीक्षा	-	वि. सं. २००६ आसोज वद ६, ता. १-१०-१९५०, पालीताणा
गणिपद	-	वि. सं. २०३१, कार्तिक सुदी १०, ता. ८-१२-१९७४, अहमदाबाद
पंन्यास पद	-	वि. सं. २०३४, वैशाख सुदी ५, ता. १२-५-१९७८, अहमदाबाद
आचार्य पद	-	वि. सं. २०४०, महा सुदी १३, ता. १५-२-१९८४, जलगांव - महाराष्ट्र
गच्छाधिपति पद	-	वि. सं. २०४९, वैशाख वद ४, ता. ८-५-१९९३, मुम्बई - गोरेगाँव

सर्वजनप्रिय	-	गुरुआज्ञा पालन और गुरभक्ति द्वारा गुरुओं के हृदय में स्थान बनानेवाले, सहायक गुण द्वारा सहवर्ती साधुओं के कृपापात्र बने ।
गुरुसेवा	-	पू. श्री प्रेमसूरिजी म. सा., पू. श्री भुवनभानुसूरिजी म. सा., पू. श्री धर्मघोष वि. म. सा. आदि गुरुओं की समर्पितता के साथ निःस्वार्थ सेवा के कारण अपूर्व आत्मीक एवं बाह्य उन्नति के स्वामी बने ।
शास्त्र रहस्यवेत्ता	-	पू. श्री प्रेमसूरिजी महाराज द्वारा बालवय में कर्म साहित्य एवं जिनशासन के अत्यन्त गूढ ऐसे छेद शास्त्रों के रहस्य का अध्ययन कराया ।
गुरुकृपापात्र	-	स्वसमुदाय के हित के लिए पू. प्रेमसूरिजी द्वारा किये गये पट्टक में 'पू. भानुविजयजी की जवाबदारी मुनि जयघोषविजयजी को सौंपनी' तथा शास्त्रीय विषय में विवाद हो, तब ''मुनि जयघोषविजयजी की सलाह लेनी'' कलम किया, तथा यह पट्टक वर्तमान में मौजूद है ।
परोपकार परायणता	-	किसी भी तरह की द्वेषता न रखते हुए स्वशिष्यों जैसी सर्व साधु भगवंतों की आंतरिक और बाह्य चिंता करनेवाले तथा वृद्ध एवं ग्लान साधुओं की सविशेष भक्ति आदि का ध्यान रखनेवाले.....।
नैष्ठिक ब्रह्मचर्य	-	बहनों एवं साध्वी समक्ष सीधी दृष्टि से बात नही करना, मन-वचन और काया से विशुद्ध ब्रह्मचर्यव्रतधारी..... ।
निकट मोक्षगामी	-	निकट मोक्ष में जानेवाले, सरलता; निःस्पृहता, विद्वता, नम्रता, उदारता, गंभीरता, निर्मलता, वात्सल्यता, परोपकारीता, प्रबल वैराग्य आदि अनेक गुण भंडार ।
शुद्ध प्रायश्चित्त प्रदाता	-	हजारों साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं आपके पास में अपने पापों की आलोचना लेकर शुद्ध बने है ।
स्वाध्याय रसिक	-	गच्छाधिपति जैसे विशिष्ट पद पर होते हुए भी आपश्री साधुओं को अभ्यास करवा रहे हैं । समय निकालकर दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि सूत्र का स्वाध्याय कर रहे है ।
अंतर्मुख जीवन	-	दीक्षा जीवन से आज तक वर्तमान पत्रों, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं को पढ़ा नहीं और हाथ तक लगाया नहीं ।
निःस्पृह शिरोमणि	-	६५ वर्ष के दीक्षा पर्याय में शिष्यों से मोह न रखते हुए यथोचित कार्य सुपुर्द किये ।
गुरुदत्त पदवी	-	सिद्धांतों का अगाध ज्ञान होने और ज्ञान की परिणतिवाला जीवन देखकर गुरुओं ने आचार्यपदवी के समय "सिद्धांत दिवाकर" पदवी से विभूषित किया ।
सुविहित गच्छाधिपति	-	४५० साधु और ४५० साध्वीजी भगवंतों के विशाल समुदाय का सफल और सक्षम रूप से नेतृत्व करनेवाले, विशुद्ध पुण्यशाली महापुरुष के चरणों में कोटि-कोटि वंदना..... ।

भगवान महावीरस्वामी के ७९वें पाट पर शोभायमान, मेवाड़देशोद्धारक, राष्ट्रसंत, प. पू. आचार्य भगवंत

श्रीमद् विजय जितेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

संसारी नाम	-	जेठमल हीराचंद
माताजी	-	मनुबाई हीराचंदजी
पिताजी	-	हीराचंद जेरुपजी
जन्म	-	वि. सं. १९७९,वैशाख वद ६ ता. ३-६-१९२९, पादरली (राज.)
दीक्षा	-	वि. सं. २००८, जेठ सुदी ५, ता. २९-५-१९५२, मुम्बई.
दीक्षा दाता	-	सिद्धांत महोदधि प. पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म. सा.
गुरुवर	-	प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म. सा.
बड़ी दीक्षा	-	वि. सं. २००८, आसोज सुदी १४, ता. २-१०-१९५२
गणिपद	-	वि. सं. २०३८, चैत्र सुदी १, ता. २६-३-१९८२
गणिपद प्रदाता	-	प. पू. आ. श्री राजतिलकसूरिजी म. सा.
आचार्य पद	-	वि. सं. २०४४, फागण वदी ३, ता. ६-३-१९८८
राष्ट्रसंत पदवी	-	ता. १७-१२-२०००, अजमेर
प्रथम शिष्य	-	दीक्षा दानेश्वरी आचार्य श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.
सांसारिक भाणेज	-	प्रवचन प्रभावक आचार्य श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म. सा.

प्रबल वैराग्य	-	२९ वर्ष की उम्र में विवाह करने के बाद सवा साल के पुत्र का त्याग कर समस्त परिवार को छोड़ दीक्षा ली।
गुरु समर्पण	-	अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित बनकर अल्प समय में ही ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वी और शास्त्रों में पारंगत बनें।
नूतन कर्मशास्त्र सर्जन	-	कर्मप्रकृति जैसे जटिल और गहन शास्त्रों को गुरुकृपा के बल से अभ्यास कर कर्मप्रकृति विषयक २५००० श्लोक प्रमाण "रसबंधो" नामक नूतन संस्कृत-प्राकृत साहित्य का सर्जन किया।
अपूर्व शासन प्रभावना	-	मेवाड़ और मालवा में ३५-३५ वर्ष तक विचरण, ४०० से अधिक जिनालयों का जीर्णोद्धार, २२२ से अधिक नूतन जिनालयों की प्रतिष्ठा, ३०० से अधिक साधु-साध्वीजी भगवंतों के योगक्षेमकर्ता, २५ ज्ञानभंडारों और २८ उपाश्रयों का निर्माण एवं अनेकानेक पांजरापोलों के प्रेरणादाता।
प्रभावक प्रवचन शक्ति	-	आगम सम्बन्धी अकाट्य तर्कयुक्त, ऐतिहासिक तथ्य एवं प्रसंगों के साथ प्रवचनधारा बहाकर मार्ग भूली मेवाड़वासियों को जिनशासन के प्रति आस्थावान् एवं मोक्षमार्गी बनाया।
परोपकार परायणता	-	किसी भी प्रकार की स्पृहा रखे बिना मुम्बई-मद्रास-बैंगलोर-गुजरात अनेक शहेरों को छोड़कर मेवाड़ की बंजर भूमि में ३५-३५ वर्षों तक लगातार विचरण कर जिनशासन की पताका को फहराया।
तप साधना	-	अखंड ४०० अट्ठम से विशस्थानक तप, जीवन पर्यंत सुद पाँचम को उपवास, पोष दशमी को एकासना, वर्षों तक ५ द्रव्यों से एकासना, हरी (लीलोतरी) वनस्पति का त्याग, १६ उपवास, नवपद ओली आदि।
आत्मसात् सूत्र	-	'समाधान ही स्वर्ग है' 'सदा प्रसन्न रहो' 'प्रसन्नता रखना' 'सहन करे वो साधु' 'साधर्मिकों के साथ हिलमिल रहो', 'आराम हराम है' इत्यादि पूज्यश्री के सूत्र थे।
सरल पहचान	-	निर्दोष गोचरी, मलिन वस्त्र, मेवाड़ के भगवान, सादगी पूर्ण जीवन, नीची नजर, उग्र विहारी, नित्य वाचना-पृच्छनादि पंचविध स्वाध्याय में निमग्न।
प्रसिद्ध विशेषण	-	मेवाड़देशोद्धारक, राष्ट्रसंत, साध्वीगणाधिपति, ४०० अट्ठम के तपस्वी, धर्मरत्नाकर, कुमततिमीरतरणी, त्रिशताधिक साधु-साध्वीयोगक्षेमकर्ता... आदि।
सूरिदेव	-	९ "स" कार (समता, समाधी, सरलता, स्वाध्याय, समर्पण, सेवा, साहसिकता, सहजता, समदर्शिता) के सम्राट थे।
प्रथम चातुर्मास	-	लालबाग, मुम्बई प. पू. आचार्य श्री प्रेमसूरीश्वरजी म. सा. के साथ।
अन्तिम चातुर्मास	-	भद्रंकर जैन संघ, सूरत प. पू. आ. श्री कुलचन्दसूरीश्वरजी म. सा. के साथ।
कालधर्म दिवस	-	ता. ५-१०-२००५, आसोज सुदी २, बुधवार रात्रि १.५८ बजे।
पाट परम्परा प्रभावक	-	प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.।

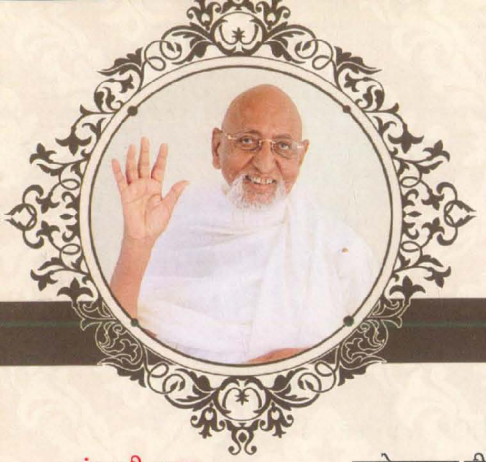

भगवान महावीरस्वामी के ८०वें पाट परम्परा के धारक, युवा जागृति प्रेरक,
दीक्षा दानेश्वरी प. पू. आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

संसारी नाम	-	गणेशमल हीराचंद	जन्म	-	वि. सं. १९८९, पौष सुदी ४, सन् १९३२, पादरली, (राज.)
माताजी	-	मनुबाई हीराचंदजी	दीक्षा	-	वि. सं. २०१०, माह सुदी ४, सन् १९५४, मुम्बई- भायखला
पिताजी	-	हीराचंद जेरुपजी	बडी दीक्षा	-	वि. सं. २०१०, माह वद ७, सन् १९५४, मुम्बई
वतन	-	पादरली, जिला-जालोर (राज.)	गणिपद	-	वि. सं. २०४१, मागसर सुद ११, सन् १९८५ अहमदाबाद - (गुज.)
गुरुदेवश्री	-	मेवाड़देशोद्धारक आ. श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.	पंन्यास पद	-	वि. सं. २०४४, फागण सुद २, सन् १९८८ जालोर (राज.)
दादागुरु	-	प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म. सा.	आचार्य पद	-	वि. सं. २०४४, जेठ सुदी १०, सन् १९८८, पादरली (राज.)

ज्ञानाभ्यास - न्याय, व्याकरण, काव्य, आगम आदि अनेक शास्त्र...।

साहित्य सर्जन - क्षपकश्रेणी (खवगसेढी), देशोपशमना, उपशमनाकरणादि ६० हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत - प्राकृत ग्रंथ तथा गुजराती-हिन्दी और अंग्रेजी में "सौ चालो सिद्धगिरि जईये", जैन रामायण, जो जे करमाय ना, टेन्शन टू पीस, रे ! कर्म तेरी गती न्यारी, श्री शत्रुंजयादि ४ महातीर्थों के दिशादर्शक यंत्रादि..... ।

पूज्यश्री की विशेषताएँ - (१) २१ वर्ष की युवावस्था में सगाई छोड़कर दीक्षा ग्रहण । (२) जीरावला में ३२०० व्यक्तियों की सामूहिक चैत्री ओली का कीर्तिमान रेकोर्ड (३) २७०० आराधकों का मालगाँव (राज.) से पालीताणा का, ६००० आराधकों का राणकपुर का और ४००० आराधकों का पालीताणा से गिरनारजी का ऐतिहासिक छःरि पालक संघ में निश्रा । (४) २८ युवा-युवतियों की सूरत में व ३८ युवक-युवतियों की पालीताणा में सामूहिक दीक्षा साथ कुल ३५५ से अधिक दीक्षादाता । (५) शंखेश्वर महातीर्थ में ४७०० अट्ठम और १७०० आराधकों का उपधान तप । (६) पालीताणा-घेटीपाग में २२०० आराधकों की ऐतिहासिक नव्वाणु यात्रा । (७) सूरत दीक्षा में ५१०००, पालीताणा दीक्षा में ५२००० तथा अहमदाबाद में ५५०० युवाओं की सामूहिक सामायिक । (८) क्षपकश्रेणी (खवगसेढी) ग्रंथ के सर्जनहार, इसके विषय में जर्मन प्रोफेसर क्लाउजब्रुन ने प्रशंसा की है । (९) ५५ से अधिक आध्यात्मिक ज्ञान शिबिरों के सफल प्रवचनकार । (१०) ३०० से अधिक साधु-साध्वीजी भगवंतो के योगक्षेमकर्ता। (११) नाकोड़ा ट्रस्ट द्वारा संचालित निःशुल्क विश्वप्रकाश पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा १ लाख से ऊपर विद्यार्थीयों के जीवन में ज्ञान प्रकाश फैलानेवाले । (१२) राजस्थान सुमेरपुर में "अभिनव महावीर धाम" (अक्षरधाम जैसे) के मुख्य मार्गदर्शक । (१३) शंखेश्वर सुखधाम, महावीर धाम, पावापुरी जीव मैत्री धाम, भेरुतारक तीर्थधाम के प्रेरणादाता-प्रतिष्ठा में ७०० साधु-साध्वी भगवंतों की उपस्थिति तथा चैत्री ओली में एक साथ २७४ आराधक भाई-बहेनों ने आजीवन चौथे व्रत को स्वीकार किया । इसी तरह जीरावला महातीर्थ के जीर्णोद्धार के सामूहिक मार्गदर्शन में सबसे बड़े, इसी तरह वरमाण तीर्थ के जीर्णोद्धार के मार्गदर्शक आदि ।

पूज्य आचार्यश्री का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विराट है । बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न आचार्यश्री सरलता व सहजता की प्रतिमूर्ति है । पूज्यश्री के मुख पर सदा स्मित मुस्कान अठखेलियाँ करती रहती है । बालसुलभ स्वभाव से अभिमंडित पूज्यश्री का स्नेहसिक्त व्यवहार आगन्तुक को आध्यात्मिक सम्मोहन से अभिभूत कर देता है । गुरुभक्तों की समस्याओं को चुटकी में सरल और सुलभ मार्गदर्शन देकर दूर कर देतें है । गुरु आज्ञा एवं आशीर्वाद से आपश्री की निश्रा में अब तक कई ऐतिहासिक जैन इतिहास-में स्वर्णिम अक्षरों में लिखने योग्य धर्मप्रभावनाओं के कार्य सम्पन्न हुए हैं । ऐसे पूज्य दीक्षा दानेश्वरी गुरुदेवश्री के चरणों में कोटि-कोटि वंदना..... ।

भगवान महावीरस्वामी के ८१मी पाट को देदिप्यमान करनेवाले, प्रवचन प्रभावक,
षड्दर्शन निष्णात प. पू. आचार्य भगवंत

श्रीमद् विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी महाराजा की जीवन-झलक

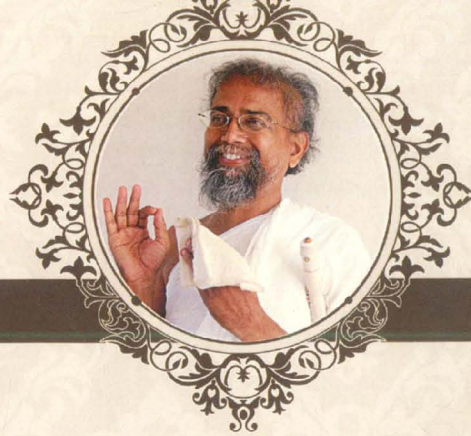

संसारी नाम	-	रमेशकुमार पुखराजजी संघवी	दीक्षा	-	वि. सं. २०३४, चैत्र वदी १०, ता.२-४-१९७८, तखतगढ (राजस्थान)
माताजी	-	संघवी फूलवंतीबेन पुखराजजी	दीक्षा नाम	-	मुनि श्री रश्मिरत्नविजयजी म. सा.
पिताजी	-	संघवी पुखराजजी छोगाजी (बागरावाला)	गुरुदेवश्री	-	प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आचार्य श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म. सा.
जन्म तिथी	-	विक्रम सं. २०२०, फागण वदी ७	बडी दीक्षा	-	वि. सं. २०३४, वैशाख सुदी ५, पिंडवाडा (राजस्थान)
जन्म तारीख	-	मंगलवार, ता.४-२-१९६४	गणिपद	-	वि. सं. २०५३, मागसर वदी ९ - पंकजसोसा., अमदावाद
जन्मभूमि	-	विशाखापट्टनम् (आंध्रप्रदेश)	पंन्यास पद	-	वि. सं. २०५५, फागण वदी ३, - भिलडीयाजी तीर्थ (गुजरात)
वतन	-	तखतगढ़ (राज.)	आचार्य पद	-	वि. सं. २०६५, मागसर सुदी ३, - अठवालाईन्स-सुरत (गुजरात)

परिवार से दीक्षित	-	सांसारिक मामा- पू. मेवाडदेशोद्धारक आ. श्री जितेन्द्रसूरिजी म. सा. एवं दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरिजी म. सा., सांसारिक मामी- तपस्विनी सा. श्री पुष्पलताश्रीजी म. सा., सांसारिक मामा की सुपुत्री- प्रवर्तिनी सा. श्री पुण्यरेखाश्रीजी म. सा., विदुषी सा. श्री मनीषरेखाश्रीजी म. सा. तथा सांसारिक बेन- सा. श्री किरणरेखाश्रीजी म. सा. ।
शिष्य-प्रशिष्य परिवार	-	मुनि श्री हर्ष - चिरंतन - हीर - जित - मोक्षांग - मति - जिनांग - संभव - कैवल्य - देव - सौम्यांग - पूर्ण - नीति - कल्याण - समर्पित - चारित्र - सिद्धांत - यश -रम्यांग - गीतार्थ - तीर्थ - हितार्थ - गणधर - तपो - तत्त्व - ज्ञान - आत्मार्थी - तत्त्वार्थ - अजित - त्रिपदी - ह्रींकार - वर्धमान - युगादि - मौन - जस - हेत - पावन - पूर्व - नवकार - धर्मवीररत्नविजयजी म. सा. आदि मुनि मंडल.....।
अध्ययन	-	१६ वर्ष तक नव्य-प्राचीन न्याय, षड्दर्शन, आगम शास्त्रादि.....।
ग्रंथलेखन	-	द्विवर्णस्तुतिरश्मयः, अभाववाद, तत्त्वावलोक, उदयस्वामित्व विवेचनादि.....।
पुस्तकलेखन	-	हिट & होट फेवरीट हुए रात्रीप्रवचनों के ऊपर की पुस्तक "गुडनाईट" (१लाख प्रति), "बचावो-बचावो" (५ लाख प्रति), "एसी लागी लगन" (१.५ लाख प्रति), "मन के जीते जीत" (५० हजार प्रति), "गुड लाईफ" (५० हजार प्रति), **"The Night mare is over, A visit to Shatrunjay, Hell and Heaven"** आदि ५४ पुस्तके.....
गेयरचना	-	१४ स्वप्न नृत्य गीत, सहस्त्रकूट देववंदन, सूरि प्रेम वंदनावली, दादा सूरि प्रेम आरती तथा अति प्रसिद्ध ऐसा शासनगीत.... "जैनं जयति शासनम्" इत्यादि.....गेय रचना....।

हृदय की बात

मैं कौन हुँ ? मैं कहाँ से आया हुँ ? मेरा जन्म यहाँ पर क्यों हुआ है ? मेरे जीवन में इतने सारे दु:ख क्यों आ रहे है ? मरने के बाद मेरा क्या होगा ? ऐसे अनेकानेक सवाल हर व्यक्ति के मन में अनेक बार उत्पन्न होते ही रहते है। क्या होंगे इनके जवाब ? यह हर व्यक्ति जानना चाहता है पर जब इन प्रश्नों के सही समाधान नहीं मिलते तब वह भ्रमित हो जाता है और कार्य-अकार्य का विवेक चूक जाता है।

न करने जैसे कार्य करने लगता है और करने जैसे कार्यों से दूर भागने लगता है जिसके परिणाम स्वरूप वह घोर दु:खों की परंपरा को आमंत्रण देता है और जब-जब जीवन में दु:ख आते है तब उन दु:खों को कैसे दूर किया जाए उसका ही प्रयत्न करने लगता है पर मेरे जीवन में जो दु:ख आ रहे है उसके कारण क्या है ? ये उसे कभी पता ही नहीं चलता । जिसके फलस्वरूप वह अनंत दु:खमय इस संसार में दु:खों से ग्रस्त बनकर भटकता ही रहता है । उसे कभी शांति की प्राप्ति नहीं होती । क्या होंगे इन सवालों के जवाब ? क्या आप भी जानना चाहते हो ? तो आइये चलते है ज्ञान के महासागर की तरफ... जिसमें इस विश्व के प्राय: सभी सवालों के जवाब मौजूद है....

आज से छब्बीसौ वर्ष पूर्व एक ऐसे व्यक्तिने जन्म लिया जिसे इस संसार में घोर दु:खो से ग्रस्त जीवों को देखकर अत्यंत पीडा महसूस हुई । उसका अंतर रोने लगा। उसके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरी चले तो मैं इस विश्व के समस्त जीवों को समग्र दु:खों से मुक्त कर दूँ । उसने जानना चाहा कि इस विश्व में जितने भी दु:ख है उनका मूल कारण क्या है ? यह जानने के लिये उसने अपने समस्त राजपाट-वैभव का त्याग किया । संन्यास स्वीकार किया । अपने अंदर में रहे हुए दुर्गुणों तथा अज्ञान को दूर करने साढ़े बारह साल तक कठोर तपश्चर्या एवं साधना की ।

इस ज्वलंत साधना के फलस्वरूप उसे त्रिकालज्ञान प्रकट हुआ । जिसमें उसे इस संपूर्ण विश्व का अनंत भूतकाल-वर्तमानकाल तथा अनंत भविष्यकाल एक साथ दिखाई देने लगा । अपनी सर्वज्ञता के द्वारा उसने इस विश्व में सुख और दु:ख के कारणों को जाना और जानकर जैसा देखा था वैसा हमें भी बताया कि क्या करने से हमारे जीवन में सुख आते हैं ? और क्या करने से हमारे जीवन में दु:ख आते है ? हमें सदा के लिये सुखी बनना हो तो क्या करना चाहिये ? और निरंतर दु:खी ही रहना हो तो क्या करना चाहिये । यह व्यक्ति यानि और कोई नहीं परंतु जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर 'भगवान महावीर'। तो आइये, हम भी सर्वज्ञ भगवान महावीरने देखे हुए इस विश्व के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर सदा के लिये सुखी बनने के **SECRET** को समझे ।

Secret of Happiness

इस संसार में जन्म लेनेवाले हर व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि मुझे इस संसार के सभी सुख मिले पर वास्तविक सुख किसे कहते हैं, इसका ज्ञान न होने के कारण वह सुख के बदले दुःख ही ज्यादा प्राप्त करता है। जैसे अग्नि को चमकदार वस्तु समझकर पकडने वाला बालक जले बिना नहीं रहता वैसे ही जिसमें सुख का अंश मात्र भी नहीं ऐसी वस्तुओं में सुख मानकर उनका संग्रह करनेवाले के जीवन में भी सुख के बदले दुःख के पहाड़ ही टूट पड़ते है। अगर एक छोटी सी वस्तु भी घर में बसानी हो तो लाने से पहले हम उसकी संपूर्ण जाँच-पडताल करते हैं तो जिन सुखों को प्राप्त करने के लिए हम अपना पूरा जीवन और धन लगा रहे हैं उनके लिये कभी विचार भी किया कि मैं जिसे सुख मानकर आँख मूँदकर जिसके पीछे दौड रहा हूँ वह गाडी-बंगला-पैसा-भोजन-मोबाईल आदि को क्या वास्तव में सुख कहा जा सकता है?

आज तक बहुत सारी वस्तुओं की जाँच-पडताल की है। चलो, आज हम हमारे अत्यंत प्रिय सुख को भी अपने संशोधन का विषय बनाते हैं। जरा सोचो कि हमें कैसा सुख पसंद आएँगा? इसका जवाब कुछ ऐसा होगा कि सुख तो ऐसा होना चाहिए कि...

(१) जिससे हम कभी बोर न हो जाए,

(२) जिसे पाने के लिए हमें पहले या बाद में दुःख का अनुभव करना न पडे,

(३) जिसका हम प्रतिक्षण अनुभव कर सके,

(४) जो सभी प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक दुःखों से मुक्त हो,

(५) जिसको पाने किसी की गुलामी करनी ना पड़े,

(६) जो सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो,

(७) जिसको पाने के बाद और कुछ पाने की इच्छा न जगे,

(८) जो हमें गलत रास्ते पर न ले जाए.

आप कहोंगें कि ये तो हमें कैसा सुख पसंद है उसकी हमने मात्र कल्पना की है पर हकीकत में ऐसा विशिष्ट सुख किसी को मिल सकता है क्या? और अगर मिल सकता है तो उसे कैसे पाया जा सकता है? इसका जवाब है, हाँ, ऐसा विशिष्ट सुख हकीकत में मिल सकता है और ऐसे सुख को अगर प्राप्त करना हो तो हम जिसको सुख मानकर जिसके पीछे दौड रहे हैं वैसे इस संसार के भ्रामक सुखों को तिलांजलि देनी पड़ेगी। आप कहोंगें कि...

इस संसार के सुख नकली है यह कैसे सिद्ध हो सकता है ? तो ये रहा उसका जवाब....

(१) जैसे जिस फिल्म को देखते समय हमें उबासी और नींद आती हो ऐसी फिल्म हम बार-बार देखने नहीं जाते क्योंकि वो हमें बोर कर रही है। वैसे सच्चा सुख तो उसे ही कह सकते है कि जिस पर से कभी हमारा मन ना उठे, जिससे हम कभी ऊब न जाए। जबकि यहाँ पर हम सुख के नाम पर जिन-जिन वस्तुओं का उपभोग कर रहे हैं वो समस्त वस्तुएँ हमें बोर करे ऐसी है। जैसे कि कितनी भी मनपसंद मिठाई क्यों न हो पर वह अगर हर रोज हमारी थाली में आने लगे तो वह हमारे लिये सुख के बदले दुःख का ही कारण बन जाती है। दूसरे दिन की कहाँ बात करें पर कहीं खाना खाने गए हों और वहाँ मात्र मिठाई ही हो, दूसरा कुछ न हो तो भी मुँह आ जाती है। तो इस संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है कि जिसका नित्य उपभोग करने के बाद भी जिस पर से हमारा मन न उठे ? कहना पड़ेगा कि एक भी नहीं। तो जिसका सातत्य हमारे लिये अरुचिकारक बनता हो ऐसे साधनों को हम सुख कैसे कह सकते है ?

(२) जैसे जो काम करने के पहले या बाद में हमारी पिटाई होती हो ऐसा काम हम नहीं करते वैसे सच्चा सुख तो उसे ही कह सकते है जो दुःख के अंशमात्र से भी मुक्त हो, जबकि हम यहाँ पर जिसे सुख मानकर जिसका आस्वाद ले रहे हैं वे दुःख के बिना प्राप्त किए जा सके ऐसे हैं ही नहीं। जैसे कि शरीर में भूख का दुःख खड़ा होता है बाद में ही भोजन सुख रूप लगता है। अगर भूख बिना ही भोजन करने लगे तो उसमें आनंद ही नहीं आएँगा और भोजन भी जब तक भूखरूप दुःख का स्टोक हो तब तक ही सुखदायक प्रतीत होता है। जैसे ही भूखरूप दुःख मिट जाए तो तुरंत ही वह भोजन सुख के बदले दुःख का अनुभव करानेवाला बन जाता है।

इसके सामने आप कहोंगें कि भोजन आदि का सुख भले भूख-प्यास आदि दुःख के बदले मिलता हो पर मनपसंद संगीत, मनपसंद सुगंध, मनपसंद स्पर्श, सुंदर दृश्य, घूमना-फिरना, मजाक-मस्ती, मनोरंजन, फैशन आदि के सुख के लिये कहाँ दुःख का अनुभव करना पड़ता है ? इसका जवाब यह है कि संगीत श्रवण आदि के सुखों का अनुभव भले शारीरिक दुःख के बिना हो सकता है पर संगीत आदि के सुख पसंद उसे ही आते हैं जो मानसिक रूप से थका हुआ हो, बाकी जो खुद के मनपसंद विषय में लीन हो उसे ये सब याद भी कहाँ आता है ? जैसे कि सीजन के समय में लाखों की कमाई करनेवाले व्यापारी को काश्मीर घूमने जाने का विचार भी कहाँ आता है ?

सिरदर्द के समय दवा लेने पर दर्द जब कम होता है तब हम ....दुःख कम हुआ.... ऐसा कहते हैं, ...सुख बढ़ गया...., ऐसा नहीं कहते वैसे इस संसार के तमाम साधन हमारे शारीरिक और मानसिक दुःखों को थोड़े समय के लिए कम कर सकते हैं, सदा के लिये तो बिलकुल नहीं। तो जिसका अनुभव करने दुःखरूपी कीमत चुकानी पड़े और जो मात्र हमारे दुःखों को ही कम कर सकते हैं सुख तो बढ़ा ही नहीं सकते और जिसका अतिरेक वापस दुःख का कारण बनता हो ऐसे साधनों को सुख कहा जा सकता हैं क्या ?

जैसे खुजली के रोगी को बार-बार खुजलाने की इच्छा होती है और खुजलाते समय उसे क्षणिक सुख का आभास होता है पर ऐसी खुजलाने की इच्छा को और खुजलाने की क्रिया को कोई सुख नहीं कहता क्योंकि उसका परिणाम अच्छा नहीं आता। वास्तव में सुख की अनुभूति तो वो ही कर रहा है जिसे ऐसा कोई रोग ही न हो...। वैसे खुजलाने की इच्छा समान इस संसार के सुखों को प्राप्त करने की इच्छा प्रकटे तो समझना कि यह दुःख की उत्पत्ति हुई और खुजलाने समान भाग्ययोग से अगर यह इच्छा पूर्ण हो जाए यानि कि इच्छित वस्तु

का उपभोग करने मिल जाए तो समझना कि दु:ख का अभाव हुआ तो जिस प्रक्रिया में मात्र दु:ख की उत्पत्ति और दु:ख का अभाव ही नजर आ रहा हो ऐसी प्रक्रिया को सुख पाने की प्रक्रिया कैसे कह सकते है ? क्योंकि सुखी तो वो ही गिना जाएगा जिसे ऐसी कोई इच्छा उत्पन्न ही ना होती हो और जिसे इस संसार की किसी वस्तु की जरूरत ही ना पड़ती हो।

(३) जैसे हम खुद के रहने के लिये समुद्र किनारे रेती का घर नहीं बनाते क्योंकि वह ज्यादा नहीं टिकता वैसे सुख तो उसे ही कह सकते हैं कि जो क्षणिक न हो पर जिसका अनुभव चौबीसों घंटे, प्रतिक्षण होता ही रहे। जबकि यहाँ पर हम पाँच इन्द्रियों के द्वारा जैसे भी सुख का अनुभव कर रहे हैं वह तो क्षणिक है क्योंकि इंद्रिय और शरीर की एक मर्यादा है। उस मर्यादा का अगर उल्लंघन किया जाए तो वे तुरंत ही बगावत पुकारते है जैसे कि मर्यादा से ज्यादा अगर खाया जाय तो तुरंत ही उलटी होनी चालु हो जाती है। इस प्रकार अगर देखा जाए और मानवजीवन के पूरे सौ साल में जिसमें बहुत सुख का अनुभव किया हो ऐसी क्षणों का हिसाब किया जाए तो दो-पाँच साल के जितनी भी मुश्किल से होती होगी। तो जिसमें दो-पाँच साल के काल्पनिक सुख के लिये ९५ साल तक मेहनतभरा जीवन जीना पड़े ऐसे क्षणिक सुखों को सुख कहना चाहिए क्या ?

(४) जो काम करने में दुनिया भर का टेंशन उत्पन्न होता हो तो ऐसा काम हम हो सके तब तक नहीं करते वैसे सच्चा सुख तो उसे कहते है जिसका चिंतामुक्त बनकर अनुभव किया जा सके। जिसका अनुभव करते समय प्रसन्नता रूप सागर की लहरें आकाश जितनी उछलती हो। जबकि इस संसार में शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति देखने मिलेगा जिसके जीवन में कोई समस्या न हो। कोई तन से, कोई मन से, कोई खुद के जीवन से, तो कोई परिवार से परेशान मिलेगा ही। वास्तव में सुखी बनने के लिये जितने साधन या संबंध बढ़ाये जाए उतनी ही चिंता की संभावना बढ़ती जाती है क्योंकि साधन या संबंध बढ़ाने हमारे हाथ में है पर उनका संयोग होने के बाद सामने से निरंतर अच्छे समाचार ही मिलते रहे, वे हमें वफादार ही रहे वो कहाँ हमारे हाथ में है ? जैसे कि जिसकी दस-दस दुकानें जोरदार चल रही हो और उसमें से एक दुकान आग से जलकर खाक होने के अगर समाचार मिले तो बाकी नौ दुकानें सही-सलामत है उसका आनंद नहीं रहेगा पर जो जल गई उसका दु:ख ही मन को घेर लेगा। तो अगर एक-आध चिंता भी हमारे शेष आनंद की होली जलाने में समर्थ है तो जो लोग सुखी बनने के लिए निरंतर नए-नए संयोग बढ़ाने में व्यस्त है और उसके कारण अनेकानेक चिंताओं से ग्रस्त है ऐसे लोगों को सुखी कैसे कहना ? और वो जिसके पीछे दौड रहे है ऐसे अशांतिकारक सुख को सुख कैसे कहना ?

(५) अगर हम स्वतंत्र रहने समर्थ हो तो किसी की गुलामी नहीं करते वैसे सच्चा सुख भी उसे ही कहना चाहिये जिसे प्राप्त करने के लिये कभी किसी की गुलामी करनी न पड़े। जो हमें हमारे अंदर से ही मिलता हो। जबकि यहाँ पर साधनों के द्वारा जो भी सुख हमें मिलते हैं वे सब के सब पराधीन सुख है। जैसे कि जिसका नसीब अच्छा हो उसे ही ये साधन मिलते है। मिलने के बाद भी शरीर स्वस्थ और मन प्रसन्न हो तो ही उनका उपभोग करना अच्छा लगता है और वापस जिसका उपभोग करना है वह वस्तु हाजिर हो तो ही सुख का अहसास होता है, अन्यथा नहीं। तो जिसका अनुभव करने के लिये नसीब, स्वस्थ शरीर, प्रसन्न मन और पदार्थ की आवश्यकता अनिवार्य हो ऐसे पराधीन सुख को हम सुख कैसे कह सकते है ?

(६) जैसे हम भूतबंगले में रहने नहीं जाते क्योंकि वहाँ पर मौत का भय मँडराता रहता है वैसे सच्चा सुख तो उसे कहते है कि जिसका निर्भयतापूर्वक उपभोग किया जा सके। जब कि इस संसार में जो भी सुख है वे विविध प्रकार के

भयों से व्याप्त है। जैसे कि सुखी बनने इच्छुक व्यक्तियों में किसी का एक्सिडेंट हो जाता है, किसी को भयंकर रोग लागू पड़ जाता है, किसी का धंधा चौपट हो जाता है, किसी को नौकरी ही नहीं मिलती, कोई दंगे में घायल हो जाता है, कोई पशुओं के आक्रमण का भोग बनता है, कोई भूत-प्रेत ग्रस्त बनता है, किसी की इज्जत मिट्टी में मिल जाती है, किसी का सबकुछ चोरी में चला जाता है, किसी को यमराज आकर ले जाता है। ऐसे सैकड़ों भयों के बीच जो थोड़े-बहुत सुख के साधन मिल भी जाए तो उसे सुख कैसे कह सकते है ?

(७) जैसे भोजन से तृप्त हुए व्यक्ति को वापस तुरंत भोजन करने की इच्छा नहीं होती क्योंकि उससे क्षणिक तृप्ति मिलती है वैसे सच्चा सुख भी उसे ही कहना चाहिए जो हमें अखंड तृप्ति दे सके। जिसकी बार-बार इच्छा न जगे। जबकि इस संसार में लखपति को करोडपति और करोडपति को अरबोंपति बनने की इच्छा होती ही रहती है और जो व्यक्ति निरंतर नई-नई इच्छाओं से ग्रस्त है और इच्छाएँ पूर्ण न होने से त्रस्त है उसे सुखी कहना या दुःखी ? जैसे रेगिस्तान में दोपहर को दिखनेवाले आभासिक जल के पीछे भागनेवाले को अंत में निराशा ही नसीब होती है क्योंकि वहाँ पर जल होता ही नहीं है वैसे ही जब तक इच्छित वस्तु या व्यक्ति न मिले तब उसमें सुख का दर्शन होता है और वस्तु और व्यक्ति का संपर्क होते ही थोड़े ही समय में उसमें से रस उड जाता है और दूसरी वस्तु या व्यक्ति में सुख का दर्शन होने लगता है। जिसके फलस्वरूप जीव आजीवन वस्तुओं के संग्रह तथा अन्यान्य व्यक्तिओं के पीछे ही भागता रहता है पर उसे अंत तक पता नहीं चलता कि सुख वास्तव में है कहाँ ? क्या ऐसे अतृप्तिकारक सुख को सुख कहना चाहिये ?

(८) जैसे जो गलत आदतें सीखाते हो ऐसे मित्रों के पास हम हमारे पुत्रों को नहीं भेजते वैसे सच्चा सुख तो उसे ही कहना चाहिए जो हमारे अंतरंग दोषो को बढाने वाला न हो। जबकि इस संसार में जैसे-जैसे व्यक्ति साधन संपन्न बनता जाता है वैसे-वैसे उसमें विकार-वासना, क्रोध, अहंकार, माया, लोभ आदि दोषों से ग्रस्त बनने की संभावना बढ़ती ही जाती है। तो जिसके आगमन के बाद हमारी सज्जनता और मानवता का निकंदन निकलता हो ऐसे सुखों को सुख कह सकते है क्या ?

तो यहाँ पर प्रश्न यह खड़ा होता है कि ऐसा कौन सा सुख है.....

(१) जिसका सातत्य अरुचिकारक न बने ?

(२) जो दुःख के अंश मात्र से भी सर्वथा मुक्त हो ?

(३) जिसका अनुभव प्रतिक्षण किया जा सके ?

(४) जो सभी प्रकार के तन-मन के रोगों से मुक्त हो ?

(५) जिसे प्राप्त करने के लिये नसीब, शरीर, प्रसन्न मन या पदार्थ इसमें से किसी की जरूरत न पड़े ?

(६) जिसका निरंतर निर्भयतापूर्वक उपभोग किया जा सके ?

(७) जो हमारी इच्छाओं को भडकानेवाला न हो ?

(८) और जो हमारी सज्जनता में बाधक न बने ?

ऐसे विशिष्ट सुख को ही धर्मशास्त्रों में "मोक्षसुख" कहा गया है। हम उपभोग भले ही क्षणिक सुख का कर रहे हैं पर इच्छा तो हमेंशा शाश्वत सुख की ही रहती है। जैसे बंगला भी बनाना हो तो ७ पीढी तक गिरे नहीं वैसा ही बनाने का प्रयत्न करेंगे। क्या कभी सोचा कि हमें सदा पूर्ण तथा अविनाशी सुख की ही कामना रहती है, इसका कारण क्या होगा ? इसका कारण यह है कि आत्मा खुद अविनाशी और अनंतसुखमय है इसलिये उसे विनाशी और दुःखयुक्त सुख पसंद

ही नहीं आते। जैसे श्रीमंत को भीख मांगना पसंद नहीं आता और इसलिये ही खुद अविनाशी और अनंतसुखमय होने के कारण ही वह इस संसार के विनाशी पदार्थों में भी निरंतर अविनाशी-संपूर्ण-भयमुक्त-दुःखमुक्त-चिंतामुक्त-पराधीनतामुक्त और तृप्तिकारक सुख को ही खोजता रहता है क्योंकि अविनाशिता-संपूर्णता-दुःखरहितता-चिंतामुक्तता-स्वाधीनता-परमतृप्ति ये सब आत्मा का स्वभाव है।

पर जब ऐसे विशिष्ट सुख को कैसे प्राप्त किया जाए ? इस बात का उसे ज्ञान नहीं होता तब वह जैसे मिले वैसे इस संसार के कामचलाऊ सुखों से संतोष मान लेता है पर जब वह सद्गुरु के संपर्क में आता है तब उसे पता चलता है कि मैं जिसके पीछे दौड रहा हूँ उसमें सुख का अंश भी नहीं है, मात्र और मात्र दुःख ही है, तब जैसे रास्ता भूले मुसाफिर को सही रास्ते पर लाने हेतु मात्र इशारा पर्याप्त होता है वैसे ही ऐसा सत्य ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसे वास्तविक सुखों को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा प्रकट होती है और उसे प्राप्त करने जो कुछ भी करना पड़े वह सबकुछ करने की तीव्र झंखना उत्पन्न होती है और तत्पश्चात् वह सद्गुरू के संपर्क में रहकर सच्चे सुख स्वरूप मोक्षसुख को प्राप्त करने आगे बढता है।

आप पूछोंगें कि **मोक्ष का स्वरूप क्या है ?** तो इसका जवाब यह है कि जैसे हर मुसाफिर की कोई अंतिम मंजिल होती है वैसे हर जीवात्मा की जो अंतिम मंजिल है उसका नाम है "मोक्ष"। जैसे इस संसार में हर वस्तु में अलग-अलग प्रकार की कक्षाएँ दिखती है जैसे कोई अत्यंत गरीब है, कोई मध्यम गरीब है, कोई सामान्य गरीब है, कोई सामान्य श्रीमंत है, कोई मध्यम श्रीमंत है, कोई अत्यंत श्रीमंत है तो कोई इतना श्रीमंत है कि जिसका कोई हिसाब ही न हो वैसे सुख के बारे में भी समझना। इसमें जो अत्यंत सुखी है जिनकें सुख का कोई हिसाब ही न हो ऐसे जीव जहाँ रहते हैं उस स्थान का नाम है "मोक्ष"।

जब हमें घर बदलना ही पड़े तो हम ऐसा स्थान पसंद नहीं करते जहाँ उपद्रव बहुत हो पर ऐसा स्थान ही पसंद करते हैं जहाँ बिलकुल उपद्रव न हो, वैसे हमें भी मरकर कहीं जाना तो पड़ेगा ही और नया शरीर धारण भी करना ही पड़ेगा। जैसे हम कपड़े बदलते हैं वैसे हमारी आत्मा शरीर बदलती है और आत्मा अमर होने के कारण हमारा जीवन तो सदा चालु ही रहता है क्योंकि मात्र शरीर बदलता है, स्थल बदलता है, परिस्थितियाँ बदलती है, पर हमारी आत्मा कहाँ बदलती है ? तो जीना तो पड़ेगा ही यह जब निश्चित है तो कैसा जीवन लेना ? सुखमय या दुखःमय ? अगर सुखमय जीवन ही जीने की इच्छा हो जो दुःख के अंशमात्र से भी मुक्त हो, ऐसा जीवन जहाँ उपलब्ध है उस स्थान का ही नाम है "मोक्ष"।

रोग-बूढापा-अपमान-दरिद्रता-चिंता-विश्वासघात-मौत आदि संसार का एक भी दुःख हमें पसंद नहीं पर ये सब हमारे जीवन में आते ही रहते हैं क्योंकि ये सब जन्म से बंधे हुए हैं। इन सबको अगर दूर करना हो तो सबसे पहले जन्म को दूर करना पड़ेगा और उसके लिये जन्मरहित स्थान ऐसा "मोक्ष" प्राप्त करना ही पड़ेगा।

संसार के समस्त सुखों को अगर बिंदु जितना गिना जाए तो मोक्ष सुख प्राप्त करनेवाले जीवात्मा को समुद्र से भी ज्यादा सुख का अनुभव प्रतिक्षण अनंतकाल तक होता ही रहता है। इस संसार में तो अनंतकाल में १-२ बार ही मनुष्य आदि का अच्छा अवतार मिलता है और बाद में वापस कीडे-मकोड़े जैसे दुःखमय अनंत अवतार ही लेने पड़ते हैं जबकि मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवात्मा को फिर कभी इस धरती पर कोई अवतार ही लेना नहीं पड़ता।

यहाँ पर हमें मानव जन्म मिला हो तो हर जन्म में **ABCD** से स्टार्टिंग करनी पड़ती है जबकि मोक्षसुख प्राप्त करनेवाले जीव को अखिल ब्रह्मांड के तमाम

जीव-अजीव पदार्थों की भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की अवस्था एक साथ देख सके तथा जान सके ऐसी विशिष्ट शक्ति जिसमें पड़ी हुई है ऐसा Super internet जैसा अविनाशी त्रिकालज्ञान प्रकट होता है और इसलिये ही ऐसे जीवों को जैनधर्म के अनुसार "सर्वज्ञ" या "भगवान" भी कहा जाता है।

अब सवाल यह खड़ा होता है कि ऐसा मोक्ष सुख मिलता है किसे ? इसका जवाब यह है कि समस्त धर्मग्रंथों के अनुसार मोक्ष एक ऐसा स्थान है जिसमें समस्त दुर्गुणरहित आत्माओं को ही प्रवेश मिलता है। अब दुनिया का एक नियम है कि हमें जिस फिल्ड में जाना हो उसकी ही प्रेक्टिस करनी पड़ती है। जैसे डोक्टर बनना हो तो डोक्टरी का ही कोर्स करना पड़ेगा। इस नियम अनुसार मोक्षसुख भी वो ही प्राप्त कर सकेगा जो यहाँ अहंकार-क्रोध-माया-लोभ आदि अंतरंग दोषों को जीतने के लिये निरंतर प्रयत्नशील होगा और उसके लिए ऐसे वातावरण में ही रहना जरूरी है जिसमें पुराने दुर्गुणों का नाश होता रहे और नए उत्पन्न ही ना हो।

जो कि भारतभूमि "बहुरत्ना वसुंधरा" होने के कारण अन्य पंथों में भी ऐसा दुर्गुणनाशक-सद्गुणपोषक शुभ वातावरण कहीं-कहीं हो भी सकता है पर हमारे ध्यान में जो आया वह है "जैन दीक्षा"। जिसमें जिनके-जिनके संपर्क से हमारा जीव दुर्गुणी बनता हो उन अशुभ संयोगों का सर्वथा त्याग तथा सद्गुणपोषक शुभ संयोगों का सर्वथा स्वीकार करने में आता है और जिसका वफादारीपूर्वक पालन करने से व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा ७-८ जन्म में मोक्षसुख को प्राप्त कर लेता है और साधना अगर जोरदार हो तो १-२ जन्म ही पर्याप्त है।

वर्तमान में होनेवाली जैन दीक्षाओं को देखकर बहुत लोगों के मन में यह सवाल खड़ा होता है कि इन लोगों के पास इतना सारा धन-वैभव है फिर भी सब कुछ छोड़कर क्यों निकल पड़ते हैं ? इसका जवाब अब आपको पता चला होगा कि ये लोग जो छोड़ रहे हैं वह बिंदु तुल्य भी नहीं है और इस दीक्षा के फलस्वरूप जो प्राप्त करेंगे वह समुद्र से भी ज्यादा होगा।

सनातन सत्य स्वरूप यह मोक्षमार्ग अनादिकाल से प्रवर्तमान है और भविष्य में भी अनंतकाल तक रहनेवाला होने से आज तक इस मार्ग पर चलनेवाले अनंतानंत जीवात्मा दुर्गुणमुक्त बनकर "भगवान" बन चुके हैं और भविष्य में भी बनते ही रहेंगे।

वास्तव में हर व्यक्ति में भगवान बनने की योग्यता पड़ी हुई है, पर हम खुद के आत्मा की शक्तिओं को पहचान नहीं सकने के कारण ही अनादिकाल से पशु-नरक आदि विविध अवतारों को धारणकर इस दुःखमय संसार में भटक रहे हैं। हम अगर मन में ठान ले तो हमारे जन्म-मरण आराम से बंद कर सकते है। वापस जन्म कहाँ लेना वह हमारे हाथ में नहीं पर वापस जन्म लेना या नहीं यह तो हमारे हाथ में ही है।

अनंतकाल से हमारे जन्म-मरण चालु है इसका कोई मुख्य कारण हो तो वह है वातावरण। जल को जैसे बर्तन में रखा जाए वैसा ही आकार वह धारण कर लेता है वैसे हमारा जीव भी निमित्तवासी है वह शुभ-अशुभ जैसे वातावरण में रहता हैं पाँच इंद्रियों द्वारा वैसा ही ग्रहण करना शुरू कर देता है। जैसा ग्रहण करता है वैसा विचार करने लगता है। जैसे विचार हो उस अनुसार प्रवृत्ति करने लगता है जैसी प्रवृत्ति हो वैसे संस्कार पड़ते हैं और जैसे संस्कार हो वैसे ही वापस अवतार मिलने लगते हैं और बाद में उन अवतारों की परंपरा शुरू हो जाती है।

अगर शुभ वातावरण हो तो फलस्वरूप वह मोक्ष में पहुँच जाता है और अगर अशुभ वातावरण हो तो उसके फलस्वरूप वह अनंतकाल तक इस दुःखमय संसार में ही भटकता रहता है। इसलिये हमें अगर हमारे जन्म-मरण बंद करने हो

तो सबसे पहले जिसमें हमारे विचार अपवित्र बनते हो ऐसे अशुभ वातावरण का सदा के लिये त्याग करना ही पड़ेगा।

भविष्य के ५० वर्ष सुखमय पसार हो इसलिये प्रारंभ के २५ वर्ष शिक्षण आदि में कठोर मेहनत करनेवाले हमें हमारी मृत्यु के बाद के अनंतकाल को सुधारने के लिये कुछ करना चाहिये या नहीं ? हमारे शरीर में रही हुई जिस आत्मा के आधार पर हमारा संपूर्ण जीवन मस्ती से चल रहा है उस आत्मा की चिंता हमें करनी चाहिये या नहीं ?

आप कहोंगें कि हम तो जो दिखे उसे ही मानते हैं, मोक्ष में प्रतिक्षण अनंतसुख है वह किसने देखा है ? यह बात हमारे दिमाग में बैठती नहीं है। फिर भी मोक्ष में जाना ही चाहिए इस बात की पुष्टि करे ऐसा कोई तर्क है ? हाँ, है। और वो यह है कि मोक्ष में अनंत सुख है या नहीं उसे बाजू में रखो पर संसार में तो दुःख के सिवाय कुछ भी नहीं, यह तो प्रत्यक्ष ही है। जितने भी पशु-पक्षी है, जीव-जंतु है, इनमें से कौन सुखी दिख रहा है ? और जो मनुष्य है उनमें भी ९० % तो दुःखी ही है और जो १० % सुखी दिख रहे हैं उनके पास भी मानसिक शांति कहाँ है ?

ऐसे घोर दुःखभरे संसार में बारंबार जन्म लेने में कौन-सी बुद्धिमानी है ? आनेवाले जन्म में केंसर के रोग से युक्त श्रीमंत अथवा संपूर्ण स्वस्थ मजदूर इन दो में से एक अवतार लेना ही पड़े, तो हम कौन सा लेंगे ? स्वस्थ मजदूर का ही क्योंकि धन का सुख नहीं मिलेगा तो चलेगा पर रोग का दुःख तो किसी को भी पसंद नहीं आता। वैसे मोक्ष में अनंत सुख है यह दिमाग में भले ना बैठे तो भी वहाँ दुःख तो बिलकुल नहीं है इसलिये भी हमें वहाँ पर जाना ही चाहिए यह बात तो दिमाग में बैठ सकती है ना ?

वापस आप कहोंगें कि मोक्ष में खाने-पीने की, मौज-मजा करने की एक भी वस्तु नहीं है तो वहाँ वस्तुओं के बिना हम जीएँगे कैसे ? इसका जवाब यह है कि जैसे हमें ठंडी की सीजन मे ए.सी. या कूलर की जरूरत नहीं पड़ती, गरमी में हीटर की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि वातावरण ही पहले से ठंडा या गरम है। यानि नियम यह हुआ कि वस्तु से मिलनेवाला सुख अगर हाजिर हो तो वस्तु की जरूरत नहीं रहती। इस नियम अनुसार अगर देखा जाए तो मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवों को इस संसार की एक भी वस्तु की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि इस विश्व की सभी वस्तुओं से जितना सुख प्राप्त होता है उससे अनंतगुना ज्यादा सुख का अनुभव वे प्रतिक्षण करते ही रहते है। तो जहाँ सुख ही हाजिर है वहाँ वस्तुओं की जरूरत ही कहाँ पड़ेगी ? और वस्तुओं की आवश्यकता शरीरधारी को पड़ती है वहाँ पर शरीर ही नहीं है तो वस्तुओं का भी क्या करना ?

दूसरी बात कि इस संसार में हमारी जितनी भी समस्याएँ है जैसे कि हमारा कोई जानी दुश्मन हो, हमारे शरीर में कोई बड़ा रोग हो, हम आजीवन कैद में हो ऐसी बहुत सारी समस्याओं में से हमारी एक भी समस्या अगर कम हो जाए तो भी हमें आनंद की अनुभूति होती है तो जहाँ पर जाने के बाद हमारी पुरानी सभी समस्याएँ समाप्त हो जाए और भविष्य में कोई नई समस्या कभी उत्पन्न ही नहीं होती हो ऐसे जीवों का आनंद कितना होगा ?

आत्मा में रहे हुए माया-कपट आदि समस्त दोषों को जो जीत ले उसे "जिन" कहा जाता है और ऐसे "जिन" में जो मुख्य हो तथा दूसरों को भी दोषमुक्त बनने का मार्ग जो बताते हों उसे ही "जिनेश्वर", "सर्वज्ञ", "तीर्थंकर", "अरिहंत" या "भगवान" कहा जाता है और ऐसे भगवान बने हुए क्षत्रियवंशज प्रभु महावीर स्वामी आदि २४ जिनेश्वरोंने आत्मा में रहे हुए दुर्गुणों को नाश करके मोक्षसुख को प्राप्त करने का जो मार्ग बताया है उसे ही "जैनधर्म" कहते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो जैनधर्म यह मात्र एक धर्म नहीं परंतु जिन-जिन कारणों से हमारा इस संसार में अनंतकाल से परिभ्रमण चालु है उन कारणों से मुक्त बनकर मोक्षसुख प्राप्तकर आत्मा को परमात्मा बनाने की एक संपूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है और इसलिये ही इस मार्ग पर चलनेवाला चाहे किसी भी ज्ञाति या कुल का व्यक्ति क्यों न हो ? वह खुद को दुर्गुणमुक्त बनाकर मोक्षसुख प्राप्त कर सकता है और "भगवान" बन सकता है।

आपको विचार आता होगा कि वर्तमान में किसी को मोक्षसुख मिला हो ऐसा कहाँ दिखता है ? उसका जवाब यह है कि वर्तमान में हम जहाँ रहते हैं उस भाग में मोक्षसुख की प्राप्ति बंद है जो ८१ हजार वर्ष बाद चालु होगी। पर यहाँ से उत्तर दिशा में प्रायः २५ करोड कि.मी. दूर महाविदेह नाम का क्षेत्र आया हुआ है जहाँ सर्वदोषमुक्त बनकर भगवान बने हुए श्री सिमंधरस्वामी आदि २० जिनेश्वर भगवंत आज भी जीवंत अवस्था में विचरण कर रहे हैं। वहाँ से मोक्षसुख की प्राप्ति सुलभ है।

वर्तमान में यहाँ पर अपनी भूमि में अच्छी तरह साधना करनेवाला व्यक्ति आनेवाले जन्म में महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वहाँ से मोक्षसुख प्राप्त कर सकता है। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि हमारे पृथ्वी जैसे करोड़ों क्षेत्र है पर हमारी शक्ति न होने के कारण हम वहाँ तक पहुँच नहीं सकते। पर हम अगर चाहे तो महाविदेह में जन्म लेकर आने वाले १०० वर्ष में या १-२ जन्म में आसानी से मोक्षसुख प्राप्त कर सकते हैं।

आप पूछोंगें कि ये सब बातें सच है उसका क्या सबूत है ? उसका जवाब है "पुरुष विश्वासे, वचन विश्वासः" कहनेवाला कौन है ? उसके आधार पर निश्चित होता है कि बात सच्ची है या झूठी। जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे जिनकी बहुत सारी बातें क्रमशः सत्य साबित होती जा रही है ऐसे और आज से २६०० वर्ष पहले जन्मे हुए तथा दुर्गुणमुक्त बनने की साधना के बल पर त्रिकालज्ञानी बने हुए सर्वज्ञ भगवान महावीरने ये सब बातें अपने त्रिकालज्ञान से देखकर कही है और उन्होंने वर्तमान विश्व के संदर्भ में जो भी कहा है, जैसे कि- "आत्मा तथा पुनर्जन्म है, शब्द एक पदार्थ है जिसे ग्रहण किया जा सकता है, वनस्पति खुद एक जीव है," ऐसी सैकड़ों बातें विज्ञान-अनुभव-बुद्धि-परंपरा आदि के द्वारा अगर सत्य साबित होती जा रही हो और आज तक एक भी वैज्ञानिक सर्वज्ञ भगवान महावीर की एक भी बात को गलत साबित न कर सका हो, तो उन्होंने अदृश्य जगत के बारे में जो बातें कही है जैसे कि "स्वर्ग-नरक-पुण्य-पाप-मोक्ष आदि तत्त्व है" ये सब बातें झूठी है ऐसा हम कैसे कह सकते हैं ? उन्होंने एक भी सिद्धांत नया नहीं बनाया परंतु इस कुदरत में जो नियम अनादिकाल से बने हुए है तथा अनंतकाल तक रहनेवाले है उन शाश्वत सूत्रों को ही हमें बताया है। बाकी जिन्हें विशेष जानने की जिज्ञासा हो उन्हें सद्गुरू के संपर्क में रहकर जैनधर्म की पुस्तकों का गहराई पूर्वक अभ्यास करना चाहिए और विशेष कर सर्वज्ञ भगवान महावीरस्वामीजी द्वारा बताई गई विश्व की महत्त्वपूर्ण हकीकतों को जानने की जिज्ञासा हो तो यह आपके हाथों में रहे हुए इस ग्रंथ का अवश्य अवलोकन करे। चलिए ! फिर से प्रस्तुत बात ऊपर आते हैं.....

आप कहोंगें कि सब बात सही, पर "जैन दीक्षा" यह कोई बच्चों का खेल तो नहीं। इतना सारा कष्ट कैसे सहन हो सकता है ? इसका जवाब यह है कि मान लो कि हमें थर्ड स्टेज का केंसर हुआ हो तो मरने से बचने के लिये डोक्टर की सभी आज्ञाओं को मानेंगे या नहीं ? तो जो १ बार मरने से बचाए उसकी भी सभी आज्ञा मानने के लिये हम अगर तैयार हो सकते हों तो जो भविष्य में अनंत बार मरने से बचाए ऐसा कोई मार्ग हो और उसके लिए २-३ जन्म तक शरीर को नुकसान न पहुँचे उतना अगर सहन करना पड़े तथा मात्र हमारी बुराइयों को

बढ़ानेवाले निमित्तों का तथा जिसके बिना चल सकता है ऐसी हिंसक जीवनशैली का त्याग जिसमें करना पड़े ऐसा जीवन स्वीकारना पड़े तो उसमें हर्ज क्या है ?

अब दुर्गुणमुक्त बनने के लिए जिसे आगे बढ़ना हो उसे दीक्षा स्वीकारनी चाहिए परंतु जो जैनदीक्षा लेने वर्तमान में समर्थ न हो उसका क्या ? उसका भी विकल्प है। उसे दीक्षा न ले सके तब तक दुर्गुणनाश करने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। संसार में रहकर दुर्गुणनाश करने प्रयत्नशील जीवन को ही जैनधर्म में "श्रावक जीवन" कहा जाता है और ऐसे श्रावक बननेवाले जीवात्मा को जिसके बिना चल सके और जो आत्मा को दुर्गुणग्रस्त बना सकते हों ऐसे तमाम अशुभ संयोगों और निमित्तों को छोड़ने के लिये निरंतर जागृत रहना चाहिए।

अब आता है महत्त्व का प्रश्न और वो यह है कि दुर्गुणमुक्त बनने का प्रयत्न करने से मोक्षसुख तो अंत में मिलेगा पर वर्तमान जीवन में इसका क्या फायदा ? इसका जवाब यह है कि ऐसा पवित्र जीवन जीनेवाले व्यक्ति के अंतर में रहे हुए विकार-वासना-क्रोध-अहंकार-माया-लोभ आदि दोष कम हो जाने के कारण उसमें वस्तुओं पर का ममत्व और नजदीक के व्यक्तिओं पर का अंधा आकर्षण बहुत ही घट जाता है और उसके हृदय में समस्त जीवों के प्रति मैत्री और वात्सल्यभाव उछलने लगता है। वो इस संसार में मालिक नहीं पर मेहमान बनकर जीना सीख लेता है और इसके फलस्वरूप उसके जीवन में चाहे कितने भी उतार-चढाव क्यों न आए उसका मन सदा हर्ष-शोक से मुक्त बनकर समभाव और प्रसन्नतायुक्त ही रहता है। ऐसे व्यक्ति को टेंशन-डिप्रेशन आदि क्या चीज है ? उसका स्वप्न में भी उसे एहसास नहीं होता।

दूसरी बात कि आज का विज्ञान भी अब धीरे-धीरे मानने लगा है कि हमारे शरीर के बहुत सारे रोगों का मूल भी हमारे मन में ही पड़ा हुआ है। मन जितना ज्यादा दुर्गुणों से ग्रस्त-शरीर उतना ही ज्यादा रोगों से व्यस्त । इसके सामने दुर्गुणमुक्त बनने का प्रयत्न करनेवाले साधक का मन सदा शांत और प्रसन्न होने के कारण वह बहुत सारे शारीरिक और मानसिक रोगों से सहज रूप से बच जाता है और दीर्घायुष्यवान बनता है। साथ में उसे वर्तमान के मिलावटी पदार्थों से युक्त तथा रसायनिक खाद और शरीर के लिये हानिकारक जंतुनाशकों से निर्मित अन्न का तथा शरीर को नुकसान पहुँचाए ऐसी जीवनशैली का त्याग करना जरूरी है अन्यथा कभी भी केंसर जैसे रोग हो सकते है।

गरीब भी अगर गुणवान हो, परोपकारी तथा दूसरों की मदद करनेवाला हो तो लोग उसकी प्रशंसा करते है और अमीर होने के बावजूद अगर कोई कंजूस-स्वार्थी-लोभी हो तो लोग उसकी निंदा करते हैं। धनवान बनना हमारे हाथ में नही है क्योंकि उसके लिये नसीब चाहिये परंतु गुणवान बनना तो हमारे हाथ में ही हैं क्योंकि वह पुरुषार्थजन्य है। दुनिया भले केरियर बनाने के पीछे पागल है पर लोग तो उसे ही याद करते हैं जिसका केरेक्टर महान हो। यानि कि वर्तमान में यशकीर्ति-लोकप्रियता आदि की आकांक्षा हो तो भी गुणवान ही बनना पड़ेगा।

और एक मुख्य बात - इतना सब समझने के बाद भी आप कहोंगें कि, "दुनिया तो उसे ही सुखी मानती है जिसके पास पैसा है। क्या दुर्गुणमुक्त बनने से पैसा मिलता है ?" इसका जवाब है, हाँ। अवश्य मिल सकता है। आप जरा सोचो कि इस दुनिया में आर्थिक रूप से सुखी कम और दुःखी ज्यादा है इसका कारण क्या होगा, कभी विचार किया ? समृद्ध जीव कम है कारण कि अहिंसक, परोपकारी और सद्गुणी जीव कम है और दुःखी तथा गरीब ज्यादा है कारण कि हिंसक, स्वार्थी और दुर्गुणी जीव ज्यादा है। इससे सिद्ध होता है कि आर्थिक रूप से भी अगर सुखी बनना हो तो उसके लिये दुर्गुणों का त्यागकर सद्गुणी ही बनना पड़ेगा।"

तो फिर आप पूछेंगें कि, "वर्तमान में जो दिख रहा है कि बहुत सारे जीव ऐसे हैं जिनके जीवन में सद्‌गुण कम और दुर्गुण ज्यादा है फिर भी वे धन-वैभव से समृद्ध दिख रहे हैं उसका क्या कारण ? इसका जवाब यह है कि अनाज की टंकी में पहले सुगंधित बासमती चावल डाले हो, बाद में सड़े हुए बाजरे का धान्य डाला हो तब टंकी के नीचे के छेद में से पहले सुगंधित बासमती चावल ही बाहर आएँगे वैसे जिन्होंने अपने पूर्व जन्मों में कुछ न कुछ सद्‌गुणों की उपासना की हो उन्हें ही वर्तमान में समृद्धि मिली है और वर्तमान में जो उलटे काम कर रहे है उसका फल उन्हें भुगतना तो पड़ेगा ही । बाकी दुर्गुणिओं को भी अगर समृद्धि मिलती होती तो समृद्ध लोग हमेंशा ज्यादा ही दिखने चाहिए क्योंकि दुर्गुणी हमेंशा ज्यादा ही होते हैं । जबकि प्रत्यक्ष दिख रहा है कि समृद्ध जीव कम है क्योंकि सद्‌गुणी जीव कम है और इसलिये ही वर्तमान में चिंतामुक्त मन, रोगरहित शरीर और समृद्धियुक्त जीवन तथा मृत्यु के बाद मोक्षसुख न मिले तब तक अच्छे अवतार अगर चाहिये तो हो सके तब तक दुर्गुणमुक्त जीवन जीने का खास प्रयत्न करना चाहिए और इसके लिये...

(१) अन्य जीवों के प्रति अंतर में रहा हुआ द्वेषभाव कम करने के लिये हमें जो पसंद न हो वैसा व्यवहार जीवमात्र के साथ न करें । जैनधर्म मात्र मानव या पशु-पक्षी को ही नहीं परंतु पृथ्वी - जल - अग्नि - वायु - वनस्पति तथा चलते - फिरते सूक्ष्म बेक्टेरिया आदि को भी जीव मानता है । इनमें भी हमारे जैसी ही आत्मा है । हमें जैसे दुःख पसंद नहीं है वैसे इन्हें भी दुःख पसंद नहीं है अतः इनकी भी हो सके उतनी रक्षा करें क्योंकि हमें अगर हमारे जन्म-मरण बंद करने हो तो दूसरो को जन्म-मरण देना बंद करना ही पड़ेगा ।

(२) जो हमें दुर्गुणों से मुक्त बनने की प्रेरणा करते हों ऐसे गुरुभगवंतों के प्रवचन अवश्य सुने, उनका सत्संग करे और जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों में उनका मार्गदर्शन अवश्य लें । क्योंकि जहाँ क्षणिक सुख है ऐसे संसार में भी मार्गदर्शक बिना किसी भी क्षेत्र में सिद्धि नहीं मिलती तो जहाँ शाश्वत सुख है ऐसा स्थान... यानि कि इस दुःखमय संसार से मुक्ति क्या हमें सद्‌गुरु की शरण बिना मिल सकेगी ?

(३) हमारे अंदर जो भरा हुआ है वो जिसमें न हो वो ही "भगवान" या "सर्वज्ञ" कहलाने योग्य है । हम क्रोध-माया-कपट-लोभ आदि अनंत दुर्गुणों से भरे हुए हैं तो जो ऐसे समस्त दुर्गुणों एवं दोषों से मुक्त होकर "भगवान" बन चुके हैं ऐसे शुद्धात्माओं के दर्शन-वंदन-पूजन मंदिर में जाकर अवश्य करें, क्योंकि जो खुद दोषमुक्त बने हो वो ही हमें भी दोषमुक्त बना सकेंगे । हमें जैसा बनना हो उसको हम सतत अपनी नजर समक्ष रखते है । हमें अगर समस्त दोषमुक्त बनना हो तो जो ऐसे बन गए हैं उनका आलंबन हमें लेना ही पड़ेगा । जल-अग्नि-वनस्पति आदि सूक्ष्म जीवों की हिंसा का बहाना बनाकर ऐसे शुद्धात्माओं के पूजन से दूर न रहे क्योंकि जो हमारे अंदर दुर्गुणों को बढाए ऐसी प्रवृत्तिओं को ही शास्त्र में हिंसा कहा गया है । जबकि ऐसे वीतरागी व्यक्तिओं का पूजन तो आत्मा में रहे हुए दोषों को नाश करने में अत्यंत सहायक है । मूर्तिपूजा पाप है ऐसा वाक्य प्राचीन शास्त्रों में कहीं भी देखने नहीं मिलेगा । बाकी श्वास लेने में भी वायु की हिंसा तो होती रहती है इस दृष्टि से देखा जाए तो एक भी धर्म अनुष्ठान संपूर्ण अहिंसक नहीं मिलेगा । पर जो अनुष्ठान सद्‌गुणों को बढ़ाकर भविष्य में अनंतकालीन अहिंसा का कारण बनता हो वह वर्तमान में भी अहिंसक ही कहलाता है ।

(४) जो हमे दुर्गुणमुक्त बना सके ऐसे पुस्तकों का वांचन अवश्य करते रहना चाहिए क्योंकि लोहा जब तक अग्नि का संग करता है तब तक उस पर

हथौडे के प्रहार होते ही रहते हैं वैसे जीव जब तक दुर्गुणों का संग करता है तब तक उसे भी दुःखों के प्रहार सहन करने ही पडेंगें।

(५) हिंसा-झूठ-चोरी अनीति-संग्रहवृत्ति-व्यसन-दारू-मांसभक्षण-जुआ-परस्त्रीगमन आदि दुर्गुणवर्धक जीवनशैली का त्याग कर Simple Living & High Thinking वाली सात्त्विक एवं पवित्र जीवनशैली अपनाए। तन-मन को भ्रष्ट करनेवाले रात्रिभोजन -कंदमूल एवं तामसी भोजन का त्याग करें क्योंकि यहाँ पर हम जैसी प्रवृत्ति करते हैं वैसी प्रवृत्तिवाले अवतार ही बारंबार हमें मिलते रहते हैं जैसे कि जीवनभर संग्रह करने में ही लगे रहे तो चींटी का ही अवतार मिलेगा।

(६) "जो-जो काम करने से हमारे अंदर दुर्गुणों का नाश और सद्गुणों का विकास होता हो उन तमाम कार्यों को ही वास्तव में "धर्म" कहा जाता है... इसलिये धर्म के नाम पर कोई भी कार्य करने के पूर्व जाँच लें कि मैं जो करने जा रहा हुँ क्या वह "धर्म" कहलाने योग्य है? क्योंकि जहर पीना या ना पीना वो हमारे हाथ में है पर पीने के बाद उसका परिणाम हमारे हाथ में नहीं। वैसे दुर्गुणों के वश बनना या न बनना वो हमारे हाथ में है पर वश बनने के बाद उसका परिणाम जो अनंत जन्म-मरण रूप में आ सकता है उसे अटकाना हमारे हाथ में नहीं और गुण या दोष हमेंशा सपरिवार आते है। वर्तमान जीवन में हम जिसे ज्यादा महत्व देंगे भावि जन्मों में वो ही गुणाकार में हमारे अंदर प्रकट हो जाएँगे और तदनुसार सुख या दुःख की परंपरा चलती ही रहेंगी।

(७) ब्रह्मचर्य का पालन खास करें। अपनी शक्ति का एक बिंदु भी व्यर्थ न गुमाए। इससे तीव्र संकल्पशक्ति, आंतरिक पवित्रता, मानसिक एकाग्रता एवं तीव्र स्मरणशक्ति की प्राप्ति होती है।

(८) हमारे अंतर में रहे हुए मानवता नाम के गुण को जीवंत रखने तन-मन-धन से दूसरों को सहायक बनने सदैव प्रयत्नशील रहें क्योंकि जिसमें मानवता ही न हो उसके बाकी सभी धर्म भी कितने फलदायक बनेंगे यह बहुत बड़ा सवाल है।

(९) जो समस्त दुर्गुणमुक्त बन गए हैं और बनने के लिये जो प्रयत्नशील हैं ऐसे समस्त जीवात्माओं को जिसमें नमस्कार किया गया है ऐसे नवकारमंत्र का बारंबार स्मरण अवश्य करें। हजारों देवताओं से अधिष्ठित इस नवकार मंत्र के प्रभाव से बहुत सारी आफतें आने के पहले ही भाग जाती है, आवश्यकताएँ पूर्ण होती है तथा मन में अत्यंत शांति की प्राप्ति होती है।

(१०) पाँच इन्द्रियों को पसंद आए ऐसी सामग्री, यश-कीर्ति-समृद्धि की कामना और शरीर की सुखशीलता ये तीनों ही बातें मोक्षसुख तथा वर्तमान के भौतिक सुख प्राप्त कराने में प्रबल प्रतिबंधक है इसलिये इन तीनों से सदैव दूर ही रहे।

जैसे अस्थिर जल को अगर स्थिर करना हो तो वह जिस बर्तन में रहा हुआ है उस बर्तन को ही सबसे पहले स्थिर करना पड़ता है वैसे जीवन को अगर सद्गुणमय बनाना हो तो ऊपर बताए गए तथा इनके सिवाय भी दुर्गुणनाशक तथा सद्गुणवर्धक अन्य जितने भी उपाय हो उन सभी उपायों को हमें रोग में चिकित्सा की तरह अनिच्छापूर्वक भी आत्मसात करने ही पड़ेंगें।

ऐसा श्रेष्ठ सद्गुणमय जीवन जीने से जीव को यहाँ पर शांति और समृद्धि मिलती है। आनेवाले जन्मों में अच्छे अवतार मिलते हैं और कुछ ही जन्म में जन्म-मरण के चक्र में से मुक्त बनकर आत्मा को अनंत-अक्षय-सर्वोत्कृष्ट तथा संपूर्ण ऐसा मोक्षसुख प्राप्त होता है और जीव खुद "भगवान" बन जाता है।

मोक्ष सुख को पाकर आत्मा को अगर परमात्मा बनाना हो तो उसके लिये

सबसे जरूरी कोई वस्तु है वह है सच्चाज्ञान । शास्त्रों में लिखा है कि "जो एगं जाणई, सो सव्वं जाणई । जो सव्वं जाणई, सो एगं जाणई ॥" यानि कि जो आत्मा को संपूर्ण रूप से जान सकता है वो ही इस विश्व को भी संपूर्ण रूप से जान सकता है तथा जो इस विश्व को संपूर्ण रूप से जान सकता है वो ही आत्मा को भी संपूर्ण रूप से जान सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि हमें अगर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त करना हो तो इस विश्व को भी जानना जरूरी है। क्योंकि जब तक हम इस विश्व को संपूर्ण रूप से जानेंगे नहीं तब तक हमें पता कैसे चलेगा की हमने आज तक भूतकाल में कहाँ-कहाँ पर जन्म लिये हैं ? अब अगर साधना करके मोक्ष में न गए तो नरक-पशु आदि हल्की योनि में और अनंत काल तक घुमना पड़ेगा। हमें जहाँ अंत में जाना है वो मोक्ष कहाँ पर आया हुआ हैं ? उसमें आज तक कीतने जीव जा चुके हैं ? वहाँ पर जाकर हमें क्या करना हैं ? हम जिसे जन्नत-स्वर्ग या वैकुंठ कहते हैं ऐसे सुख के स्थानों पर भी हमने आज तक अनंत अनंत बार जन्म ले लिया है। फिर भी हमें तृप्ति नहीं मिली तो वर्तमान के क्षणिक सुखों से तृप्त कैसे बन सकेंगे ? इस दुनिया का कोई भी भौतिक सुख या दु:ख ऐसा नहीं है जो हमने अनंत-अनंत बार प्राप्त न किया हो। इस प्रकार विश्व का स्वरूप समझने से हमें हमारा भूतकाल पता चलता है तथा भविष्य में क्या करना है उसका उद्देश्य स्पष्ट होता हैं। उद्देश्य स्पष्ट होने से साधना में आगे बढ़ने का उत्साह बढ़ता है। बाद में त्याग का पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता परंतु सहज रूप से हो जाता है। जैसे शरीर पर रहे हुए मैल को छोड़ने में हमें अपने मन को मनाना नहीं पड़ता। इस विश्व के स्वरूप को समझने के लिये अमावस्या की काली रात में दीपक समान यह "THE REAL UNIVERSE" (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ बहुत ही उपकारक बने ऐसा हैं। मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजीने वर्षों की कड़ी महेनत के बाद इस ग्रंथ को तैयार किया हैं। पर जैसे जंगल में अगर मार्गदर्शक मिल जाए तो जल्दी ही जंगल पार हो जाता है वैसे किसी समर्थ गुरु के पास इस ग्रंथ का अध्ययन किया जाए तो ही इस ग्रंथ का वास्तविक हार्द प्राप्त होगा और ज्ञान के साथ वैराग्य भी अवश्य प्रकटेगा और ऐसा कहा जाता है कि १ क्षण के लिये भी आत्मा के अंदर अगर इस संसार के प्रति तीव्र वैराग्य पैदा हो जाए और मोक्ष पाने की तमन्ना पैदा हो जाए तो ऐसा जीव इस संसार में जन्म-मरण के चक्र से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। खगोल-भूगोल के क्षेत्र मे आगे बढ़ते जिज्ञासुओ के लिये यह ग्रंथ एक पगदंडी समान है। इस ग्रंथ को पढ़कर हमें पता चलता है कि वास्तविक दुनिया कितनी बड़ी है और उसके सामने वर्तमान के विज्ञान की हालत तो कुए के मेंढक जैसी है। विज्ञानने अकल्पनीय विकास किया है फिर भी मानव के दु:ख घटने के बदले बढ़ते ही जा रहे है। आत्महत्या करनेवाले की संख्या हर साल बढ़ती ही जा रही है। इसका मुख्य कारण कोई भी हो तो वो यह है कि विज्ञानने सुख को अपने केन्द्र स्थान में रखा है। विज्ञान की परिभाषा इतनी ही है कि जिससे-जिससे **Instant** सुख का अनुभव होता हो वो सब प्राप्त करते रहो भले बाद में दु:खी होना पड़े जबकि धर्म यह कहता है कि जो काम करने से सदा के लिये शांति मिलती हो वो ही काम करो भले उसके लिये सुख के साधन छोड़ने पड़े तो भी छोड़ दो क्योंकि जहाँ पर साधन बहुत है पर शांति नहीं ऐसे जीवन का क्या अर्थ ? वर्तमान विश्व में जितनी भी समस्याएँ है उसका मूल कारण है अज्ञान दशा। वर्तमान विश्व की समस्याओं को अगर दूर करना हो तो उसका सबसे शोर्टकट उपाय यह है कि इस "THE REAL UNIVERSE" (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ को विश्व के सभी स्कुल-कोलेजों में कोर्स के रूप में पढ़ाया जाए और इसमें बताए गए सिद्धांतों को जो जितना ज्यादा जीवन में उतारे उसे ही ज्यादा मार्क्स प्रदान किए जाए। इसे पढ़ते ही सभी को पता चल जाएगा कि हम जो कुछ भी करेंगे वो ही हमें व्याज के साथ वापस मिलेगा। अच्छा करेंगे तो

अच्छा और बुरा करेंगे तो बुरा। सजा के रूप में कोर्ट तो एक बार फांसी दे सकती है पर कुदरत तो अनंतबार मारने के बाद भी नहीं छोड़ेगी। मात्र पैसा ही सर्वस्व नहीं है पर जिसके कारण हम यहाँ पर मौज-मजा कर रहे है वो आत्मा भी महत्त्वपूर्ण है और पैसे के पीछे आत्मा का अगर ध्यान न रखा तो आनेवाले जन्मों में ना तो पैसा मिलेगा और ना ही मानव जन्म भी। कुदरत हमें उठाकर ऐसे स्थान पर फेंक देगी जहाँ पर हम खुन के आंसु गिराएंगे तो भी पोंछने वाला कोई नहीं मिलेगा। वर्तमान में मानव के सिवाय दूसरे प्राणियों की क्या हालत है वो प्रत्यक्ष ही हैं।

जैसे कोई त्रिकालज्ञानी हमें मिल जाए तो हम उसे कभी छोड़े ही नहीं क्योंकि उसके पास हमारे सभी सवालों के जवाब तैयार ही होते है। वैसे वर्तमान में त्रिकालज्ञानी भले न हो पर उनका ज्ञान कितना विशाल था इसकी झांकी इस ग्रंथ से अवश्य मिल सकेगी और इसे पढ़ने के बाद हमारे भी बहुत सारे प्रश्नों का समाधान अवश्य मिल सकेगा और जीवन को एक सही दिशा मिलेगी। मानसिक शांति प्राप्त करने तथा जीवन को सार्थक करने इस ग्रंथ का अध्ययन करके इसके सिद्धांतों को जीवन में उतारने का प्रयत्न अवश्य करे... यही अभिलाषा...

धर्म का शुद्ध स्वरूप जानने तथा आत्मा को दुर्गुणमुक्त बनाकर शांति-समाधि-सद्गति और मोक्षसुख कैसे प्राप्त करें ? इस विषय में आप अगर विशेष जानना चाहते हों तो मिलने आ सकते हों और आपके ग्रुप के लिये इस विषय में सेमिनार रखने की आपकी इच्छा हों तो इस लेख के अंत में दिये गए पते पर हमें अवश्य संपर्क करें। आपके प्रत्येक सवाल का संतोषकारक जवाब दे सके ऐसे विशिष्ट व्यक्तिओं को आपके पास यहाँ से भेजा जाएगा। इस विषय के अन्य पुस्तकों को प्राप्त करने तथा इस विषय से संबंधित प्रश्नों को आप पत्र, वोट्सएप या ई-मेल द्वारा भी पुछवा सकते हो।

साथ में जिन्होंने जैनधर्म के तत्त्वज्ञान का विशिष्ट अभ्यास किया हो और अपने शेष समय में देश-विदेश में जाकर इन सेमिनारों में दूसरों को समझाने के लिये अपना समय दे सकते हो वे भी हमसे अवश्य संपर्क करे क्योंकि धनदान करनेवाले से भी आध्यात्मिक ज्ञानदान करनेवाला करोडों गुना ज्यादा फल प्राप्त करता है क्योंकि धन के द्वारा व्यक्ति की वर्तमान समस्याओं का विसर्जन होता है पर आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा तो समस्याओं के मूल समान अनंत जन्म-मरण का ही विसर्जन हो जाता है। तब "ना रहेंगा बाँस, ना बजेगी बाँसुरी"। इसलिये अगर शक्य हो तो आप भी आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त कर इसे योग्य जीवों तक अवश्य पहुँचाए।

मुनि हीररत्नविजयजी म.सा.

संपर्क सूत्र - राहुल जे. शाह
कोहिनूर फैशन हाउस, हाजा पटेल पोल के सामने,
टंकशाल, कालुपुर, अहमदाबाद-१. मो,-०९८९८१११२१३
E-mail: bhagwankajawab9@gmail.com

आशीर्वचन

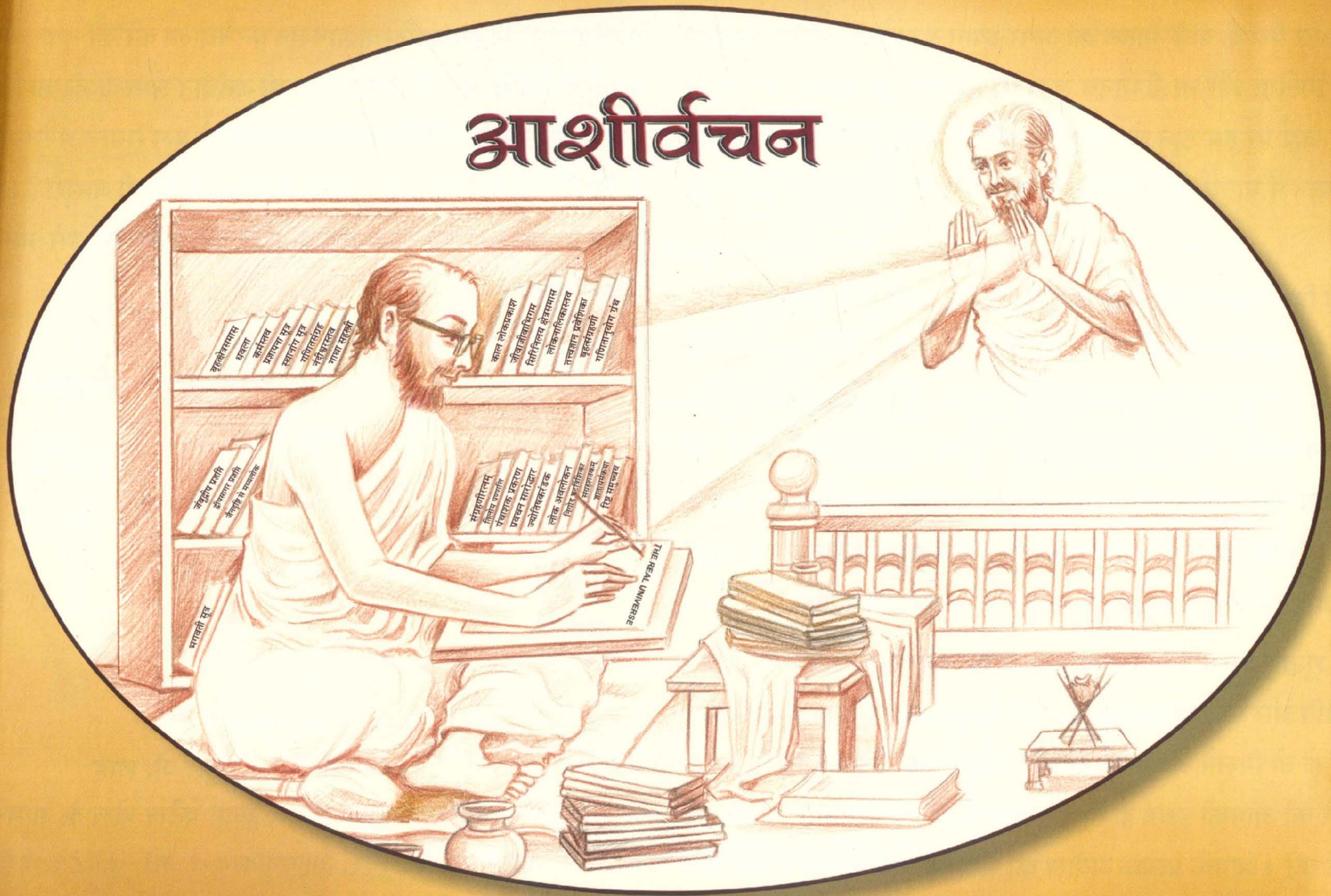

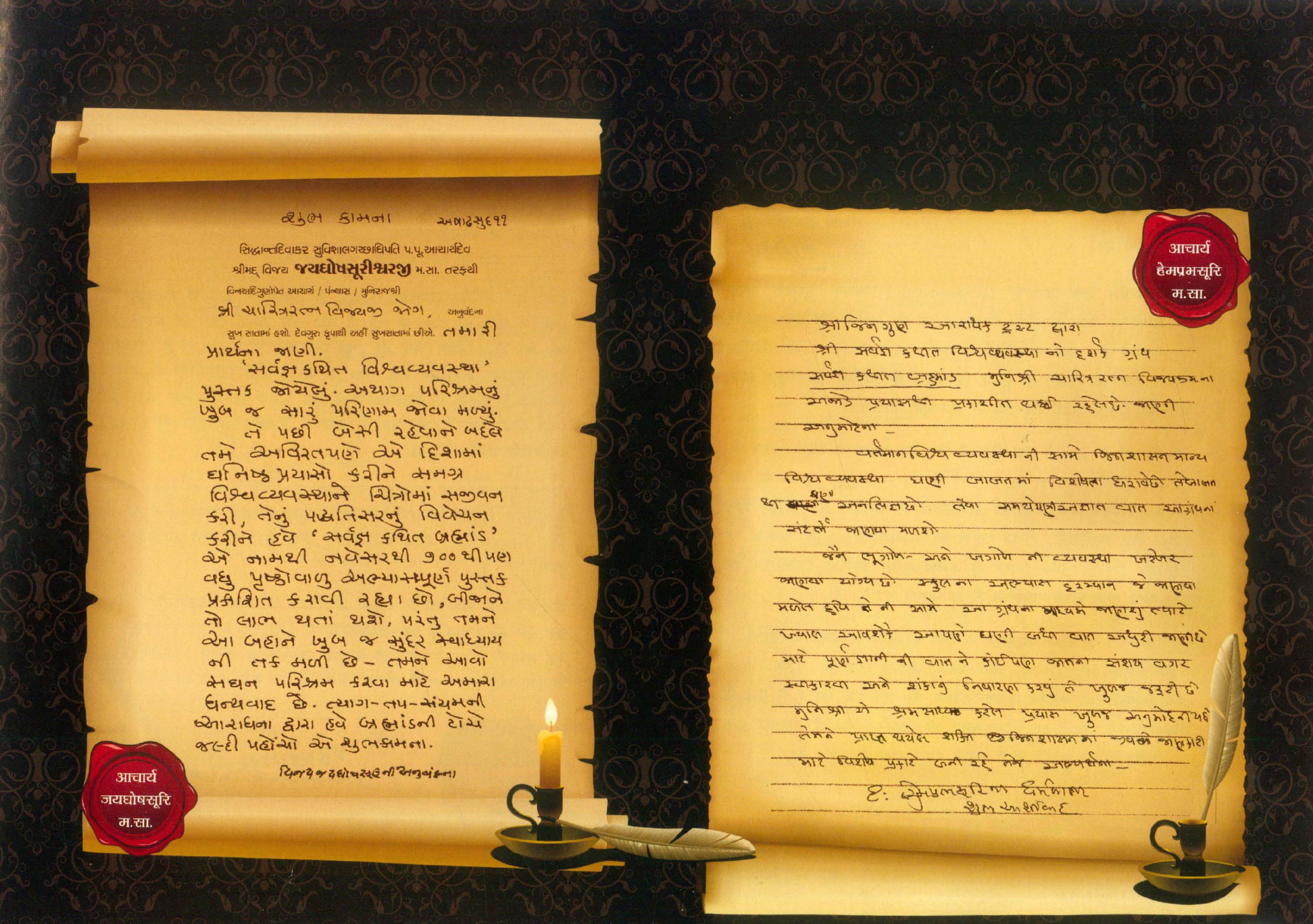

शुभ કામના   અષાઢસુદ ૧૧

સિદ્ધાન્તદિવાકર સુવિશાલગચ્છાધિપતિ પ.પૂ.આચાર્યદેવ
શ્રીમદ્ વિજય **જયઘોષસૂરીશ્વરજી** મ.સા. તરફથી

વિનયાદિગુણોપેત આચાર્ય / પંન્યાસ / મુનિરાજશ્રી
શ્રી ચારિત્રરત્ન વિજયજી જોગ, અનુવંદના

સુખ સાતામાં હશો. દેવગુરુ કૃપાથી અહીં સુખસાતામાં છીએ. તમારી પ્રાર્થના જાણી.

'સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વવ્યવસ્થા' પુસ્તક જોયેલું. અથાગ પરિશ્રમનું ખુબ જ સારું પરિણામ જોવા મળ્યું.

તે પછી બેસી રહેવાને બદલે તમે અવિરતપણે એ દિશામાં ઘનિષ્ઠ પ્રયાસો કરીને સમગ્ર વિશ્વવ્યવસ્થાને ચિત્રોમાં સજીવન કરી, તેનું પદ્ધતિસરનું વિવેચન કરીને હવે 'સર્વજ્ઞ કથિત બ્રહ્માંડ' એ નામથી નવેસરથી ૭૦૦ થી પણ વધુ પૃષ્ઠોવાળુ અભ્યાસપૂર્ણ પુસ્તક પ્રકાશિત કરાવી રહ્યા છો, બીજાને તો લાભ થતાં થશે, પરંતુ તમને આ બહાને ખુબ જ સુંદર સ્વાધ્યાય ની તક મળી છે – તમને આવો સઘન પરિશ્રમ કરવા માટે અમારા ધન્યવાદ છે. ત્યાગ-તપ-સંયમની આરાધના દ્વારા હવે બ્રહ્માંડની ટોચે જલ્દી પહોંચો એ શુભકામના.

વિજયજયઘોષસૂરિની અનુવંદના

आचार्य
जयघोषसूरि
म.सा.

आचार्य
हेमप्रभसूरि
म.सा.

શ્રી જિનગુણ આરાધક ટ્રસ્ટ દ્વારા
શ્રી સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વવ્યવસ્થા નો દુસરો ગ્રંથ
સર્વજ્ઞ કથિત બ્રહ્માંડ મુનિશ્રી ચારિત્રરત્ન વિજયજીના
અથાગ પ્રયાસથી પ્રકાશીત થઈ રહેલ છે. જાણી
અનુમોદના –

વર્તમાન વિશ્વ વ્યવસ્થા ની સામે જિનશાસન માન્ય વિશ્વ વ્યવસ્થા ઘણી બાબતમાં વિશેષતા ધરાવે છે તેથી આ ઘણાં અનભિજ્ઞ છે તથા સમયોચિત [illegible] વાત આ ગ્રંથના સંદર્ભે જાણવા મળશે

જૈન ભૂગોળ અને ખગોળ ની વ્યવસ્થા જરૂર જાણવા યોગ્ય છે સ્કુલના અભ્યાસ દરમ્યાન જે જાણવા મળેલ હોય તેની સામે આ ગ્રંથના માધ્યમે જાણશું ત્યારે ખ્યાલ આવશે કે આપણે ઘણી બધી વાત અધુરી જાણીએ છે માટે પૂર્ણ જ્ઞાની ની વાત ને કોઈપણ જાતના સંશય વગર સ્વીકારવા અને શંકાનું નિવારણ કરવું તે ખુબ જ જરૂરી છે મુનિશ્રી એ શ્રમસાધ્ય કરેલ પ્રયાસ ખુબજ અનુમોદનીય છે તેમને પ્રાપ્ત થયેલ શક્તિ જિનશાસનમાં [illegible] જાણકારી માટે વિશેષ પ્રકારે બની રહે એવ અભ્યર્થના –

દ: હેમપ્રભસૂરિના ધર્મલાભ
શુભ આશીર્વાદ

। श्री सद्गुरुभ्यो नमः ।

Date : 2-8-14
नाकोड़ा

। आशीर्वचन।

'सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था' (Jain cosmology) विषयक पुस्तक आपके द्वारा संपादित होकर प्रकाशित किया जा रहा है। आपका यह प्रयास अतिव अनुमोदनीय है। ऊर्ध्व-अधो तिर्यगलोकमय जगत के विषय को संपादित करके आपने जो मेहनत की है वह जिज्ञासुओं की पिपासा को परितृप्त करने में समर्थ होगी। एतदर्थ मेरी ओर से खूब खूब अभिनंदन।

जिज्ञासुजनों के मन में प्रश्न होता है कि जैन दर्शन में संपूर्ण जगत की व्यवस्था किस प्रकार से बतलाई गई है जो एक अद्भुत रहस्य है। इस विषयक विस्तृत वर्णन अनेकों आगमग्रंथों में संगृहित है। जिसमें विश्व संरचना की अवस्थिति, शाश्वत पदार्थों का परस्पर अंतर, गति, स्वभाव एवं कालमान इत्यादि अनेक प्रकारों से खगोल-भूगोल संबंधित जिज्ञासाओं को शांत करने वाली चौदह राजलोक की अवधारणा सुप्रसिद्ध है।

आत्मपरिणति को विकसित करने के लिये परमात्मा ने बारह भावनाओं का चिंतन दिया है, जिसमें लोकस्वरूप भावना भी है। जिस प्रकार द्रव्यानुयोगादि का स्वाध्याय ज्ञान-ध्यान की अभिवृद्धि करता है वैसे ही लोकस्वरूप के पदार्थों का चिंतन-मनन भी ध्यानस्थ होने में सहायक होता है। गुरुगम पूर्वक समजने से ही इसका यथार्थ बोध हो सकता है।

वर्तमान में वैज्ञानिकों द्वारा नयी नयी खोज पूर्वक अनेक मंतव्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं। परंतु उनकी खोज और सोच दोनों सीमित है। इस विषय में अभी तक वे पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इसिलिये आए दिन उनके अभिप्रायों में परिवर्तन-फेरफार होता रहता है। जब कि सर्वज्ञ द्वारा कथित वचनों में कभी भी कोई परिवर्तन नहीं होता है।

हमारे यहां गणितानुयोग का पूर्वकाल में विशालतम साहित्य उपलब्ध था। कुछ तो काल की वजह से नष्ट हो गया और अमुक बहार के यवनों द्वारा नष्ट कर दिया गया। फिर भी बहुत-कुछ साहित्य बचा हुआ है। कालवश इसके पूर्वापर के संबंध नहीं मिल पा रहे हैं ऐसी परिस्थिति में भी जो उपलब्ध है उसमें से संकलित करके इस विषय को बालग्राह्य बनाने का प्रयत्न किया गया है और वह भी आज के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समजाने की महती कोशीश की है।

विद्वान् मुनि प्रवर श्री चारित्ररत्न विजयजी म. ने इस ग्रन्थ का सुन्दर रूप से व्यवस्थित संपादन किया है, जो अभिनंदनीय है। मेरा विशवास हैं की यह हिंदी संस्करण का ग्रन्थ विद्वानों एंव शोधकर्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुरूप एवं विषय के अनुरूप चित्रांकनों से समृद्ध इस ग्रंथ को बनाया है वह अभिनंदनीय है, प्रशंसापात्र है। इस में प्रस्तुत की गई सामग्री के पठन-मनन से जिज्ञासु जन सर्वज्ञ कथित लोकस्थिति को जानकर धर्म आराधना में उत्तरोत्तर आगे बढ़े बने यही मंगल कामना है।

आचार्य
पद्मसागरसूरि
म.सा.

पद्मसागरसूरि

आनंदनो अहेसास

आचार्य गुणरत्नसूरि म.सा.

अविहड राग साथे गुरुनी आज्ञानुं पालन ए ज शिष्य माटे अविरत आशीर्वाद छे. मुनिश्री चारित्ररत्नविजयजीए गुरुनी आज्ञाने लक्षमां लईने संकलन अने सर्जन माटे जे जहेमत उठावी छे, ते खूब ज प्रशंसार्ह छे. महेनत अने उत्साह द्वारा तेमना थकी थयेली फळश्रुति सहु कोईने आनंद पमाड्या विना न रहे... आवुं अद्‌भुत कार्य मुनिवरश्री द्वारा थयुं छे, ते बदल मारा अंतरना आशीर्वाद... !

योगसाधना माटे चित्तनी एकाग्रता अनिवार्य छे. प्रस्तुत संकलनमां द्रव्यानुयोगना विभिन्न विषयोनी जे सुंदर छणावटो थई छे, ते जोतां एम लागे के आ ग्रंथ चित्तने तन्मय अने स्थिर बनाववा माटे समर्थ "आलंबनरूप" छे...

सेंकडो चित्रो द्वारा जे विषय प्रस्तुतिओ थई छे, ते जोतां एम लागे छे के आ ग्रंथ बाळजीवोने अध्ययनादि माटे प्रोत्साहित करवा खूब ज सुंदर "आकर्षणरूप" छे...

विषयोनी प्रामाणिकता पुरवार करवा जे सेंकडो साक्षीपाठो मूकाया छे, ते जोतां हैयुं बोली उठे छे के, आ ग्रंथ कदाच "आप्तवचनरूप" ज तो नथी ने ?

सामान्यप्रज्ञाथी अगोचर एवा अढळक पदार्थोना उपन्यास द्वारा, सर्वज्ञ कथित जैनशासन पर श्रद्धा अने आस्था पेदा थवाथी, आ ग्रंथ भव्यजीवोने सन्मार्ग तरफ खेंचवा "आवर्जनरूप" पण बने ज...

खरेखर, आवी अनेकानेक विशेषताओथी तरबतर बनेलो आ ग्रंथ अवश्य मननीय, परिशीलनीय अने भावनीय छे. आना सूक्ष्म परिशीलन द्वारा (१) प्रज्ञा-वैशद्य, (२) श्रद्धा - स्थैर्य अने (३) आत्मनैर्मल्य प्राप्त थईने ज रहेशे...

आवा ग्रंथरत्नोंना संकलन-सर्जन द्वारा मुनिवरश्री आत्मश्रेयने प्रगतिशील बनावे, प्रज्ञाने मार्गानुसारी क्षयोपशमथी परिप्लावित बनावे, परिणतिने परमपदलक्षी बनावे, आत्माने आनंद-ऐश्वर्यनी अविरत यात्राऐ प्रवाहशील बनावे... ऐ ज अंतरना आशीर्वाद...!

खूब आगळ वधो... श्रमणजीवनने सफळ बनावो... आत्माने परमात्मा तरफ गतिमान करो...

ए ज आ. वि. गुणरत्नसूरि

आचार्य
कलाप्रभसूरि
म.सा.

ॐ

तिथि: आषा[श्रा.] कृ. १
तारीख: 13-7-2014

आज-कल जैन लोगों को भी शायद ही मालुम होगा कि जैन दृष्टि से ब्रह्मांड का स्वरूप क्या है? स्कूल में तो 'पृथ्वी गोल है' इत्यादि पढ़ाया जाता है। प्रायः कर के वही बात उसके मन में स्थिर हो जाती है। पृथ्वी अगर गोल है, घुमती है, सूर्य की चारों ओर चक्कर काटती है तो फिर स्वर्ग कहां? नरक कहां? मोक्ष कहां? धर्म का भी मतलब क्या? अतः यह विज्ञान स्वाभाविक रूप से ही नास्तिकता की ओर ले जाता है। आज-कल नास्तिकता बढ़ने का यह भी कारण है।

इस नास्तिकता को रोकने का प्रयास 'सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड' पुस्तक के माध्यम से हो रहा है, यह आनंद की बात है।

पूज्य आ. श्री गुणरत्नसूरि-आ. श्री रश्मिरत्नसूरि के शिष्य मुनिश्री चारित्ररत्नविजयजी द्वारा तैयार किया गया यह ग्रन्थ नास्तिकता के अंधकार को हटाने में सूर्य समान हो, ऐसी हम अभिलाषा व्यक्त करते हैं।

— विजयकलाप्रभसूरि
गांधीधाम [कच्छ]

भूगोल शब्द दुनियामें प्रसिद्ध है, मगर सत्य भूगोल क्या है? इस तथ्यसे आजका अधिकांश बुद्धिवादी वर्ग अज्ञात है।

दुनियाके कुछ तथ्योंको उजागर करने हेतु आजके वैज्ञानिकोंने अथाग परिश्रम तथा समय एवं संपत्तिका व्यय किया है फिर भी वे लोग दुनियाके तथ्योंको वास्तविक रूपमें जान नही पाये यह उनकी कमजोरी एवं कमनसीबी है। जब कि अपने सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमपिता परमात्माने कोई भी प्रयोग बिना योगकी साधनासे उत्पन्न ज्ञानमें दुनियाकी वास्तविकताको जिस रूपसे जानी उसी रूपसे बताई है।

इसके प्रमाणभूत अगणित ग्रंथरत्न आज भी अपने पास उपलब्ध है यह अपना परम सौभाग्य है। लेकिन बडे खेदकी बात है कि- इन ग्रंथोको पढना तो दूरकी बात है, जैनोंको इन ग्रंथोके नाम तक पता नही।

भौतिक विज्ञानको पाने जानने के लिये कडी महेनत करनेवाले आजके दिशाशून्य युवावर्गको सर्वज्ञकथित सत्य विज्ञानको जानने-समझनेकी फुरसद तक नही है।

ऐसे विकट समयमें लोगोंके अंतरमें सत्य विज्ञान एवं भूगोलादि जाननेकी तमन्ना प्रगट हो वैसे सत्साहित्यकी अत्यावश्यकता है।

कुछ समय पहले ऐसा ही एक ग्रन्थ Jain Cosmology नामसे गुर्जर भाषामें प्रगट हुआ था। उसमें किया हुआ संकलन-चित्रांकन-पदार्थका निरूपण देख प्रसन्नता हुई।

उसी ग्रंथकी हिन्दी संवर्धित आवृत्ति प्रगट हो रही है, यह आनंदकी बात है।

अल्प संयमपर्यायमें संकलक मुनिश्रीने किया हुआ यह पुरुषार्थ अनुमोदनीय है।

जिनाज्ञाको नजर समक्ष रखकर ऐसे ही उपयोगी साहित्यको मुनिश्री प्रगट करते रहे ऐसी मेरी शुभाशिष है।

इस ग्रंथके माध्यमसे अज्ञात वर्ग सर्वज्ञकथित तत्त्वज्ञानसे ज्ञात बने, पूर्वाचार्योद्वारा विरचित तत्त्वार्थ, बृहत्संग्रहणी, लोकप्रकाश, क्षेत्र समास आदि ग्रंथोके ज्ञाता बने एवं सम्यग्ज्ञानसे सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर, सम्यक्चारित्रको अपने जीवनमें अपनाकर शीघ्रमेव सर्वज्ञताको प्राप्त करे यही शुभकामना...।

-विजय पुण्यपालसूरि

वि.सं. २०७० अषाढ सुद-१५

विजय रामचन्द्रसूरि आराधना भवन-गोपीपुरा सुरत

आचार्य पुण्यपालसूरि म.सा.

आचार्य
हेमप्रभसूरि
म.सा.

दिनांक 20/ 7 /14

शासन प्रभावक

आ. श्री वि. गुणरत्नसूरिजी
आ. श्री वि. रश्मिरत्नसूरिजी
मु. श्री. चारित्ररत्नविजयजी

आदि को आ. श्री विजय हेमप्रभ सूरि का
अनुवंदना / सुख-शाता।

आपका पत्र मिला। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। जैन साहित्य, भूगोल, खगोल का विषय सचित्र तैयार कराकर आपने जो छपाने का प्रयास किया है वह सराहनीय एवं अनुमोदनीय है।

आपके प्रयास की अंतर से अनुमोदना करते हैं। सर्वज्ञ कथित श्रुतज्ञान के माध्यम से जीवात्मा अपना कल्याण करे यही मंगल कामना के साथ

विजय हेमप्रभसूरि

ता.: अ. सु. १२।७०

तत्त्वप्रकाशन प्रेमी

मुनिराज श्री चारित्ररत्न विजय म.

अनुवंदना देवगुरु पसाये शाता है।

शाता-

आपका ता. ५-७-७० का पत्र मिला।

सर्वज्ञ कथित ब्रह्माण्ड प्रश्न आप प्रकाशित कर रहे हो। जानकर खुशी हुई।

सर्वज्ञ परमात्माने जो कहा वह तो सत्य है ही। एक अंश भी गलत नहीं है। और नहीं हो सकता है।

किन्तु आजके प्रचलित विज्ञान युग में सर्वज्ञ प्रभु की बात को आजकी भाषा में शास्त्र प्रमाण और प्रयोग द्वारा प्रकाशित करने से आजके व्यक्ति के मानसमें वह बात जल्दी समझने में आती है। इसलिए मेरे पूज्यपाद पं. गुरुदेव श्री अभयसागरजी म. सा. ने [illegible] साल से आजके विज्ञानकी बात कीतनी गलत है। और परमात्मा की वाणी कीतनी सत्य है। यह बात जनता को समझाने के लिए जंबूद्वीप संकुल की स्थापना कर आजके वैज्ञानिकों को चेलेन्ज दीया ३७,से ज्यादा सभी भाषामें पुस्तकों का प्रकाशन करवाया। अमेरिका की नासा संस्था रशियाकी नासा संस्थाके साथ पत्र व्यवहार कीया और भूगोल संबंधी चक्र संबंधी आगमको साबीत करने वालों को एक करोड़ रु. का इनाम जाहेर कीया। कोई भी सामने न उतरा। पचास हजार वैज्ञानिकों की मान्यता को साबीत करने [illegible] आप भी यह प्रयत्न में आगे बढ़ रहे हो जानकर खुशी हुई।

शासनदेव आपको सहयोग दे एसी कामना व आशीर्वाद।

[signature]

आचार्य
अशोकसागर
सूरि म.सा.

आचार्य
सूर्योदयसूरि
म.सा.

ॐ

श्रुतभक्तिपरायण मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी आदि..!

सादर अनुवन्दना - शाता।

- लोकालोकप्रकाशनभास्कर यथास्थितार्थवादी चरमतीर्थपति प्रभुमहावीरदेवकी श्रीमुखसे प्रकाशित त्रिपदी जो श्रुतगंगाकी गंगोत्री है, तो अंग- उपांग - निर्युक्ति - चूर्णि - भाष्य - प्रकरण - कर्मग्रन्थादि ग्रंथराशि श्रुतगंगाका विराट प्रवाह है।

- चार अनुयोग - षड्द्रव्य - नवतत्त्व इत्यादिरूपमें सन्निहित वह श्रुतराशिकी झलक-रूप परिचयहेतु 'सर्वज्ञकथित ब्रह्मांड' नामक सचित्र दलदार ग्रन्थ आपके सत्प्रयाससे प्रकाशित हो रहा है यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई।

- ७०० पेजसे अधिक विस्तार, भूगोळ - खगोळकी सचित्र जैन मान्यताप्रस्तुति, अनेक आगम-प्रकरण ग्रन्थोंके आधार इत्यादि विशिष्टतासम्पन्न यह ग्रन्थ वाचकके हृदयमंदिरमें प्रभुशासनकी शाश्वत प्रतिष्ठाका निमित्त बने और सभी वाचक सच्चा कल्याणमार्गकी ओर प्रगति करे यही हमारी शुभाशिष है।

भाद्र. शुक्ला षष्ठी, दि.३१-८-१४ — कांदिवली-पूर्व. मुंबई
- विजयसूर्योदयसूरि
- विजयराजरत्नसूरि

आचार्य
राजरत्नसूरि
म.सा.

आ. श्री जितरत्नसागरसूरि
दि. 20/8/2014.

गोडीपार्श्वनाथ जैन टेम्पल
पायधूनी, मुंबई महाराष्ट्र

विद्वद्वर्य मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.

सादर अनुवंदना...!

आपका पत्र मिला। आपके द्वारा 'सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड' नामक विशाल ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है इसके लिए धन्यवाद...। क्योंकि आज के इस वैज्ञानिक युग में खूब ही भ्रान्तियां फैलाई जा रही है यदि समय रहते हमने प्रतिकार नहीं किया तो मिथ्यात्व को इतना बढावा मिलेगा जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते है।

हमारे तारक तीर्थंकर परमात्माओं ने भूगोल और खगोल पर सचोट ज्ञान आगमों में परोसा है एवं पूर्वधरों ने हमारा मार्ग-दर्शन भी किया है मगर हम आज तक हमारी ज्ञान धरोहर को जगत के सामने नहीं रख पाए हैं। यदि जो भी कुछ बचा है वह पूज्य पंन्यास प्रवर श्री अभयसागरजी म. सा. की वजह है।

आज हमें खूब ही खुशी हुई है कि आपके जैसे मुनिराज इस कार्य को अंजाम देने आगे आए है एवं जैनधर्म का सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड विषय पर पुस्तक प्रकाशित करवा कर जैन धर्म का पक्ष विश्व के सामने प्रस्तुत कर रहे है एतदर्थ आपको खूब-खूब साधुवाद..!

आपकी प्रकाशन शैली एवं उसमें जो सामग्री दी जा रही है वह भी आधुनिक होने से आपका यह प्रकाशन खूब ही लोक-प्रिय बनने की संभावना है।

पुनः आपके प्रयास की हम अनुमोदना करते है।

जितरत्नसागर

आचार्य
जितरत्नसागर
सूरि म.सा.

અષાઢ કૃષ્ણા-૭
પાલ- સૂરત

મુનિશ્રી ચારિત્રરત્નવિજય મ.

સાદર અનુવંદન,

સુખશાતા હોગી।

'સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વવ્યવસ્થા' ગુજરાતી આવૃત્તિ કાફી લોકપ્રિય બની एवं હિન્દી સંસ્કરણ (સંવર્ધિત) પ્રકટ હોને જા રહા હૈ યહ બાત હિન્દીભાષી જગત કે લિએ બડા સૌભાગ્ય કી બાત હૈ।

'One picture is more than thousands word' ઇસ ઉક્તિ કે અનુસાર ચિત્ર કિસી બાત કો સમઝનેમેં બહુત ઉપયોગી હોતે હૈ ખાસ કરકે બ્રહ્માંડ- ભૂગોલ- ખગોલ જૈસે વિષયમેં તો ચિત્રોં કી અનિવાર્યતા કા અનુભવ હોતા હૈ।

અનેક ચિત્રો વ શાસ્ત્રપાઠોં કે સાથ વિષયકા સરલ પ્રસ્તુતીકરણ કરકે આપને જિજ્ઞાસુવર્ગ પર બડા ઉપકાર કિયા હૈ।

બહુત બહુત ધન્યવાદ!

દ. મુનિચંદ્રસૂરિ
અનુવંદના।

आचार्य
मुनिचंद्रसूरि
म.सा.

आचार्य
रत्नचन्द्रसूरि
म.सा.

॥ अणमोल ग्रन्थ का स्वागत ॥

चरम तीर्थपति श्रमण भगवान् महावीरदेव ने जब केवलज्ञान की प्राप्ति हुई तब आपने केवलज्ञान का दर्पण में देखकर तीर्थ की स्थापना की.
इसी समय गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना की. ये आगमशास्त्र में पुरा ब्रह्मांड का दर्शन है.
चौदराज का वर्णन, नरक, देव, तिर्च्छालोक मेरुपर्वत, नदी-द्रह इत्यादि की महत्वपूर्ण माहिती मिलती है.
उन्ही के आधार से ही मुनि श्री चारित्ररत्न विजयजी ने अद्भुत संकलन कीया.
"सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड" में जो माहिती दी है वो अद्भुत है. यह ग्रन्थ की त्रिलोकी महिमा ना कह शकते !
इस में क्या है, ये सवाल नहि पूछना बल्कि इस में क्या नही है ! ये सवाल पूछने जैसा है!
ब्रह्मांड के अलावा जैन शासन की मान्यता आदि भी अच्छी तरह से आप पढ़ शकते है
यह ग्रंथ पठन से जैन धर्म का काफी ज्ञान एवं जानकारी मिलती है.
संपादक को पुनः पुनः धन्यवाद ॥

दि. 16-7-2015 लि. विजय रत्नचन्द्रसूरि

અદ્‌ભુત 'સાઈન બોર્ડ'

રસ્તા પર રહેલ 'સાઈન બોર્ડ' મુસાફરી કરી રહેલા મુસાફર માટે કેટલું ઉપકારક બની રહે છે એ તો જે મુસાફર બનીને મુસાફરી કરતો હોય એને જ ખ્યાલ આવે. 'સાઈન બોર્ડ' મુસાફર પર બે પ્રકારના ઉપકારો કરતું રહે છે. ગલત માર્ગ પર કદમ માંડતા એને બચાવી લેતું હોય છે તો સાથોસાથ સમ્યક્ પર કદમ માંડવા એને પ્રોત્સાહિત કરતું રહે છે.

વીતરાગ સર્વજ્ઞ અરિહંત પરમાત્માના વચનો આખરે છે શું? 'સાઈન બોર્ડ' જ! દુઃખ-દોષ-કુકાર્ય-દુર્બુદ્ધિ અને દુર્ગતિ તરફ જતા રસ્તાઓ કયા કયા છે એ ય એ બતાવતા રહે છે તો સુખ-સદ્‌ગુણ-સત્કાર્ય-સદ્‌બુદ્ધિ, સદ્‌ગતિ યાવત પરમગતિ તરફ જતા રસ્તાઓ કયા કયા છે એ ય એ બતાવતા રહે છે.

આમાં પાછું કમાલનું આશ્ચર્ય છે કે સાઈન બોર્ડની ગરજ સારતા પરમાત્માના વચનો સ્વયં નિસ્પૃહ છે અને છતાં સન્માર્ગગમન કરવા માગતા સાધકોને સક્રિય બની જવા પ્રોત્સાહિત કરવામાં એનો બીજો કોઈ જોટો નથી.

'સર્વજ્ઞ કથિત બ્રહ્માંડ' ની ઓળખ જ શબ્દમાં ઓળખ આપવી હોય તો એમ કહી શકાય કે આ આખો ય ગ્રંથ 'સાઈન બોર્ડ' છે. તમારે ક્યાં જવા જેવું છે, ક્યાં જવા જેવું નથી, શું મેળવવા જેવું છે, શું કરવા જેવું છે, શું બનવા જેવું છે અને શું જાણવા જેવું છે એની ધારદાર માહિતિ આપતો આ ગ્રંથ તમારા જીવનનું તમારા હૃદયનું, તમારા મનનું ચમત્કારિક પરિવર્તન કરવાની મસ્ત ક્ષમતા ધરાવી રહ્યો છે.

મુનિરાજ શ્રી ચારિત્રરત્નવિજયજીએ આ ગ્રંથસર્જન માટે જે જહેમત ઉઠાવી છે અને જે સૂઝબૂઝ વાપરી છે એ સાચે જ કાબિલેદાદ છે.

આ ગ્રંથ 'સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વવ્યવસ્થા' ના નામે ગુજરાતી ભાષામાં પ્રકાશિત પણ થઈ ચૂક્યો અને લોકપ્રિય પણ બની ગયો એ જ દર્શાવે છે કે આ ગ્રંથની ઉપયોગિતા અને ઉપાદેયતા કેવી ધારદાર હશે!

શુભ કામના વ્યક્ત કરું છું કે વિદ્વદ્વર્ય મુનિરાજ શ્રી ચારિત્ર રત્ન વિજયજી ની આ ગ્રંથસર્જન પાછળની પ્રશંસનીય, વંદનીય અને અનુમોદનીય જહેમતની સફળતાને વધુ ને વધુ કદર કરે અને ગ્રંથવાચનના માધ્યમે પોતાના આત્મદ્રવ્યને નિર્મળ બનાવવાની દિશામાં મક્કમ પણે આગળ વધે.

લિ..
આ. વિજય રત્નસુંદરસૂરિ
શ્રા. સુ. ૧૨
ઔરંગાબાદ

आचार्य
रत्नसुंदर
सूरि म.सा.

किंचित् प्रासंगिकम्

आचार्य जयसुंदरसूरि म.सा.

'जैन कोस्मोलोजी' ग्रन्थ का मनभावन नजराना श्री संघको प्राप्त होने के पश्चात् उस के सुविकसित स्वरूप के साथ 'द रियल युनिवर्स' नाम से सुसज्ज विधा-सुगन्ध से तरबतर एक पुष्पगुच्छ, मुनिवर श्री चारित्ररत्न विजयजी श्री संघ के करकमल में अर्पण कर रहे हैं यह घटना केवलज्ञानप्राप्ति के अंश की उपलब्धि जैसी रोमांचक है।

आज तक इस ढंग से प्रायः और कोई ग्रन्थ कहीं भी प्रकाशित हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं। रियली अपने आप में यह एक अनूठा शास्त्र कहा जा सकता है।

सर्वज्ञ कथित जैन विश्व का जो यहाँ बडे बडे चित्रों के साथ सुस्पष्ट विवेचन दिया गया है उस के पीछे मुनिवरश्री का परिश्रम बहुत स्तुत्य है। करिब 300 से भी अधिक जैन ग्रन्थों का आगम-प्रकरणों का अवगाहन और साक्षि दे कर इस ग्रन्थराज का निर्माण किया गया है। नामूलं लिख्यते किंचित् इस उक्ति को यहाँ सार्थक किया गया है। अतः जैनों के सभी सम्प्रदायों में उपादेय है।

दृश्य एवं अदृश्य स्वरूप विश्व का, प्राचीन काल में सर्वज्ञ उपरांत अन्य आर्षदृष्टा ऋषि-मुनियोंने कैसा आलेखन अवलोकन किया है इस रहस्य को पाने के लिये सचमुच Ph.D. के निबन्ध की तरह यह ग्रन्थ मननीय है।

जिन विद्याव्यसनी पंडितों को जैन, बौद्ध, वैदिक एवं आधुनिक विश्वरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने की भावना हो उन विद्वानों को इस ग्रन्थ में प्रचुर सामग्री-सहायता उपलब्ध हो सकती है।

600 से अधिक थ्री-डी बहुरंगी चित्रों-MAPS आदि का इतना विशाल संग्रह विषय के स्पष्टीकरण के लिये अत्यधिक उपयुक्त बना रहेगा।

आशा करते हैं कि जैन श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविका वर्ग बडे उत्साह से इस ग्रन्थराज का स्वाध्याय कर के प्रचुर निर्जरा लाभ प्राप्त करेंगे, मुनिवर के प्रयासों को यही वास्तविक अंजलि श्रद्धांजलि बन कर रहेगी। सहस्रशो धन्यवाद। आ. जयसुंदरसूरि—

Jaysundara suri

ॐ ह्रीं अर्हं श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः
तपागच्छाचार्य श्री प्रेमभुवनभानुजयघोषजितेन्द्र गुणरत्नसूरिसद्गुरुभ्यो नमः

विनयादिगुणोपेत मुनिश्री चारित्ररत्न विजयजी
अनुवंदना सुखशाता पृच्छा
देवगुरु की असीम कृपा से यहाँ सुखशाता है।
सिद्धांतमहोदधि सूरिप्रेम के कृपापात्र दीक्षा
दानेश्वरी आचार्यश्री गुरुदेव श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी
महाराजा की सतत प्रेरणा कि साधु को १५
घंटे तो स्वाध्याय में बिताने चाहिये. उसमें
भूमिकानुसार गाथा कण्ठस्थीकरण, अर्थचिंतन, संशोधन
अनुप्रेक्षा, लेखन, नवसृजन आदि में लीन
रहना चाहिये। आपने अन्वेषण को अपना
मुख्य विषय बनाते हुए "द रीयल युनिवर्स"
पुस्तक तैयार की। सम्यग्ज्ञान पिपासुओं को
लाभ हो- सर्वज्ञ कथित सिद्धांतों से एवं
विश्वस्वरूप से सभी भलीभांति परिचित
हो, तदर्थ आपका प्रयास स्तुत्य है।
स्वाध्याययोग में स्थिर बन शाश्वत
सुख के आप स्वामी बनो, यही मंगलकामना
शिवास्ते पन्थानः

जेठ वदी ११ शुक्रवार
दि. १२-६-२०१५
शांतिनगर, अमदावाद

आचार्य
रश्मिरत्नसूरि
म.सा.

गुरुगुणरत्नसूरि चरणरज
विजयरश्मिरत्नसूरि

॥ श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ॥
॥ श्री हिमाचल-लक्ष्मी-रत्नाकर गुरुभ्यो नमः ॥

गांवगुडा (मेवाड़)

आचार्य विजय रविशेखरसूरी

दिनांक 17-8-2014

ज्ञान ध्यान- अभ्यासक मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.
अनुवन्दना सुखशाता।

प्रभु वीर ने 12½ वर्षों की उग्र साधना के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके समस्त प्राणीओ के कल्याणार्थ श्रुतगंगा को बहाया। अज्ञान तिमिर में भटकती प्रजा को जगत् का वास्तविक रूप दिखाया। प्रभु ने दुनिया बनाई नही किन्तु जैसी है वैसी बताई है।

आज विज्ञान जनता को गुमराह बना रहा है। आज की युवा पीढी जिन्हे जैन भूगोल का वास्तविक ज्ञान नही है, वो विज्ञान के वचन पर ही श्रद्धा रख रहे हैं। उनके लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपकारक सिद्ध होगा।

"सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था" गुजराती ग्रन्थ का कुछ वांचन किया था, बहुत सुंदर प्रयास है। अच्छे-अच्छे श्रद्धालु भी जिस बातों से अनभिज्ञ हैं, वो समग्र जानकारी संग्रहित कि है। हिन्दी ग्रन्थ की बहुत ही आवश्यकता थी, जो आपके द्वारा परिपूर्ण हो रही है।

ढाई द्वीप, मेरुपर्वत, विराट रजत- सुवर्ण पर्वत, विविध स्वाद से भरपुर पानीवाले समुद्र, छप्पनदिक्कुमारी आदि की सुक्ष्म जानकारी संग्रहित है। युवा पीढी को मालुम होगा कि हम कौनसी दुनीया में जी रहे हैं। विज्ञान से भी प्रभु का महा- -विज्ञान कितना विराट् है!

"सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड" नामक हिन्दी ग्रन्थ अनेक आत्माओ के दिल में सम्यग् ज्ञान दीपक जलायेगा। आपके प्रयास की अनुमोदना। आगे भी आप द्वारा साहित्य सेवा मिलती रहे यही अभिलाषा।

गुर्वाज्ञा से
ललितशेखर वि.

आचार्य
रविशेखरसूरि
म.सा.

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) नामक इस ग्रंथ का प्रकाशन हमारे अज्ञान के अंधकार को दुर करने के लिए सूर्य के समान हैं।

इसमें न केवल जैन सिद्धांतानुसार अक्षर रूप में ज्ञान हैं, मगर हर किसी विषयों को स्पष्ट करने हेतु चित्र पद्धति बताई हैं, जो मुनि श्री चारित्ररत्नविजयजी म. सा. के सूक्ष्म बुद्धि एवं ज्ञान की गहराई का स्वत: परिचय करा देती हैं।

इसमें केवल जैन सिद्धांतों को निराधार नहीं छोड़ा, मगर हर किसी पदार्थ को सैद्धांतिक व वैज्ञानिक आधार से प्रगट - स्पष्ट करने की कोशीश की गई हैं।

यह ग्रंथ चतुर्विध श्री संघ को अवश्यमेव उपयोगी बनेगा, इस ग्रंथ के आधार से हम हमारी पृथ्वी कैसी हैं ? तथा स्वर्ग-नरक वगैरह दुनिया कहाँ एवं कैसी हैं... इत्यादि हर पदार्थों को सत्य - सच्चे स्वरूप में बोध कर सकेंगे.....

तो आईए ! ऐसे ग्रंथ का पठन - पाठन कर हम धर्मध्यान में ऐसे लग जावे कि हमारी आत्मा का परिभ्रमण हरहंमेश के लिए बंध हो जावे...

इस सद्भावना के साथ...

पं. रत्नज्योतविजयजी म. सा.

आसो वद - ७ / 15-10-2014 / * ऊंझा

पं. रत्नज्योत विजयजी म.सा.

पं. मोक्षरति विजयजी म.सा.

श्रा. व. १३, वलसाड

आत्मा को धर्माभिमुख बनानेवाले और धर्ममग्न बनाए रखनेवाले आलंबनों में बारह भावनाएं एक श्रेष्ठ आलंबन मानी गई हैं। धर्मसंपादन के लिये अन्य सभी भावनाओं की उपयोगिता स्पष्टरूप से समझ में आ जाती है, परंतु लोक-स्वरूप भावना के लिये सहज प्रश्न होता है कि इसका प्रयोजन क्या होगा ? ज्ञानीओं ने मनःस्थिरता के लिये इसे बहुत उपयोगी माना है.... इस में भी आत्मा - परमात्मा, कर्मबन्धन - कर्मफल, धर्मसत्त्व - धर्मफल, संसार - मोक्ष जैसे पदार्थों का बोध सुस्थिर बनने के बाद तो इस भावना का प्रभाव और आनंद कोई अलग ही अनुभव में आता है.

ज्ञानानंदी मुनिराज श्री चारित्ररत्न विजयजी ने इस लोकस्वरूप को भावित करने के लिये एक जबरजस्त आलंबन हिन्दीभाषी जिज्ञासुओं को उपलब्ध कराया है. मुनिश्री का बोध और पुरुषार्थ पन्ने पन्ने पर दिख रहा है.

स्तुतिरचना के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करके मुनिश्री ने मुझे इस विषय का स्वाध्याय और आस्वाद कराया - इसके लिये मुनिश्री को हार्दिक साधुवाद !

इसी विषय के और भी नये-नये परिष्कृत प्रकाशन मुनिश्री की ओर से श्रीसंघ को मिलते रहेंगे, इसी शुभकामना के साथ....

पं. मोक्षरतिविजयजी म. सा.

।। अहो ! सर्वज्ञ शासनम् ।।

नगर के श्रेष्ठ चित्रकार को बुलाकर राजाने आदेश किया कि... ''इस भव्य, आलिशान, विशाल, अनन्य और अनुपम महेल का As it is (हुबहु) चित्र तैयार करके लाओ । तुम्हारी सातो पेढीओ मालामाल हो जाए, इतनी बडी बक्षीष दुंगा । तुम्हे दो सप्ताह का समय दे रहा हुँ । याद रखना, जैसा महेल हैं, वैसा ही आबेहूब चित्र बनना चाहिए ।

राजा का दिया हुआ समय पूर्ण हुआ और चित्रकार राजसभा में आया । चित्रकार के मुख पर प्रसन्नता के चिन्ह देखकर राजाने अधिराई पूर्वक चित्रकार को पूछा, ''क्यो भाई ! इतने खुश क्यो दिखाई दे रहे हो ! चित्र बहोत अच्छा बना है, क्या ? चित्रकार ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया, ''मेरे जीवन का ये सर्वश्रेष्ठ चित्र हैं । प्रज्ञा, कला और अनुभव के त्रिवेणी संगम स्वरूप एक तीर्थ की उपमा मैं इस चित्र को दे सकता हुँ । तब राजाने कहा, ''इस राजसभा में जल्दी से जल्दी इस चित्र को Open करो ।'' जैसे ही चित्रकार ने सभी के समक्ष चित्र को Open किया कि तुरंत ही राजसभा में बैठे हुए सभी लोग चित्र को देखकर आश्चर्य चकित हो गए । एक विशाल श्वेत कपडे के बीच में एक छोटा-सा काला बिंदु । चित्र में छोटा-सा काला बिंदु देखकर राजा बहोत ही क्रोधित हुआ । तब चित्रकार ने राजा से कहा, ''राजन ! इससे और ज्यादा वास्तविकता दिखाने में अब मैं असमर्थ हुँ । इस असीम विश्व में आपका और आपके इस महेल का स्थान इस बिंदु से अधिक तो है ही नहीं''... चित्रकार के इस तत्त्वज्ञान गर्भित वेधक जवाब से राजा का अभिमान चकनाचूर हो गया । कहाँ भी जाता है न कि... सच्चाई जब सामने आती है, तब I am samething का अभिमान अपने आप पिगलने लगता है ।

आधुनिक विज्ञान की मान्यता है - आकाश में अगणित निहारिकाएँ (Galaxies) हैं । उसमें से एक निहारिका याने अपनी आकाशगंगा (Milky way)... इस आकाशगंगा का चित्र देखो... उसमें लाखो-करोड़ों पीले रंग के बिंदु दिखाई देंगे । उसमें से एक पीला बिंदु याने अपना ''सौरमंडळ''। उसमें सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र और अगणित तारे रहे हुए है । इस सौरमंडल का एक छोटा-सा हिस्सा याने अपनी पृथ्वी ।... इस पृथ्वी में भी अपना देश कहाँ । देश में अपना राज्य कहाँ ! राज्य में अपना शहेर कहाँ ! शहेर में अपना विस्तार कहाँ ! उस विस्तार में भी अपना घर कहाँ !

जिस ''हुँ'' को हमने कोहिनूर हीरे से भी ज्यादा किंमती माना है, उस 'हुँ' का कद विराट विश्व के एक छोटे-से कोने में एक छोटे-से छोटे बिंदु के बिंदु जितना भी क्या हम मान सकते है ? विश्व की ये विराटता तो आधुनिक विज्ञान के स्थुल मापदंड प्रमाण है । अपितु, सर्वज्ञ जैनशासन की दृष्टि से ये तो सिर्फ मध्यलोक में आए हुए एक हिस्से की बात हुई । अनंत आकाश का अनंतवा भाग याने कि असंख्य योजन का विराट लोक । उसके तीन भाग- ऊर्ध्व-मध्य और अधोलोक । ऊर्ध्वलोक में देवो की दुनिया और अधोलोक में भयंकर नरकावास, भवनपति देव के भवन और व्यंतर देवों के नगर । ये सभी बातें तो विज्ञान की मर्यादा के बहार की बात है । विज्ञान कथित विश्व के सामने सर्वज्ञ कथित मध्यलोक भी असंख्य गुणा विराट है ।

सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित अन्य अढलक विषयो की बातें एक तरफ रखकर सिर्फ उनके द्वारा प्ररूपित विश्व स्वरूप का वर्णन नजर समक्ष लाओ, सच में, प्रभु की सर्वज्ञता पर फिदा-फिदा हो जाओगे ।

''श्री पंचसूत्र'' में ''जहट्ठीअवत्थुवाईणं'' कहकर प्रभु को नमस्कार किया है । ''यथास्थितवस्तुवादी'' जो जैसा है, उसी तरह बतानेवाले है उन्हे कहते है अरिहंत परमात्मा । एक प्रसिद्ध दर्शन के प्रवर्तक को किसीने पूछा- इस लोक का स्वरूप कैसा है ? जवाब मिला - ये सब अव्याकृत है । आत्मसाधना में ये सब ज्ञान निरुपयोगी हैं । परंतु, हकीकत में खुद की अपूर्णता - अज्ञानता को आध्यात्मिकता के पडदे के पीछे छुपाने का ये एक निष्फळ प्रयत्न ही है । क्योकि, सम्यग्ज्ञान कभी भी आध्यात्म का विरोधी नहीं हो सकता हैं ।

प्रभु श्री महावीरस्वामीजी को भी लोक स्वरूप संबंधी अनेक बार अनेक प्रश्न पूछे गए है। यथास्थितवस्तुवादी प्रभुने वे सभी प्रश्नों के सचोट जवाब दिए है। वे सभी जवाब पंचमांग श्री भगवतीसूत्र आदि आगम ग्रंथो में संग्रहित किए गए है।

प्रश्न तो ये है कि लोकस्वरूप का ज्ञान आत्मसाधना में उपयोगी कैसे ? लोक के विविध विभाग, उनके माप की गिनती और उनका सूक्ष्म गणित आदि का आत्मसाधना में क्या महत्व ? ये सब जानने से माहिती ज्ञान बढेगा, परंतु आत्मिक लाभ क्या ? तो सुनिए इसका उत्तर...

शास्त्र ग्रंथों को चार विभाग में विभाजित किया गया है - (१) द्रव्यानुयोग (२) गणितानुयोग (३) चरणकरणानुयोग एवं (४) धर्मकथानुयोग । द्रव्यानुयोग और गणितानुयोग में आए हुए भांगिक सूत्र, भांगा, गणित, विकल्पों की गिनती वगेरे को भी शास्त्र में धर्मध्यान कहा गया है। बृहत् संग्रहणी या क्षेत्रसमास में आए हुए लोक के क्षेत्र के और काल के गणित की गिनती करनी, वो सिर्फ गणित ही नहीं है, किंतु संस्थान विचय धर्मध्यान है। कारण के, उसकी पृष्ठ भूमिका में है ज्ञान की प्रशस्तता और उसमें उन विषयों के उपदेशक अरिहंत परमात्मा की अत्यंत उपादेयता...

अनादिकाल से परिपृष्ट बने हुए मोह के मेरुपर्वत को धराशई कर दे, वैसी वैराग्यगर्भित बारह भावनाओ का चिंतन श्रमण-श्रमणी भगवंतों और श्रावक-श्राविकाओं को नित्य करना होता है।

- इन बारह भावनाओ में दसवीं भावना याने लोकस्वरूप भावना !
- लोकस्वरूप का चिंतन याने लोक में सतत घटती घटनाओ का चिंतन...
- विस्मयकारक विश्व व्यवस्था का चिंतन...
- चौराशी लाख योनिरूप भीषण संसार का चिंतन...
- अनंता जीवों की गति-आगति का चिंतन...
- षड्द्रव्य के अद्भुत स्वरूप का चिंतन...
- परम सुखमय सिद्धावस्था का चिंतन...
- कर्म के विविध भेद और विचित्र कर्म परिणति का चिंतन...
- धर्म महासत्ता के अचिंत्य सामर्थ्य का चिंतन...
- नरकगति की सहनातीत यातनाओं का चिंतन...
- स्वर्ग के दिव्यसुखों की भी विनश्वरता का चिंतन...

ये सभी विचारधाराएँ दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम करवाके संवेग और वैराग्य के भावों में वृद्धि करवाती है। द्रव्यानुयोग के सघन बोध का पाया अगर जोरदार हो तो वैराग्यशतक या ईन्द्रियपराजयशतक जैसे वैराग्यमय ग्रंथों की वैराग्य प्रेरक गाथाएँ अत्यंत असरकारक बनती है। जैसे कि वैराग्यशतक की एक गाथा का उदाहरण लेकर समझते हे :-

न सा जाइ, न सा जोणी, न तं ठाणं, न तं कूलं ।
न जाया न मूया जत्थ, सव्वे जीवा अनंतसो ॥

ऐसी कोई जाति नहीं है , योनि नहीं है, स्थान नही के कूल नहीं है जहाँ सभी जीव अनंती बार जन्मे ना हो और मरे ना हो ।... विराट लोक, चोराशी लाख योनि, चार गति, पांच जाति, षड्जीवनिकाय, गति-आगति की व्यवस्था, आकाश प्रदेश की सूक्ष्मता और एक समय से लेकर अनंत तक के विविध काल का माप...। इन सभी बातों के संदर्भ में जब ऊपर की गाथा का विचार किया जाए , तब हृदय में प्रचंड वैराग्य का विस्फोट हुए बिना रह सकता है क्या ?

जिन-जिन विषयों में अन्य दर्शनकारों ने मौन ले लिया है या तो ऐसी बातें कही है, जो पहेली ही नजर में हमें अपूर्ण और विसंवादी लगने लगती हैं। अपितु, ऐसे अखिल ब्रह्मांड के अगम्य यथास्थितस्वरूप को सर्वज्ञ के सिवाय कौन बता सकता है ? लोकस्वरूप भावना चिंतन करने से विस्मय भाव प्रगट होता हैं। ऐसा विस्मयभाव सर्वज्ञ प्रभु के प्रत्ये अहोभाव प्रगट करवाता है ओर अहोभाव सम्यग्दर्शन के परिणाम को अत्यंत निर्मल बनाता हैं।

तत्त्वार्थसूत्र का प्रसिद्ध सूत्र ''जगत् काय स्वभावौ च संवेग-वैराग्यार्थम् '' ये जगत् और काय का स्वभाव संवेग और वैराग्यभाव की धारा प्रगट करता है। भवस्थिति - लोकस्थिति और आत्मविज्ञान की विचारणा परस्पर एक-दूजे से जुडी हुई हैं। लोकविज्ञान आत्मविज्ञान का बाधक नहीं हैं, किन्तु साधक हैं। यह बात दीपक की तरह एकदम स्पष्ट है...।

लोकस्वरूप के विज्ञान की इतनी महिमा जानने के बाद सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड के स्वरूप को जानने की तीव्र जिज्ञासा मन में जाग्रत होवे, वो सहज हैं । अपने जैनशासन में श्री भगवतीसूत्र, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना सूत्र वगेरे आगम ग्रंथों में तथा लोकप्रकाश, बृहत्संग्रहणी, क्षेत्र समास जैसे अढळक प्रकरण ग्रंथो में लोकस्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया हैं।

आधुनिक विज्ञान भी क्षेत्र की सरहद और अवकाशी पदार्थों के अकल रहस्यों को प्राप्त करने का सतत प्रयत्न कर ही रहा हैं। विविध शास्त्रग्रंथों में वर्णन किये गये लोकस्वरूप के विषयों को अच्छी तरह संकलित किया जाए और आज की वर्तमान भाषा में अच्छी तरह पेश किया जाए तथा आधुनिक विज्ञान के मंतव्यो की भो यथायोग्य समीक्षा करने मे आए तो आज के बुद्धिप्रधान युग में ज्यादा उपोदय बन सकता हैं। ब्रह्मांड के सूक्ष्म रहस्यों को जानने की तीव्र जिज्ञासा आज की नयी पेढी में बहोत ही देखने मिलती हैं। उन जिज्ञासुओं को संपूर्ण संतोष मिले, ऐसे साहित्य की वर्तमान में बहोत ही आवश्यकता हैं।

खुद की ज्ञान प्रतिभा द्वारा कितना सुंदर सर्जनात्मक कार्य हो सकता हैं उसका **Best Example** याने ये ग्रंथरत्न...

दीक्षा दानेश्वरी पू. आ. भ. श्रीमद् विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.के शिष्यरत्न पू. आ. भ. श्रीमद् विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न मुनिप्रवर श्री हीररत्नविजयजी के शिष्यरत्न मुनिराज श्रीचारित्ररत्नविजयजी ने इस दिशा में अत्यंत स्तुत्य प्रयास किया है। उनके द्वारा संपादित "**Jain Cosmology**" नामक ग्रंथ अत्यंत लोकप्रिय बना हैं। इस पुस्तक ने एपीटाईझर का काम किया हैं। जिज्ञासुओं की अखिल ब्रह्मांड के सूक्ष्म रहस्यों को जानने की जिज्ञासा को ओर ज्यादा **Strong** बनाई और वही दृढ बनी हुई जिज्ञासा को संतोषने के लिए मुनिराज एक नया भव्य नजराना श्री संघ को भेंट कर रहे है। मुनिराज की विशिष्ट ज्ञानप्रतिभा, भूगोल-खगोल विषय का विशद और विशिष्ट बोध तथा अथाग परिश्रम का स्पष्ट प्रतिबिंब इस पुस्तक में दिखाई देगा । विषय विभागीकरण और मल्टीकलर चित्रों के कारण प्रस्तुत प्रकाशन बहोत ही लोकप्रिय और लोकभोग्य बने, ऐसी आशा रखता हुँ। विषय प्रस्तुति, विषय संकलन, चित्र मार्गदर्शन, चित्र परिमार्जन वगैरे में मुनिराज की अद्‌भुत कलागिरि, अखुट धैर्य, और अत्यंत खंत का स्पष्ट परिचय सहज हो जाता है।

ये पुस्तक हिन्दी भाषा में है, जिससे इसकी उपयोगिता और उपादेयता स्वाभाविक रीत से ज्यादा ही रहनेवाली है... इस पुस्तक (ग्रंथ) में २०० जितने लेख जैनधर्म संबंधी खगोल-भूगोल के विषयवाले पेश किये गये है। इन लेखो की जानकारी के लिए ४०० जितने 2D, 3D चित्र रखे गये हैं। साथ में इसी संबंधी जनरल नोलेज के कोष्ठक भी हर जगह दिए हैं। ३०० से ज्यादा शास्त्रग्रंथों का आधार लेकर इस पुस्तक की सभी बातों को शास्त्र समर्थन से पुष्ट करने में आयी हैं।

पांच भागों में प्रकाशीत इस पुस्तक के कुल ८ द्वार हैं जैसे की...

- प्रथम द्वार में - १४ राजलोक और षड्द्रव्य विषयक १७ लेख...
- द्वितीय द्वार में - मध्यलोक और ज्योतिषचक्र संबंधी ९५ लेख...
- तृतीय द्वार में - अधोलोक, व्यंतर-वाणव्यंतर, भवनपति और १ से ७ नरक संबंधी २८ लेख...
- चतुर्थ द्वार में - ऊर्ध्वलोक के वैमानिक देवलोक और किस कारण से देव नीचे आते है और किस कारण से नहीं आते ? इत्यादि... उस संबंधी २१ लेख...
- पंचम द्वार में - जीव, अजीव के भेद, निगोद का स्वरूप, ऋजु-वक्रगति, ६ लेश्या, ६ संघयण-संस्थान, सिद्धशिला का स्वरूप, १४ गुणस्थानकादि प्रकीर्णक विषयों पर ३३ लेख...
- षष्ठम द्वार में - सैंकडों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित ताडपत्रीय ग्रंथों में दिये गए १४ राजलोक और उनके अंतर्गत दूसरे पदार्थों के १०० से अधिक चित्रों का विशिष्ट संकलन...
- सप्तम द्वार में - अन्य धर्मों की मान्यताओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन और जैनधर्म के मान्यतानुसार पृथ्वी स्थिर है, गोल नहीं है, इत्यादि विषयक १०१ सचित्र साबिती (**Example**)...
- अष्ठम द्वार में - पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा रचित संस्थान विचय विषयक २४ जितने स्तुति-स्तवन तथा सज्झाय एवं पूजा की ढालों का सुंदर संग्रह...

मुनिराजश्री द्वारा ३ वर्ष की अविरत साधना की फलश्रुति याने ये ग्रंथरत्न...! नयी पेढी एवं ज्ञान पिपासु इस विषय के जिज्ञासुओ को ये ग्रंथरत्न अत्यंत उपयोगी साबित होगा। विश्व व्यवस्था के यथार्थ प्ररूपक अरिहंत परमात्मा और उनकी सर्वज्ञता पर वाचकवर्ग की श्रद्धा देदीप्यमान बनेगी। जैन तत्त्वज्ञान के अध्ययन करानेवाले अध्यापकों के लिए भी ये ग्रंथ सरल मार्गदर्शिका रूप बनेगा। अनेक बुद्धिजीवीओ की विज्ञान के प्रति रही हुई अंधश्रद्धा दूर होगी। "पृथ्वी गोल है, पृथ्वी घुमती है" वगेरे दृढमूल बनी हुई अनेक मान्यताओं के लिए ये पुस्तक एक जबरदस्त पडकार हैं। हजारों दिलों में सम्यग्ज्ञान दर्शन और वैराग्य के दीपक प्रगटाने में चिनगारीरूप बनने का सामर्थ्य इस ग्रंथ में दिखाई दे रहा हैं। इस ग्रंथ को आदर देते हुए मैं बहोत ही धन्यता अनुभव कर रहा हुँ। संपादक मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी के इस सम्यक् पुरुषार्थ पूर्वक की श्रुतसाधना की भावपूर्वक अनुमोदना करता हुँ।

आ. मुक्तिवल्लभसूरि

भादरवा सुद-८, गोरेगाम (जवाहरनगर) - मुंबई

संपादक की कलम से.....

मुनि श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा.

सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह मोक्ष का मार्ग है। यानि कि सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही मोक्ष पा सकते है। अब सवाल यह उठता है कि इस मोक्षमार्ग को बतानेवाले है कौन...? तो इस मोक्षमार्ग को बतानेवाले है अरिहंत परमात्मा। ऐसे श्री अरिहंत भगवंत अतीत में अनंत हो चूके है, वर्तमान में २० विहरमान तीर्थंकर भगवंत साक्षात् विहर रहे है और भविष्य में भी अनंत श्री तीर्थंकर परमात्मा होगे। ये सारे ही सर्वज्ञ अरिहंत भगवंतोने इसी को मोक्ष का मार्ग कहा था, कहते है और कहेंगे।

वर्तमान अवसर्पिणी के .... ऋषभादि २४ (चोबीस) तीर्थंकर भगवंत हो चूके है। उन चौबीस में चरम तीर्थंकर सर्वज्ञ श्री महावीर स्वामीजी भगवान हम सबके आसन्नोपकारी है। उन्होंने दीक्षा के बाद साधना के जरीये घातीकर्मों का संपूर्ण क्षय करके लोकालोक-प्रकाशक ऐसा केवलज्ञान प्राप्त किया और इस केवलज्ञान द्वारा समस्त १४ (चौदह) राजलोक का स्वरूप भव्य जीवो के उपकार के लिए प्ररूपित किया। उनसे "उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा" स्वरूप त्रिपदी को प्राप्त करके बीजबुद्धि के स्वामी श्री गौतम महाराजा आदि गणधर भगवंतोने समस्त द्वादशांगी की सूत्र के रूप में रचना की। इस द्वादशांगी का ज्ञान प्राप्त करनेवाले चौदहपूर्वी या श्रुतकेवली कहलाए अर्थात् श्रुतकेवली के रूप में प्रसिद्ध हुए। श्री सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंत अपने केवलज्ञान के जरिये जितना जैसा और जिस तरीके से पदार्थो का स्वरूप बताते है, ठिक ऐसा ही निरूपण श्रुतकेवली अपने श्रुतज्ञान के बल से कर सकते है। श्री सर्वज्ञ, तीर्थंकर भगवंत प्रत्यक्ष जान सकते है, और देख भी सकते है। जब कि श्रुतकेवली भगवंत सिर्फ जान ही सकते है देख नहीं सकते.... किन्तु प्ररूपणा करनेवाली व्यक्ति केवलज्ञानी है या श्रुतज्ञानी उसका भेद छद्मस्थ जीव नहीं कर सकता, क्युंकि सामान्य (आम) जीवो को तो श्रुतकेवली, केवलज्ञानी जैसे ही लगते है।

श्री महावीरस्वामी भगवान के श्री इन्द्रभूति (गौतमस्वामी) आदि ग्यारह ही ग्यारह गणधर भगवंतोने खुद द्वादशांगी की रचना की है। अंतिम केवलज्ञानी श्री जम्बूस्वामीजी हुए है। उसके बाद प्रभवस्वामीजी, श्री शय्यंभवसूरिजी श्री

यशोभद्रसूरिजी, श्री संभूतिविजयसूरिजी, श्री भद्रबाहुस्वामीजी और अंतिम श्री स्थूलभद्रस्वामीजी ये ६ महापुरुष श्रुतकेवली हुए। अर्थात् इन ६ मुनियो को १४ पूर्व ज्ञात थे। उसमें भी श्री स्थुलभद्रजी महाराजा १० पूर्व तक के सूत्र और अर्थ दोनों के ज्ञाता थे और शेष ११ से १४ = ४ पूर्व के सिर्फ सूत्र के ही ज्ञाता थे अर्थ के नहीं।

उसके बाद १० पूर्वधरों में क्रमशः श्री वज्रस्वामीजी महाराज हुए, उसके बाद साढे नौ पूर्व के ज्ञाता की आर्यरक्षितसूरीश्वरजी महाराजा हुए। उन्होंने उस काल दरम्यान काल के प्रभाव से संघयण - बल - बुद्धि आदि को कम होते देखा और उन्होने भविष्य में होनेवाले जीवो की बुद्धिबल की क्षीणता को देखकर / जानकर शास्त्रों को ४ विभागो में बांट दिया... जो इस रूप से प्रसिद्ध हुए (१) द्रव्यानुयोग विभाग (२) गणितानुयोग विभाग (३) चरणकरणानुयोग विभाग एवं (४) धर्मकथानुयोग विभाग... तब से ही इस पृथक्त्वानुयोग का शुभारंभ हुआ। उसके बाद क्रमशः १ पूर्वधर ज्ञान के भंडार एसे अनेक महामुनि भगवंत हुए। तो आईए। देखते है इन द्रव्यानुयोगादि कि विशेष बातो को...

द्रव्यानुयोग विभाग में...धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल...इन ६ द्रव्यों का द्रव्यास्तिकाय नय की अपेक्षा से ध्रुवता अर्थात् कायम रहना और पर्यायास्तिकाय नय की अपेक्षा से उत्पत्ति और नाश... उन द्रव्यों के अतीत और भविष्य के अनंतानंत पर्याय... जीवद्रव्य और पुद्गलद्रव्य को अनुसरनेवाले आत्मवाद और कर्मवाद तथा सप्तभंगी, सातनय, कार्मणादि के द्वयानुकादि से लेकर अनंतप्रदेशी स्कन्ध..., मिथ्यात्वादि हेतुओं के माध्यम से कार्मण वर्गणा का जीवद्रव्य के साथ क्षीर-नीर (दुध - पानी) की तरह या अग्नि-लोहे की तरह एकमेक होना...., हर समय स्वावगाढ आकाशप्रदेशगत अनंतप्रदेशी कार्मणवर्गणा के स्कन्धों का ग्रहण-विसर्जन, ग्रहण किए जानेवाले उन उन स्कन्धों में लेश्या सहचरित काषायिक अध्यवसाय और मन-वचन-काया के योग से होनेवाले प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेशबंध और कर्मो का स्पृष्ट-बद्ध-निबद्ध-निकाचित आदि स्वरूप का समावेश इस द्रव्यानुयोग विभाग में किया गया है इसलिये यह विषय अति गहन कहाँ जाता है।

इस द्रव्यानुयोग के विषयों का श्रवण-मनन-चिंतन-विचारणा आदि दर्शनशुद्धि का परम साधन और बडी मात्रा में कर्म की निर्जरा करानेवाला माध्यम है। ऐसा कहा जाता है कि आत्मा घातिकर्मों का क्षय...द्रव्य के चिंतन रूप शुक्लध्यान से ही करता है।

इस द्रव्यानुयोग के ग्रंथो में... सूयगडांग सूत्र, समवायांग सूत्र, विशेषावश्यक भाष्य, कम्मपयडी ग्रन्थ, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, सम्मतितर्क प्रकरण अनेकांतजयपताका, नवतत्त्व आदि का समावेश होता है।

गणितानुयोग विभाग में...१४ राजलोक, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, (तिर्च्छालोक), अधोलोक, असंख्य द्वीप-समुद्र (समंदर), अढाईद्वीप (२ ½ द्वीप) में रहे भरतादि क्षेत्र, हिमवंतादि पर्वत, हरिवर्षादि युगलिक क्षेत्र, गंगा-सिंधु आदि महानदी, सिद्धायतनादि कूट, पद्मादि द्रह, देवलोक का वर्णन, देवविमान, भवन, नरक का वर्णन, नारकी और उन नरक के प्रस्तर आदि, शास्वत-अशाश्वत पदार्थो को लंबाई, ऊँचाई, गहराई, श्रेत्रफल, घनफल, बाहा, जीवा, धनुपृष्ठ, परिधि, वर्गमूल..वगैरह...गणित के विषय तथा परमाणु से होनेवाले स्कन्धों का गणित और संख्यात, असंख्यात और अनंत की गिनती..उनका स्वरूप इस विभाग में दिया गया है।

इस गणितानुयोग के ग्रंथो में... जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगम सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, ज्योतिष करंडक सूत्र, क्षेत्रलोकप्रकाशादि ग्रंथ वर्तमान में भी मौजुद है।

चरणकरणानुयोग विभाग में... चारित्र के बारे में विधि-निषेध, उत्सर्ग - अपवाद, संयममार्ग का निरूपण, पंचाचार, चरणसित्तरी - करणसित्तरी आदि का वर्णन करनेवाले श्री आचारांग सूत्र आदि शास्त्रग्रंथों का समावेश होता है। यह चरणकरणानुयोग संयम की स्थिरता के लिए परम आलंबन है। इस चरणकरणानुयोग से भवरोग का निर्मूलन होता है और अविचल, अक्षय, आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

इस चरणकरणानुयोग के ग्रंथो में... श्री आचारांग सूत्र, ओघनिर्युक्ति, दशवैकालिक सूत्र, श्राद्धविधि, तीन भाष्य, (चैत्यवंदन,-गुरूवंदन-पच्चक्खाण) आदि का समावेश होता है।

धर्मकथानुयोग विभाग में... महान आत्माओं के जबरजस्त प्रेरणा देनेवाले जीवनकवन का आलेखन है। जो सन्मार्ग में चलनेवालो के लिए सारथी रूप बनते है और सन्मार्ग से भ्रष्ट होनेवाली आत्माओं को फिर से सन्मार्ग में संस्थापित करने का सामर्थ्य रखते है। धर्मकथा भी चारित्रप्राप्ति का अमोघसाधन है। धर्मकथानुयोग का विषय सरल होने से आत्मार्थी जीवों को उससे बहुत ही फायदा होता है। इस धर्मकथानुयोग में जीवन चरित्रो को ऐसे पेश किया है कि कथा के साथ साथ द्रव्यानुयोगादि तीन अनुयोग जो अलग-अलग रखे होने पर भी उन-उन योगों का ज्ञान भी आसानी से हो जाए...उतना ही नहीं, आत्मा बिलकुल नीचली कक्षा से उठकर किस प्रकार अपना विकास करती हुई आगे बढती है और अपने पर आ पड़े छोटे-बड़े भयानक दुस्सह उपसर्ग-परिसहों को सहन करके, किस प्रकार परम सहिष्णु बनकर आत्मिक गुणो की बुलंदी को छुती है, कैसे निमित्त पाकर नीचे गिरती है और फिर कैसे निमित्त के वस आसमानी उँचाई को छुती है आदि प्रसंग उन उन व्यक्तियों के जीवन चरित्र को प्रकाशित करते हुए पढनेवाले के जीवन में भी उत्तम प्रेरणा प्रदान करते है... इसके अलावा बालजीवों भी कहानी को बड़े ही ध्यान से और रस से सुनकर उनमें से प्रेरणा लेते है।

इस धर्मकथानुयोग के ग्रंथो में.... श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र, श्री उपासकदशांग सूत्र, सिरिसिरवालकहा सूत्र, श्री उपदेशमाला, श्री उपदेशप्रासाद, समरादित्य चरित्र, त्रिषष्टिशलाकापुरूष चरित्र आदि बहुत सारे ग्रंथों का समावेश होता है।

यह THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) नाम का ग्रंथ भी ऊपर बताए गये ४ अनुयोग में से गणितानुयोग की प्रधानतावाला है। क्युंकि १४ राजलोकवर्ती उन-उन क्षेत्रों में रहे पर्वत-नदी-शाश्वत चैत्यादि की लंबाई-चौडाई-उँचाई-गहराई प्रमुख का ही ज्यादातर वर्णन किया गया है।

अनंत जीव और अजीव, जड या चेतन पदार्थ १४ राज के प्रमाणवाले "लोक" से पहचाने जानेवाले आकाशक्षेत्र में रहे है। तब यह १४ राजलोक क्या है ? उसका चित्र स्वरूप, प्रमाण कितने विभागों में विभक्त है ? तथा उसमें रहे हुए षड्द्रव्यों का स्वरूपादि क्या है ? इत्यादि सवाल होने सहज है...आंखो से दिखाई देनेवाली दुनिया, धरती, उसका भीतर का भाग, सागर और आकाश इन सारी वस्तुओं का ज्ञान और उसका रहस्य पाने के लिए मानवी हजारों सालों से बेहद प्रयत्न करता रहा है। उससे आकाश, धरती आदि जो पदार्थ अदृष्ट (अदृश्य) है उसका अंदाजा लगाने के लिए रहस्य पाने के लिए हर रोज नये-नये प्रयोग कर रहा है।

सृष्टि पर पैदा हुई ईश्वरीय व्यक्तिओंने, धर्मगुरूओंने, धर्मग्रंथोंने और वैज्ञानिकोंने इस दिखनेवाली दुनिया को और अदृश्य दुनिया को अपने-अपने तरिकों से जाना और विश्व को विविध प्रकार के आकारावाला और अनेक रहस्यो से परिपूर्ण बताया, जबकी दुसरी और शक्तिशाली मानव स्वभाव में नया-नया जानने की अदम्यवृति बैठी होने से तरह तरह का पुरूषार्थ करना, नयी-नयी खोजे करना और तरह-तरह के रहस्यों को ढूंढ निकालने के लिए वह लगातार मेहनत करता रहता है। जिसके कारण वह सृष्टि के, ब्रह्मांड के, कुदरत के अगम्य रहस्यों को, और नये-नये आविष्कारों को, शोधो को यथायोग्य जनम देता रहा है, तथा इस विषय के अनेकानेक ग्रंथ / पुस्तकों भी प्रकाशित कर चूका है।

विचारणीय बात यह है कि...मानवीय खोज को संपूर्ण प्रमाणभूत माना जाए अथवा त्रिकालज्ञानी सर्वज्ञ बने आर्षद्रष्टा महामानवने ज्ञानचक्षु से आत्मप्रत्यक्ष की हुई बात को प्रमाणभूत माना जाएँ ? वर्तमान के विज्ञान युग में मानवमन में "जो जितना दिखाई पडता है वह और उतना ही सच्चा" इस प्रकार का विचार जोर-शोर से घर कर गया है.... ऐसा एकांत से मानना वह मानवी की स्थूलदृष्टि का परिणाम है। क्युंकि सामान्य इंसान की दृष्टि की शक्ति कि मर्यादा है, और उसके कारण वह जो सोच सकता है, जान सकता है, उसको भी मर्यादा लागु पड जाती है। इन संजोगों में मानव वैज्ञानिक

जो कहे "वही सब सच्चा और आखरी सत्य" ऐसी मान्यता बराबर नहीं। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सामान्य मानवी का दर्शन भी सामान्य होता है, जबकी असामान्य मानवी का दर्शन असामान्य अर्थात् विराट और वैधक होता है।

जिन आत्माओंने तप-त्याग और संयम की साधना से अज्ञानता रूप आवरणों को हटाकर ज्ञान का पूर्ण प्रकाश पाया अर्थात् ज्ञान की अंतिम कक्षा को - ज्ञान की बुलंदी को छु लिया...उनको अब चर्मचक्षु से देखने का या किताबी ज्ञान से या यांत्रिक साधनों से जानने का होता नहीं है। अब उनको देखना या जानना ज्ञानचक्षु से ही होता है और इसलिए उनका समग्र दर्शन आमूलचूल, अपार और अनंत होता है। जैनधर्म की परिभाषा में ज्ञानप्राप्ति की आखिरी सीमा या बुलंदी को केवलज्ञान शब्द से पहचाना जाता है। इससे आगे अब कुछ भी पाना बचा ही नहीं है। इस केवलज्ञान को त्रिकालज्ञान या सर्वज्ञत्त्व भी कहा जाता है। इस ज्ञान से महर्षिओं के तीनों काल के द्रव्य - पदार्थ और उसके गुण - पर्याय का प्रत्यक्ष दर्शन होता है और इसलिए ही उनका दर्शन सम्पूर्ण-यथार्थ और नि:शंक कक्षा का होता है। क्योंकि असत्य और अपूर्ण बोलने के कारण नष्ट होने के बाद ही केवलज्ञान का प्रकाश प्रगट होता है इसलिए उनके यथार्थ कथन को श्रद्धा से और बुद्धि से दोनो से स्वीकार कर लेना चाहिए। क्योंकि भगवान श्री महावीरस्वामी जब केवलज्ञानी बने थे तब उन्होंने १४ राजलोक रूप सम्पूर्ण विश्व (ब्रह्मांड) के त्रैकालिक भावों को आत्म प्रत्यक्ष-आत्म साक्षात्कार किया। कारण, एक ही था कि वे पूर्ण तत्त्वज्ञ बन गए थे। इसलिए उनका दर्शन भी पूर्ण था और जैसा उनका दर्शन था वैसा ही उनका कथन था। महान द्रष्टाने अपने ज्ञान में विराट आकाश के अंदर विराट विश्व का जो महादर्शन आत्मप्रत्यक्ष किया तब उन्होंने विश्व को जिस आकार में देखा, जिस नाप का देखा और इस दुनिया में कहाँ कहाँ कैसे स्थान है ? कैसे जीव है ? कैसे द्रव्य-पदार्थ किस प्रकार के अनंतभाव और रहस्यों से परिपूर्ण है ? इस विश्व का संचालन, उसकी गत्यागति किस प्रकार चलती है ? इत्यादि सब उन्होंने केवलज्ञान रूप दर्पण में देखा और बोलने के लिए समय मर्यादित होने से मर्यादित प्रमाण में ही उसकी जानकारी दी है...जो आज भी जैनागमों में सुरक्षित है। ...इन्हीं सर्वज्ञ भगवंतों के द्वारा बताए गए पदार्थों को इस ग्रंथ में आलेखित किया गया है...इसलिए इस प्रस्तुत ग्रंथ का नाम "सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड" रखा गया है।

अब प्रस्तुत बात शुरू करते है...

इस संसार में बहुत प्रकार के प्राणी है उन सबमें एक मनुष्य ही विकसित और विचारशील प्राणी है। क्योंकि वह अपनी बुद्धि के विकास के मुताबिक ही लिखता है एवं बोलता है। हालाँकि लेखन या वक्तृत्व कोई सरल या आसान कार्य नहीं है। फिर भी एक अपेक्षा से वक्ता अपनी चालाकी से श्रोताओं को आकर्षित कर लेता है, जबकी लेखन वह तो कायमी वस्तु है। इसलिए व्यवहार में भी कहा गया है कि "लखाणुं ए वंचाणु" (जो लिखा गया वहीं पढ़ा गया) एवं "सौ भख्युं ने एक लख्युं" (सौ बार बोलना और एक बार लिखना) वगैरह... अत: जो कुछ भी लिखा गया होता है वही हमेंशा पढ़ा जाता है एवं उस लेखन को पढ़कर उसकी समीक्षा पढनेवाली व्यक्ति करती जाती है... इसलिए ही मेरी समझ से तो लेखन कार्य कोई आसान कार्य नहीं है।

जैनदृष्टि से आगमों में और इतर ग्रंथो में जो विश्व वर्णन संबंधित हकीकतें बताई है उसका ही संग्रह करके आपके सामने पेश करने का एक छोटा सा प्रयास यहाँ किया गया है। जैनशास्त्रों में सम्पूर्ण विश्व का वर्णन जिस तरह से किया गया है वह आम इंसान पढ़ नहीं सकते है (क्योंकि ज्यातातर लोग संस्कृत-प्राकृत भाषा से अंजान है) इसलिए मुझे वे हकीकतें आम जनता के सामने पेश करनी चाहिए। ऐसी भावना जो मेरे मन में कितने ही समय से जैन तत्त्वज्ञान के ऊपर एक विशिष्ट सचित्र ग्रंथ रचने की थी वो मेरी भावना को और प्रज्वलित कर दिया। जो मैंने वि.सं.२०६८, वी.सं.२५३८ एवं ई.सन् - २०१२ के वर्ष दरमियान प. पू. न्यायविशारद वर्धमान तपोनिधि आ. श्री विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म. सा. के जन्म-शताब्दि वर्ष निमित्तक "Jain Cosmology" (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) नामक ग्रंथ रचना के द्वारा किया। जिसमें ऊर्ध्व-मध्य-अधोलोक रूप इस प्रकार त्रिलोकात्मक विश्व का वर्णन करने का

यत्किंचित प्रयास किया गया था क्योंकि मेरे हृदय में उमटी भावधारा को मैं रोक नहीं पाया और यह रचना हो गई...इसलिए ही तो महाकवि श्री कालिदासजीने भी स्वरचित "रघुवंश महाकाव्य" में कहाँ है कि...

क्व सूर्यप्रभवो वंश, क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

अर्थ : सूर्य से उत्पन्न हुआ एसा कहाँ यह वंश ? और कहाँ मेरी अल्प बुद्धि ? अर्थात् मेरी अल्प बुद्धि के कारण इस रघुकुल का वर्णन करना कठिन है, फिर मैं तैयार हुआ हुँ। जिस तरह मुश्किल से पार कर सके ऐसे सागर को कोई छोटी सी नैया से अगर पार करना चाहे....इसी तरह मैं भी अपने हृदय के भावों को इस ग्रंथकलम से पेश करता हुँ।

बहुत से परिजन मुझे पुछते है कि न्याय -व्याकरण-वार्ता या अन्य कोई विषयों को पसंद ना करके भूगोल - खगोल संबंधित विषयवाला ग्रंथलेखन चुनकर आपने किया.. तो उसके पीछे कारण क्या ? तो उसके समाधान में मुझे वह कहना है कि इस विज्ञानयुग में वर्तमान में पूरा विश्व बहुत ही तेजी से विकसित हो रहा है और उसमें भी विश्व की भौगोलिक स्थिति के बारे में तो हररोज नयी नयी बाते आपके सामने आ रही है। तो सवाल उठना सहज है कि जैनदृष्टि से भौगोलिक स्थिति क्या है ? अथवा अपने सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतोने इस विश्व का स्वरूप कैसा बताया होगा ? बस इसी सवाल के समाधान के लिए इस ग्रंथ की रचना की गई है। इस ग्रंथ में भौगोलिक रूप से जो कुछ भी स्वरूप दिखाने का प्रयास किया गया है वह खास तौर से जैनागमादि शास्त्रो में स्थित हकीकत रूप है।

कहा जाता है कि जब भगवान सर्वज्ञ श्री महावीरस्वामीजी इस पृथ्वीतल पर धर्मदेशना दे रहे थे तब दुसरे भी अन्यधर्मो - संत - महंत और उपासक थे। इस ग्रंथ में जैन मान्यता के साथ-साथ अन्य दर्शनीयों की भी भूगोल-खगोल संबंधित विश्व व्यवस्था रूप मान्यताओं को योग्यता-अयोग्यता के साथ बताया गया है। वे सर्व

मान्यताएँ आज भी जैनागमों में सुरक्षित रही हुई है। उन सबका आसानी से बोध हो जाए उस प्रयोजन से ही इस ग्रंथ रचना का प्रयास हुआ है।

एक बात में आपको बताना चाहता हुं कि छद्मस्थ -अपूर्ण -अल्पज्ञानी मनुष्यों की कृति में एक या अनेक प्रकार की कुछ क्षतियाँ रहेगी ही। किंतु इसको आगे करके नवीन साहित्य के सर्जन को अनुपयोगी या अनुपादेय नहीं ही ठहराया जा सकता। अगर एक भी क्षति बगैर के साहित्य का ही यदि आग्रह रखा जाए तो एसा साहित्य बहुत मुश्किल से ही प्राप्त होगा। और हम सब नवीन साहित्य से वंचित रह जाएगें, जो कभी भी इच्छनीय नहीं ही है। मै यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहता हुं कि प्राचीन जैन श्रुतज्ञान पर नवीन-वृत्तियों का निर्माण करनेवाले चारित्रसंपन्न महामेघावी मुनिवरों की बराबरी आज की विद्वता, आज की पंडिताई नहीं ही कर सकती। फिर भी "शुभकार्ये यतनीयं" अर्थात् "शुभ कार्यों में हंमेशा उद्यमशील रहना चाहिए" ऐसा शास्त्रवचन होने से अगर ऐसा प्रयास नहीं करेंगे तो आज की प्रजा भौतिकवाद के भयानक भँवर में फंस जाएगी... और इससे अपने जिनशासन को भी बहुत बड़ा नुकसान होगा।

वर्तमान युग में गृहस्थवर्ग अपनी मूल प्राचीनभाषा (प्राकृतादि) समझता नहीं है और संस्कृत भाषा का ज्ञान भी बहुत ही कम-नहींवत् है। इसलिए वे (वाचकवर्ग) हिन्दी भाषा में - रोचक शैली से लिखा गया और सुंदर रूप रंग से सुसज्जीत कर प्रकाशित किया गया साहित्य ही चाहते है। ऐसी हालत में अगर उनको उसी प्रकार का सचित्र (ILLUSTRATED) साहित्य देगें तो वे उसका सहर्ष स्वीकार करेंगे... सत्कार करेंगे...सन्मान करेंगे..और जैनधर्म एवं उसके तत्त्वज्ञान के प्रति अति आदर-बहुमानभाववाले बनेंगे।

आज से ३ वर्ष पहले मेरे द्वारा लिखित - संपादित - संकलित **JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था)** ग्रंथ गुजराती भाषा में श्री जिनशासन के चरणों में समर्पित किया गया। देव-गुरु की परम कृपा से बहुत ही कम समय में इस पुस्तक को एक प्रकरण ग्रंथ की तरह वर्तमान के प्रायः सर्व गच्छ एवं

समुदायों के तरफ से स्वीकारा गया एवं पढ़ना - पढ़ाना / पठन - पाठन के रूप में अवधारित किया गया। रही बात गुजराती भाषा की तो अहमदाबाद / बडौदा / मुंबई / महाराष्ट्र वगैरह में तो इस ग्रंथ को खूब ही लोकप्रियता मिली परंतु अन्य राज्यों में गुजराती भाषा का प्रभुत्व / चलन न होने से हिन्दी एवं अँग्रेजी भाषा में भी इस ग्रंथ को तैयार करो ऐसी भावना व्यक्त करते ढेर सारे पत्र मुज पर आए... फलतः पूज्य गुरूभगवंतों के साथ इस बात पर विचारणा कर हिन्दी भाषा में ग्रंथ तैयार करने का निर्णय किया गया और यह ग्रंथ सर्वग्राह्य बने तद्हेतु मल्टिकलर के साथ साथ २१मी सदी की टेक्नोलोजी रूप 3D / 2D वगैरह से चित्रो (Picture's) को तैयार करवा कर सुसज्ज करने का प्रयत्न किया गया है।

ऐसा कहाँ जाता है कि..."ग्रंथ या पुस्तक का नाम जितने कम अक्षरों में हो उतना अच्छा" अब मेरे द्वारा JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) रूप गुजराती ग्रंथ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति ५ भागों में तैयार हो गई। मगर उसका नाम क्या रक्खुं ? उसका निर्णय करने के लिए बहुत विचार किया। कुछ लेखको के लिए यह बात आसान होगी मगर मेरा अनुभव तो कुछ अलग ही था। एक के बाद एक नाम मेरे स्मृतिपट पर उभर आए और उनके बारे में आगे पीछे सोचकर आखिर में एक नाम का निर्णय किया गया। क्युंकि कहाँ जाता है कि ग्रंथ का जो नाम तय किया जाता है वह सरल, स्पष्ट और सार्थक होना चाहिए। इसलिए यह ग्रंथ भी प्रायः भूगोल-खगोल के मुख्य विषयों से व्याप्त होने से उसका नाम THE REAL UNIVERSE (धी रीयल युनिवर्स) रखा गया। तथा वाचको की जिज्ञासा को उत्तेजित करे ऐसा दुसरा नाम ढुंढने पर अंत में "सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड" मिला और आखिर में अभी भी कुछ कमी है। ऐसा लगने से "सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना" भी अंत में रखा गया तात्पर्य यही है कि इस ग्रंथ का संपूर्ण नाम

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना ILLUSTRATED
THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

दृश्यों आपे दृष्टि (नजारे देते है नजर) इस उक्ति के मुताबिक इस ग्रंथ में बहुलता से नवीन दृश्यों (चित्रों) को स्थान दिया गया है। क्युंकि दृश्यों को देखने से दृष्टि खुलती है। देखने का नजरिया बदल जाता है। उसके माध्यम से ही सर्वज्ञ भगवंतों अपने लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान में संपूर्ण सृष्टि को कैसे देखी होगी उसका आंशीक अनुभव हमें भी मिले और वही स्वरूप हम श्रुतज्ञान के बलबूते पर देख सके। इसलिए ही कहाँ जाता है कि **"One picture is worth thousand words"** अर्थात् "हजार शब्द बराबर एक चित्र..."

इस THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ का यथामति, यथाशक्ति और ३०० जितने शास्त्रीय आधारों को लेकर आलेखन करने का प्रयास किया गया है। फिर भी छद्मस्थजन्य या प्रमादजन्य कोई भी स्खलन-क्षति जो सुज्ञ समाज के दृष्टिपथ में आए तो उसको सुधार ले ऐसा सहृदय-हार्दिक नम्र निवेदन है।

यहाँ आखिर में इतना बताना उचित समझता हुँ कि प्रस्तुत कृति (ग्रंथ) प्राचीन (मूल शास्त्रपाठ की अपेक्षा से) साहित्य का ही एक नविनीकरण रूप साहित्य होने के बावजूद अपने आप में एक मौलिक स्वतंत्र ग्रंथ की क्षमता रखता है... इसलिए ही सुज्ञ पाठक इसको पढ़े...सौचे और अपना अभ्युदय साधे।

और तो और इस ग्रंथ से इस विषय के जिज्ञासु एसी भव्यात्माएँ क्षेत्र संबंधी योग्य जानकारी प्राप्त करके - अपने सम्यग्दर्शन को निर्मलतम बनाकर लोक के अग्रभाव में स्थित ऐसी सिद्धशिला के सदाकाल के लिए निवासी बने..... ऐसी अभ्यर्थना सह.....

गुरुगुणरश्मिहीरपादपद्मरेणु
मुनि चारित्ररत्नविजय

ऋण मुक्ति नहीं परंतु स्मृति...

- जिसने मुझे अव्यवहारराशी निगोद में से बाहर निकालकर व्यवहाराशी में प्रवेश दिलाया एसे सिद्ध भगवंतों को मैं सर्वप्रथम नमस्कार करता हुँ।
- जिन्होने जन्म देकर सुसंस्कारों का सिंचन किया तथा मेरी दीक्षा की भावना को देख अपने मोह को छोड मुझे संयमधर्म के पालन की अनुमति दी, एसे माताश्री पवनबहेन एवं पिताश्री ओटरमलजी का भी मुझ पर महान् उपकार हैं।
- चरम तीर्थपति, आसन्नोपकारी श्री महावीरस्वामीजी, तथा अनंत लब्धिभंडार श्री गुरु गौतमस्वामीजी और पंचम गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी महाराज के श्रुतवारसा का मैं वारसदार बना।
- सिद्धांत महोदधि प. पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा., न्यायविशारद प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. तथा मेवाडदेशोद्धारक प. पू. आ. श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. रूप तीनो महापुरूषों की निरंतर कृपा-दृष्टि से मैं पावन बना।
- सिद्धांतदिवाकर, सुविशालगच्छाधिपति प. पू. आ. श्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. के प्रसंगोपात प्रेरणा के पावन अमृतांजन से मैं और मेरी प्रज्ञाचक्षु (बुद्धि) आज इस ग्रंथ के संपादन को देखने में समर्थ बनी।
- दीक्षा के दिव्यमंदिर में आत्म भगवान की प्रतिष्ठा करने की अमूल्य प्रेरणा करनेवाले प. पू. दीक्षा दानेश्वरी, युवा जागृति प्रेरक आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. के जिन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को अंगार भरे आलम में से उगारकर, मतलबीयों के मोह से मुक्त कराकर, परमपथ की पगदंडी बताकर मुझे संयम के साम्राज्य के ऊपर बैठने का अवसर प्रदान किया, आज उन्हीं की कृपा से मैं चारित्र रूपी रत्न को धारण कर सका हुँ।
- प्रवचन प्रभावक, षड्दर्शन निष्णात प. पू. आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. के जिनकी अवसरोचित प्रेरणा, प्रोत्साहन और योग्य योगक्षेम के बल से मुझ जैसे पामर भी संयमधर्म के अनेकानेक योगों को पूर्ण करने में परम बने...।
- दीक्षा के प्रथम दिन से ही जिन्होने मुझे ग्रहण तथा आसेवन शिक्षा देकर संयमपालन के योग्य किया तथा अवसरोचित मुझे उस उस काल (समय) में पढ़ा-लिखाकर समर्थ किया... ऐसे बड़े भाई महाराजश्री (गुरुदेवश्री) प. पू. मुनिराज श्री हीररत्नविजयजी म. सा. को भी आज कैसे भुला जाय...? के जिनकी अपूर्व उदारता के कारण ही मैं आज यह सब कार्य करने को समर्थ बना हुँ।

पू. बहन म.सा. (सा.श्री भव्यज्ञरेखाश्रीजी म.सा.) को भी आज के दिन मैं भूल नहीं सकता। क्योंकी उनकी अवसरोचित टकोर के कारण ही मैं आज इस महाभिनिष्क्रमण रूप संयमरथ में आरूढ हो सका हुँ।

प. पू. वर्धमान तपोनिधि आ.श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री पद्मसेनविजयजी म.सा. एवं प.पू. शासनप्रभावक आ.श्री रत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा. के जिन्होने जैनशासन + संघों की बहुत सारी जवाबदारी सिर पर होते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ का निःस्वार्थ भाव से सूक्ष्मता पूर्वक संशोधन किया।

इस ग्रंथ में भाषाकीय शुद्धिकरण करनेवाले प. पू. आ. श्री राजशेखरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री धर्मशेखरविजयजी म.सा., प्रोफेसर रमेशभाई शाह (साबरमती), कमलेशजी पुरोहित (सिरोहि) एवं अभिषेकभाई वकिल (इंदौर) को भी मैं आज के दिन स्मरण कर रहा हुं, क्योकि उन्होंने शुद्धिकरण करके तो अविस्मरणीय उपकार किया हैं।

आधारग्रंथों के साक्षीपाठों के लिए मुख्य आधारस्तंभ श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानभंडार (कोबा) रहा है एवं अन्य अन्य पुस्तकादि में रहे चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ रूप ''गीतार्थ गंगा'' संस्था रही हैं, इसलिए इनकी भी उत्कृष्ट श्रुतभक्ति के लिए मैं अनुमोदना करता हुँ।

The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में दिए गये 3D/2D वगैरे सर्व प्रकार के चित्रों (Pichres) को तैयार करनेवाले जैनिझम ओनलाइन के सर्वेसर्वा श्रीमान् हितेषभाई (नवसारीवाले) को भी मैं विशेष धन्यवाद देता हुँ, क्योकि इनके कारण ही इस ग्रंथ में चार चांद लगे है एवं ग्रंथ सर्वमान्य-सर्वग्राह्य बना हैं।

ऊँकार ग्राफिक्स के माननीय श्री पियुषभाई को भी इस अवसर पर भूलाया नही जा सकता क्योंकि संपूर्ण ग्रंथ के डिजाइनिंग का कार्य इन्हि महानुभाव के हाथों से सुसंपन्न हुआ है।

सुश्रावक श्री अपूर्वभाई जो नवरंग प्रिन्टर्स के मालिक है, उनके द्वारा भी इस ग्रंथ का कंपोजिंग कार्य एवं मुद्रण कार्य एकदम व्यवस्थित रूप से हुआ है अतः उनका भी इस ग्रंथ में अपूर्व योगदान रहा हैं।

यह The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न सर्व गच्छ एवं सर्व समुदाय में मान्य बने तथा ग्रंथ की उपादेयता श्री चतुर्विध संघ में बढ़े तदर्थे अपने अपने अणमोल अभिप्रायः भेजनेवाले ऐसे... प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री जयघोषसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (नीतिसूरि समुदाय), प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री कलाप्रभसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पुण्यपालसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (गिरिविहारवाले), प.पू.आ.श्री अशोकसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री सूर्योदयसूरिजी / राजरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जितरत्नसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री मुनिचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जयसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रविशेखरसूरिजी म.सा., प.पू.पं.श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा., प.पू.पं.श्री मोक्षरतिविजयजी म.सा. ...इत्यादि का मैं बहुत ही ऋणी हुं।

परम पूज्य शास्त्र संशोधक आचार्य श्री विजय मुनिचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.षड्दर्शन निष्णात आ.श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.प्रवचन प्रभावक, शासन उन्नतिकारक आ.श्री विजय मुक्तिवल्लभसूरीश्वरजी म.सा. तथा Prof. Dr. सुधीरभाई वी. शाह (अम.) और माननीय श्री पंडितजी जितेन्द्र बी. शाह (L.D. Institute of Indology) के उपकारों को भी मैं कभी भी अदा नहीं कर सकता... क्योंकि इन्होंने तो प्रस्तुत ग्रंथोद्यान को प्रस्तावना के द्वारा पल्लवित किया हैं।

विशेष में एक बात आपको बतानी हैं कि... प्रकरण एवं आगम ग्रंथों का अभ्यास करते समय तथा इस ग्रंथ के लेखन करते समय कितनेक विषय मुझे बहुत ही सुंदर एवं सरल शैली में प्रस्तुत किये हुए लगे अतः इस ग्रन्थ में कितनेक विषयों को उन उन ग्रंथो में से सीधे युं ही प्रस्तुत किया गया हैं।

इस ग्रंथरत्न का लेखन करते समय जो कोई भी जैनागम-प्रकरण ग्रंथ- अन्य शास्त्र अथवा पुस्तकों तथा इतर ऐसे वेद-पुराणादि ग्रंथों की सहाय ली हैं उन सभी का नामोल्लखन उन उन विषयों की शरुआत में रहे हुए आधार ग्रंथों की सूची में किया गया है, फिर भी जो छद्मस्थता के वश से बाकी रह गया हो तो मैं हृदय से क्षमा प्रार्थता हुँ।

इस The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न लेखन-संपादन में नामी / अनामी सर्व व्यक्ति के जो भी प्रत्यक्ष के परोक्ष रूप से इस कार्य में सहाय-मदद रूप बने हों... उनका भी में हृदय से सदा ऋणी हुं एवं सदा ऋणी रहुँगा।

गुरुगुणरश्मिहीरपादपद्मरेणु
मुनि चारित्ररत्नविजय

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

ग्रंथ विभागीकरण एवं परिचय

यह ग्रंथरत्न एक सामान्य पुस्तक के रूप में ही प्रकाशित नहीं हो रहा है... परंतु एक प्रकरण ग्रंथ - अभ्यासिक ग्रंथ के स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है जिसमें सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतों के द्वारा बताया गया विश्व क्या है ? उसकी व्यवस्था कैसी है ? तथा ऊर्ध्व-अधो-मध्य (तीर्छा) लोक में क्या क्या रहा हुआ है ? और तो और जैनशासन की जनरल फिलोसोफी एवं मान्यताएँ तथा जैनशासन के विशिष्ट पदार्थ क्या है ? इत्यादि बहुत सारी जानकारी से परिपूर्ण यह एक श्रेष्ठ ग्रंथ है.... इसलिये बाह्य दृष्टि से देखने जाये तो जैसा आकर्षण VIP अथवा 3D के ग्रंथादि में होता है वैसा आकर्षण इस ग्रंथ में देखने को शायद नहीं भी मिलेगा वह स्वाभाविक है फिर भी एक प्रयत्न इस तरफ किया है अत: अभ्यंतर दृष्टि से देखने जाये तो यह ग्रंथ वाचकवर्ग (अभ्यासुवर्ग) के लिये यह अनेकानेक प्रकारो से उपयोगी होगा... बस ! इसी अभ्यर्थना के साथ.....

संपादक - मुनि चारित्ररत्नविजय....

THE REAL UNIVERSE (PART - 1)

(द्वार - १) लोक विभाग

(1) श्री २४ तीर्थंकर भगवान (2) श्री पंच परमेष्ठी के१०८ गुण..... (3) क्या ईश्वर जगत का निर्माणकर्ता हो सकता है ?.... (4) जैनधर्म वह विश्वधर्म है..... (5) १४ राजलोक रूप विश्व-व्यवस्था..... (6) १४ राजलोक का यथार्थ स्वरूप..... (7) १४ राजलोक तथा तीन लोक के मध्यस्थान..... (8) ८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला..... (9) षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व)..... (10) धर्मास्तिकाय..... (11) अधर्मास्तिकाय..... (12) आकाशास्तिकाय (लोकाकाश)..... (13) आकाशास्तिकाय (अलोकाकाश)..... (14) काल द्रव्य..... (15) पुद्गल द्रव्य..... (16) जीव द्रव्य..... (17) षड्द्रव्यों के २३ द्वार.....★ लोक स्वरूप चिन्तन से मानसिक शान्ति....

(पेज नं. १से ३५)

(द्वार - २) मध्यलोक

(18) जैन गणितानुसार एक योजन के माईल कितने होते है ?..... (19) मध्यलोक का स्वरूप..... (20) मध्यलोक का मध्यद्वीप = जंबूद्वीप..... (21) जंबूद्वीप की जगती = किल्ला..... (22) भरत क्षेत्र..... (23) भरत क्षेत्र के मध्यखंड की विशेष जानकारी..... (24) ऋषभकूट पर्वत की विशेष जानकारी..... (25) भरत क्षेत्र में समुद्र कहाँ से आये...? (26) दीर्घ वैताढ्यपर्वत..... (27) जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र..... (28) जंबूद्वीप के ६ वर्षधर पर्वत..... जंबूद्वीप के ६ महाद्रह.... (29) जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत पर्वत का वर्णन..... (30) लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह सरोवर..... (31) जंबूद्वीप अंतर्गत हिमवंत क्षेत्र..... (32) जंबूद्वीप अंतर्गत महाहिमवंत पर्वत..... (33) जंबूद्वीप अंतर्गत हरिवर्ष क्षेत्र..... (34) जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत (पार्ट - २) ..... (35) महाविदेह क्षेत्र..... (36) महाविदेह क्षेत्र..... (37) १ लाख योजन प्रमाण महाविदेह क्षेत्र कैसे होता है ?... (38) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६ वक्षस्कार पर्वत..... (39) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १२ अन्तर नदियाँ.....(40) महाविदेह क्षेत्र में आये हुए वनमुख का दृश्य..... (41) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (42) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (43) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत उत्तरकुरु क्षेत्र..... (44) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक-समक पर्वत..... (45) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह..... (46) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत १०० कंचनगिरि पर्वत..... (47) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - १) ..... (48) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - २) ..... (49) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत देवकुरु क्षेत्र..... (50) जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत..... (51) मेरुपर्वत के चारों तरफ रहा हुआ भद्रशालवन..... (52) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - १)..... (53) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - २) ..... (54) मेरुपर्वत पर आया हुआ सौमनसवन..... (55) मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - १) ..... (56) मेरूपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - २) ..... (57) मेरुपर्वत पर आई हुई चूलिका..... (58) जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत..... (59) जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत.... (60) जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र..... (61) जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत..... (62) जंबूद्वीप का ऐरावत क्षेत्र..... (63) जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थों का यंत्र.....★ **THE REAL UNIVERSE** ग्रंथ के आधार ग्रंथों की सूची (द्वार १ से ५)

(पेज नं. ३६ से १३३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 2)

(64) इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्ती (65) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न)..... (पार्ट - १) (66) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न)..... (पार्ट - २) (67) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न)..... (पार्ट - ३) (68) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न)..... (पार्ट - ४) (69) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न)..... (पार्ट - ५) (70) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -१) (71) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -२) (72) वासुदेव के ७ रत्न..... (73) कोटिशिला संबंधी विशेष जानकारी..... (74) ६३ शलाकापुरुष और अन्य महापुरुषो का क्रमादि..... (75) श्री प्रभुवीर के ११ गणधरों का जीवन परिचय..... (76) लवणसमुद्र..... (77) लवणसमुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप..... (78) लवणसमुद्र अंतर्गत ५६ अंतर्द्वीप..... (79) लवणसमुद्र के तीन मागधादि तीर्थ..... (80) गोतीर्थ और जलवृद्धि का दो तरफ से दृश्य..... (81) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - १) (82) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - २) (83) धातकीखंड..... (84) कालोदधि समुद्र..... (85) पुष्करवरार्ध द्वीप..... (86) मानुषोत्तर पर्वत..... (87) अढाईद्वीप..... (88) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - १) (89) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - २) (90) अढाईद्वीप में शाश्वत चैत्य-प्रतिमाओं का वर्णन..... (91) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -१) (92) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -२) (93) सात द्वीप-सात समुद्र की बातें क्या सच है ?..... (94) नंदीश्वरद्वीप..... (95) श्री नंदीश्वरद्वीप् विषयक किंचित् वर्णन..... (96) नंदीश्वरद्वीप में आया हुआ अंजनगिरि.....

(97) नंदीश्वरद्वीप के दधिमुख पर्वत और रतिकर पर्वत..... (98) कुंडलद्वीप की विशेष जानकारी..... (99) रुचकद्वीप..... (100) तिर्च्छालोकवर्ती क्रमशः द्वीप-समुद्र स्थापना..... (101) समस्त द्वीप-समुद्रों का आकार तथा प्रमाण..... (102) प्रत्येक समुद्रवर्ती जल का स्वाद और मत्स्यादि का प्रमाण..... (103) तिर्च्छालोक में रहे हुए द्वीप-समुद्रों का प्रमाणादि..... (104) तमस्काय का स्वरूप..... (105) ज्योतिष चक्र का स्वरूप..... (106) ज्योतिष चक्र के विमानों का आकारादि..... (107) सूर्य-चंद्रादिक के आभियोगिक विमान-वाहक देव..... (108) सूर्य-चंद्र की तीन पर्षदाएँ..... (109) ज्योतिष चक्र के चन्द्रादि की अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ)..... (110) ज्योतिष चक्र का प्रभाव मनुष्यों पर..... (111) सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहणादि का स्वरूप क्या है ?.... (112) मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हुए सूर्य-चन्द्रादि..... (113) मनुष्य क्षेत्र में सूर्य-चन्द्र की ६६-६६ पंक्तियाँ..... (114) चर ज्योतिष देवों के द्वारा मनुष्यलोक में काल का विभाग..... (115) जंबूद्वीप के सूर्य तथा चंद्र के मंडलादि का प्रमाण-अंतर इत्यादि..... ★ जीव और पुद्गलों की रंगभूमी....

(द्वार - ३) अधोलोक

(116) रत्नप्रभा पृथ्वी अर्थात् प्रथम नरक..... (117) सातों नरकों में रहें हुए प्रतरों के नामादि..... (118) ८ व्यंतर देव..... (119) ८ व्यंतर देवों की अग्रमहिषी..... 120) व्यंतर देवों की ८७ जाति..... (121) ८ प्रकार के वाणव्यंतर देव..... (122) १० प्रकार के भवनपति देव..... (123) भवनपति निकाय के १० भेद.....(124) चमरेन्द्र महाराजा की चमरचंचा और उत्पातपर्वत..... (125) चमरेन्द्र कौन ? व कहाँ से आया ?..... (126) चमरेन्द्र का सोधर्मेन्द्र तरफ प्रयाण..... (127) बन्धनादि १० प्रकार की क्षेत्रवेदना... (128) नरक में १० प्रकार की क्षेत्रवेदना..... (129) नरक में परस्पर कृत वेदना..... (130) नरक में परमाधामी कृत वेदना..... (131) १५ प्रकार के परमाधामी देव..... (132) परमाधामी देवों की गति ?..... (133) परमाधामी संबंधी कुछ और जानने जैसा..... (134) द्वितीय शर्कराप्रभा नामक पृथ्वी..... (135) तृतीय वालुकाप्रभा नामक पृथ्वी..... (136) चतुर्थ पंकप्रभा नामक पृथ्वी..... (137) पांचवीं धूमप्रभा नामक पृथ्वी..... (138) छठ्ठीं तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(139) सातवीं तमस्तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(140) पापीयों को सजा भुगतने का स्थान अर्थात् ७ नरक..... (141) कौन - से जीव नरकायुष्य को बान्धते है.... (142) क्या नारकी जीव कभी सुखी हो सकते है ?.....(143) कौन से जीव कौन-सी नरक तक जा सकते है !.....(144) नरक संबंधी कुछ जानने जैसा....

(पेज नं. १ से १६६)

THE REAL UNIVERSE (PART - 3)

(द्वार - ४) ऊर्ध्वलोक

(145) ऊर्ध्व वैमानिक देवलोक..... (146) वैमानिक देवलोक की व्यवस्था..... (147) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - १) (148) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - २) (149) अष्ट कृष्णराजी.....(150) नव (नौ) लोकांतिक देव..... (151) कल्पोपपन्न देवों के १० प्रकार..... (152) देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था किस तरह है ?..... (153) ६२ प्रतर के कुल ६२ इन्द्रक विमान तथा नामादि..... (154) देवों का उत्तरवैक्रिय शरीर..... (155) किल्बिषिक देवों के प्रकार और उनके निवासस्थलादि..... (156) देव किन कारणों से मनुष्यलोक में आते है ?..... (157) किन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते है ?..... (158) देवों की तथाविध भवप्रत्ययिक संपत्ति..... (159) वैमानिक देवलोक के विमानों का संख्या-दर्शक यंत्र..... (160) नव ग्रैवेयक के ९ विमान..... (161) नव ग्रैवेयक तक कौन उत्पन्न हो सकता है ?..... (162) ५ अनुत्तरवासी देव.... .(163) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - १) (164) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - २) (165) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - १) (166) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - २) (167) चारों निकायी देवों के १९८ भेद किस प्रकार होते है ?..... ★ उत्पाद - व्यय-ध्रौव्ययुकं सत्...

(द्वार - ५) प्रकीर्णक

(168) पृथ्वीकायादि ५ स्थावर जीव.....(169) त्रसकाय-विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव..... (170) संसारी जीवों के ५६३ भेद... (मनुष्य-देव-नारकी)..... (171) संसारी जीवों के ५६३ भेद पर कुछ विचारणा..... (172) निगोद के जीवों का स्वरूप..... (173) औदारिकादि ५ शरीर..... (174) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - १) (175) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - २) (176) सिद्धों का सुख कैसा है ?..... (177) सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ..... (178) सिद्धात्मा की अवगाहना..... (179) सिद्ध के १५ भेद और अनंतरादि प्रकार..... (180) आहारादि ६ पर्याप्ति..... (181) जीव के छः संस्थान और अजीव के पांच संस्थान..... (182) छः प्रकार के संघयण..... (183) ६ लेश्या का स्वरूप..... (184) आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - १) (185)आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - २) (186) आत्मा का बिकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - ३) (187) केवली समुद्घात.....

(पार्ट - १) (188) केवली समुद्घात..... (पार्ट - २) (189) तीर्थंकर नामकर्म बंध कारण वीस स्थानक पद..... (190) पुद्गल (अजीव) के ५३० भेद..... (191) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - १) (192) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - २) (193) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (पार्ट - १)(194) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....(पार्ट - २) (195) उत्सर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (196) ६ प्रकार के बाह्य तप..... (197) ६ प्रकार के अभ्यंतर तप..... (198) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - १) (199) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - २) (200) क्या तुम्हें पता है भूकंप किस कारण से होता है ?.....

★ सुविदितं जगत्स्वभावम्...

(द्वार - ६) प्राचीन चित्रावली

(सैंकड़ों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित-ताडपत्रीय ग्रंथो में दिये हुए १४ राजलोक एवं उसके अंतर्गत दुसरे पदार्थों संबंधी १०० से अधिक प्राचीन चित्रों का संग्रह...

(पेज नं. १ से १६७)

THE REAL UNIVERSE (PART - 4)

(द्वार - ७)

(१) जैनधर्म की प्राचीनता के प्रमाण... (२) जैनधर्म की अतिप्राचीनता के प्रमाण... (३) जैन दिगंबर मान्यतानुसार लोक वर्णन... (४) बौद्ध मतानुसार लोक वर्णन.... (५) वैदिक धर्मानुसार लोक वर्णन... (६) भारतवर्ष का नामकरण..... (७) वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व (८) चातुर्द्वीपिक भूगोल परिचय (९) चलिए ! पृथ्वी की जानकारी प्राप्त करते हैं... वैज्ञानिकों के मुख से (१०) अमेरिका की "फ्लेट अर्थ सोसायटी" भी पृथ्वी को सपाट मानती हैं (११) रहस्यमय उत्तरध्रुव... (१२) पृथ्वी गेंद जैसी गोल नही है और वह घूमती भी नही हैं उसके १०१ प्रमाण... (१३) ईसाई धर्म भी पृथ्वी को समतल मानता है ... (१४) ईस्लाम दर्शन (धर्म) में भी पृथ्वी स्थिर हैं .... (१५) पृथ्वी के गोल होने के वैज्ञानिकों के पास कोई प्रमाण नही है... (01) प्लेटो व एरिस्टोटल पृथ्वी को समतल मानते थे... (02) आर्यभट्ट पृथ्वी को गोल मानते थे... (03) ब्रह्मगुप्त पृथ्वी को समतल मानते थे... (04) निकोलस कोपरनिकसने पृथ्वी के घूमते रहने का तुक्का लगाया.... (05) कोपरनिकस में इस पुस्तक को प्रकाशित करने की हिम्मत नही थी.... (06) टायको ब्राह पृथ्वी को समतल मानता था... (07) जोहानिस केप्लर था टायको ब्राह के शिष्य... (08) जोहानिस केप्लर बने टायको ब्राह के वारिस... (09) गैलीलियो गैलिली पृथ्वी को घूमती हुई मानते थे ...(10) ऑइजक न्युटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की शोध की थी... (11) अल्बर्ट आइंस्टाइनने न्युटन की परिकल्पना को गलत सिद्ध किया था... (12) गोलाकार सतह पर प्रकाश सरल रेखा में गति नही करता है... (13) आइंस्टाइन की फ्रेम ड्रेगिंग परिकल्पना... (14) ब्लेक होल की अजीबोगरीब परिकल्पना...(15) आइंस्टाइन के सिद्धांत के समक्ष गुजरात के वैज्ञानिक की चुनौती...(१६) पू. आत्मारामजी महाराज के अंतरोद्गार... (१७) जानने जैसी तारातंबोल नगरी... (१८) हिमालय के उस पार... (१९) पल्योपम और सागरोपम का स्वरूप... (२०) पृथ्वी के आकार और स्थिरता संबंधी सुंदर साहित्य वर्णन... (२१) इन विषयों को जानने के लिए ये पढो... (२२) लोक के नामादि ८ निक्षेप.... (२३) **jain cosmology** ग्रंथ के लिए आए हुए अभिप्रायः पत्र.... (२४) पूज्यश्री के द्वारा अध्ययन-उपदेशात्मक एवं आगामी साहित्यों की सूची.... (२५) ग्रंथ प्रशस्ति....

(पेज नं. १ से १७३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 5)

(द्वार - ८) "कृतिसंग्रह"

● प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक "कृतिसंग्रह"...

(पेज नं. १ से ५२)

विशेष सूचना :- THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में बताये गये खगोल-भूगोल संबंधी १ से २०० तक के लेखों को हिन्दी भाषा में संगृहित कीया गया है। तथा इन लेखों के पदार्थों को जिन जिन शास्त्रसंदर्भ पाठों से युक्त बताना है उन उन स्थानों में छोटे-छोटे अक्षरो में (फोन्ट में) १-२-३-४-५-६-७ इत्यादि करके आंकड़ों में रख दिये गये है और उसके शास्त्रपाठ उसी पेज में नीचे टिप्पन के स्वरूप उन ग्रंथों के नाम एवं श्लोक संख्यादि के साथ बताया गया है।

॥ ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनी ! भगवति ! सरस्वती ! श्रुतदेवी !
मम जाड्यं... हर हर श्री भगवत्यैक ठः ठः ठः स्वाहा ॥

॥ ऐं नम ॥

कविजनों के मनोवांछितों को पूर्ण
करने के लिए कल्पलता के समान
हे श्रुताधिष्ठायिका ! सरस्वती माते !

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

विषयक ग्रंथ का सुंदर आलेखन हो इसलिए सान्निध्य करने की प्रार्थना के साथ आपका प्रणिधान कर रहा हुं ..... अतः हे माँ शारदे ! आप प्रसन्नता पूर्वक सान्निध्य करना... बस ! इतना मंगल करने के बाद इस ग्रंथ का प्रारंभ कर रहा हुं ।

संपादक - मुनि चारित्ररत्नविजय

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहुणं
एसो पंच नमुक्कारो
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवइ मंगलं

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

(PART-1)

INDEX

1
श्री २४ तीर्थंकर भगवान ... २

2
श्री पंच परमेष्ठी के १०८ गुण..... ... ४

3
क्या ईश्वर जगत का निर्माणकर्ता हो सकता है?.... ... ६

INDEX

4

जैनधर्म वह विश्वधर्म है..... ८

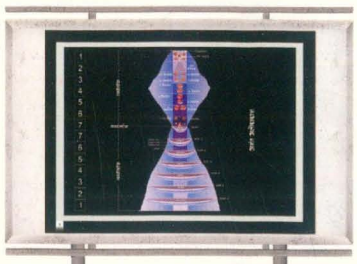

5

१४ राजलोक रूप विश्व-व्यवस्था..... १०

6

१४ राजलोक का यथार्थ स्वरूप..... १२

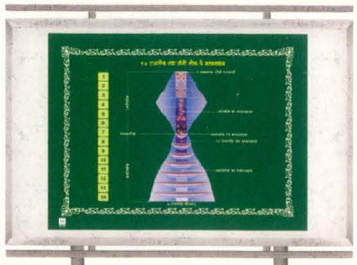

7

१४ राजलोक तथा तीन लोक के मध्यस्थान..... १४

8

८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला..... १६

9

षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व)..... १८

10

धर्मास्तिकाय..... २०

11

अधर्मास्तिकाय..... २२

12

आकाशास्तिकाय (लोकाकाश)..... २४

13

आकाशास्तिकाय (अलोकाकाश)..... २६

14

काल द्रव्य..... २८

15

पुद्गल द्रव्य..... ३०

INDEX

16

जीव द्रव्य..... ३२

17

षड्द्रव्यों के २३ द्वार..... ३४

18

जैन गणितानुसार एक योजन के माईल कितने होते है ?..... ३८

19

मध्यलोक का स्वरूप..... ४०

20

मध्यलोक का मध्यद्वीप = जंबूद्वीप..... ४२

21

जंबूद्वीप की जगती = किल्ला..... ४४

22

भरत क्षेत्र..... ४६

23

भरत क्षेत्र के मध्यखंड की विशेष जानकारी..... ४८

24

ऋषभकूट पर्वत की विशेष जानकारी..... ५०

25

भरत क्षेत्र में समुद्र कहाँ से आये...? ५२

26

दीर्घ वैताढ्यपर्वत..... ५४

27

जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र..... ५६

INDEX

28

जंबूद्वीप के ६ वर्षधर पर्वत.....
जंबूद्वीप के ६ महाद्रह.....
५८

29

जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत
पर्वत का वर्णन.....
६०

30

लघुहिमवंत पर्वत पर
पद्मद्रह सरोवर.....
६२

31

जंबूद्वीप अंतर्गत
हिमवंत क्षेत्र.....
६४

32

जंबूद्वीप अंतर्गत
महाहिमवंत पर्वत.....
६६

33

जंबूद्वीप अंतर्गत
हरिवर्ष क्षेत्र.....
६८

34

जंबूद्वीप अंतर्गत
निषध पर्वत.... .(पार्ट - २)
७०

35

महाविदेह क्षेत्र.....
७२

36

महाविदेह क्षेत्र.....
७४

37

१ लाख योजन प्रमाण
महाविदेह क्षेत्र
कैसे होता है ?...
७६

38

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६
वक्षस्कार पर्वत.....
७८

39

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत
१२ अन्तर नदियाँ.....
८०

INDEX

40
महाविदेह क्षेत्र में आये हुए वनमुख का दृश्य..... ८२

41
महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... ८४

42
महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... ८६

43
महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत उत्तरकुरु क्षेत्र..... ८८

44
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक-समक पर्वत..... ९०

45
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह..... ९२

46
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत १०० कंचनगिरि पर्वत..... ९४

47
उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - १)..... ९६

48
उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - २)..... ९८

49
महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत देवकुरु क्षेत्र..... १००

50
जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत..... १०२

51
मेरुपर्वत के चारों तरफ रहा हुआ भद्रशालवन..... १०४

INDEX

52

मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - १)..... १०६

53

मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - २)..... १०८

54

मेरुपर्वत पर आया हुआ सौमनसवन..... ११०

55

मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन (पार्ट - १)..... ११२

56

मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन (पार्ट - २)..... ११४

57

मेरुपर्वत पर आई हुई चूलिका..... ११६

58

जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत..... ११८

59

जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत..... १२०

60

जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र..... १२२

61

जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत..... १२४

62

जंबूद्वीप का ऐरावत क्षेत्र..... १२६

63

जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थों का यंत्र..... १२८

STOP, LOOK & READ

- क्या आपको आध्यात्म जगत में प्रवेश करना हैं ?
- क्या आपको अत्यंत दु:खमय इस संसार से मुक्त होना हैं ?
- क्या आपको दु:खों की जड़ स्वरूप अज्ञान रूप अंधकार से भय लगता हैं ?
- क्या आपको अपने जीवन में तत्त्वज्ञान का दीपक प्रगटाना हैं ?
- क्या आपको अनंत सुख का मार्गदर्शक ऐसे सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति करनी हैं ?
- क्या आपको संसार के भ्रमण की थकान लगी हैं ?
- क्या आपको पूर्वोपार्जित ज्ञानावरणीयादि पाप कर्मों का नाश करना हैं ?
- क्या आपको १४ राजलोक रूप वास्तविक विश्व की जानकारी प्राप्त करनी हैं ?
- क्या आपको सर्वज्ञ भगवान महावीर के द्वारा बताई गई खगोल-भूगोल

संबंधी व्यवस्था जाननी हैं ? तो....तो... चलिए ! आज और अभी से आपके लिए प्रस्तुत है.....

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड)

नामक यह अनमोल ग्रंथ ..... तन और मन के आलस्य को दूर करके एलर्ट हो जाये

और तो और इस ग्रंथ के वांचन रूप महायज्ञ में जुड़ जाये...

इसलिए कहा गया है...

अचरज भरी इस दुनिया को देखने के लिए ''तत्त्वज्ञान'' वो आंख हैं,

आध्यात्म की दुनिया में विहरने के लिए ''तत्त्वज्ञान'' वो पंख हैं।

आंख है... पंख हैं... तो अब उड़ने में कितनी देर हैं,

तो...तो... चलिए ! अब एक उड्डयन **THE REAL UNIVERSE**

(सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ की तरफ आरंभ करते हैं।

द्वार-१

लोक विभाग

२४ तीर्थंकर

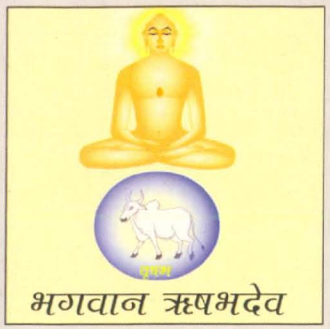

भगवान ऋषभदेव

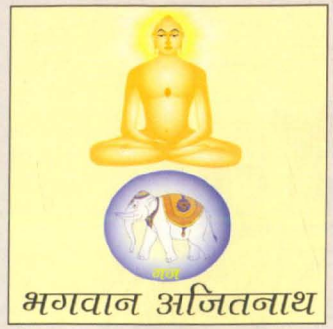
भगवान अजितनाथ

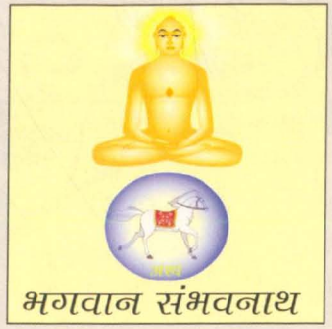
भगवान संभवनाथ

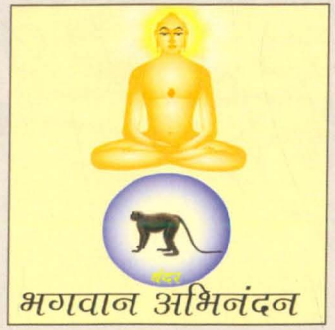
भगवान अभिनंदन

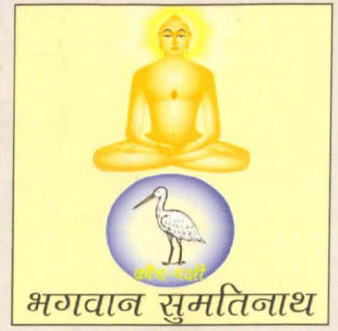
भगवान सुमतिनाथ

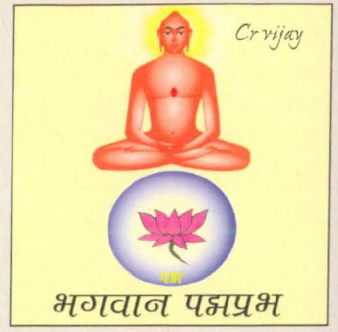
भगवान पद्मप्रभ

भगवान सुपार्श्वनाथ

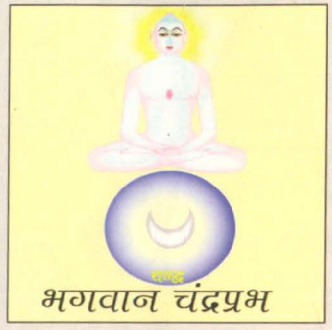
भगवान चंद्रप्रभ

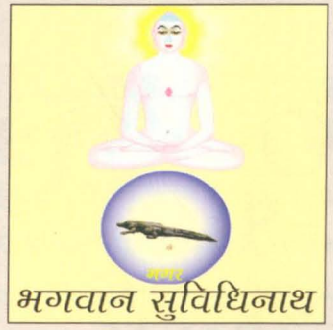
भगवान सुविधिनाथ

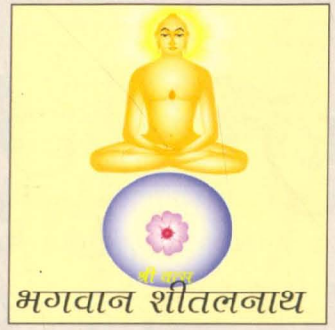
भगवान शीतलनाथ

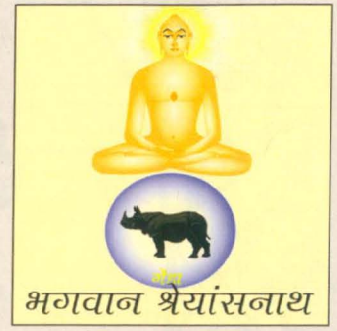
भगवान श्रेयांसनाथ

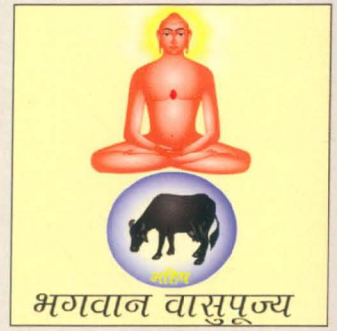
भगवान वासुपूज्य

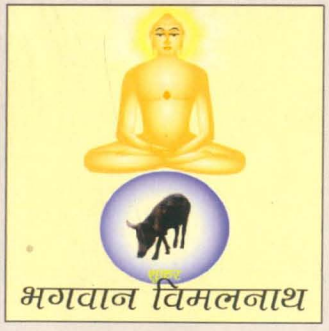
भगवान विमलनाथ

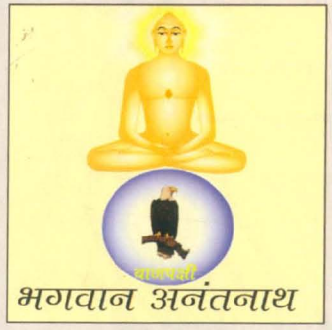
भगवान अनंतनाथ

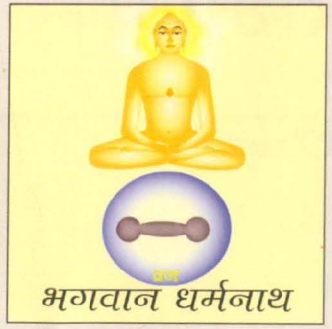
भगवान धर्मनाथ

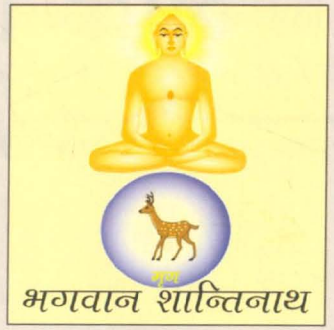
भगवान शान्तिनाथ

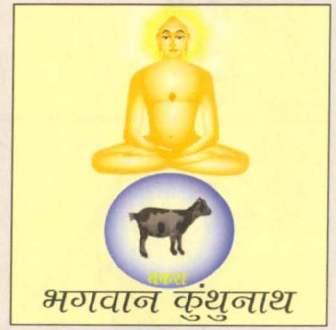
भगवान कुंथुनाथ

भगवान अरनाथ

भगवान मल्लीनाथ

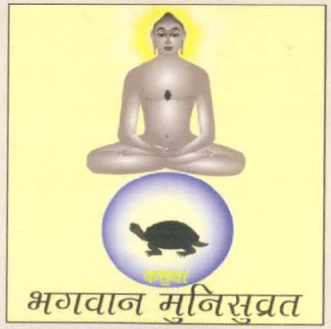
भगवान मुनिसुव्रत

भगवान नमिनाथ

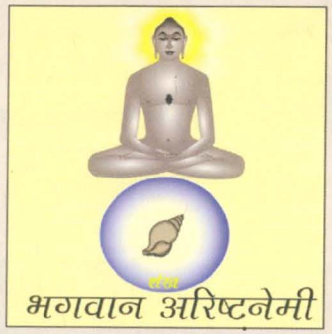
भगवान अरिष्टनेमी

भगवान पार्श्वनाथ

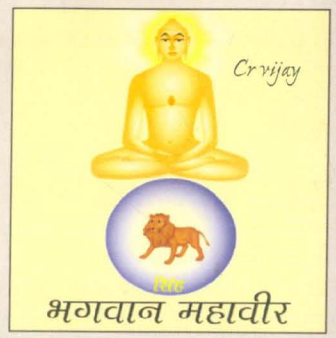

भगवान महावीर

श्री २४ तीर्थंकर भगवान

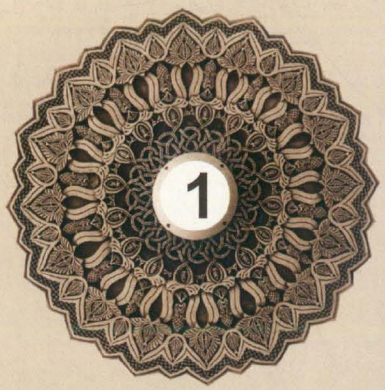

दुनिया में कई प्रकार के धर्म एवं संप्रदाय हैं। किन्तु उन सभी धर्मो में जैनधर्म का अपना एक विशिष्ट स्थान हैं। क्योंकि यह धर्म अपने आपमें महान हैं। यह महान इसलिए है कि इसमें केवल बाह्य नहीं यावत् आंतरिक शुद्धि पर भी विशिष्ट ध्यान दिया गया है। साथ ही यह धर्म सभी जाती एवं समाज के लोगों के लिए खुला हैं। इस धर्म की महानता इसलिए भी है कि यह धर्म खुब ही उदात्त विचारवाला धर्म हैं। इस धर्म में प्राणीमात्र के लिए चिंता की है एवं उनके संपूर्ण सुखी होने के मार्ग और उपाय भी बताए हैं। दुनिया में पांच धर्म कि विशेष बोल-बाला हैं उसमें इस्लाम, इसाई, सनातन, बौद्ध एवं जैनधर्म का समावेश होता हैं।

वस्तुतः जैनधर्म दुनिया का सबसे पुराना धर्म हैं और यूं कहे कि जैनधर्म से ही अन्य सभी धर्मों की उत्पत्ति हुई है तो भी अतिशयोक्ति नहीं है। इसलिए जैनधर्म दुनिया का सबसे महान धर्म हैं और इसकी महानता इसके परमात्मा (तीर्थंकरो-सर्वज्ञों) के आभारी हैं।

जैनों जिसे भगवान मानते हैं वे विशिष्ट प्रकार के गुणों के धाम, सागर की तरह गंभीर, राग-द्वेष विजेता होते हैं। इसलिए उनका नाम जिनेश्वर हैं। एवं त्रिकालज्ञानी होने के कारण उन्हें "सर्वज्ञ" भी कहा जाता है तथा दूसरे अन्य और भी इनके नाम हैं जैसे वीतराग, तीर्थंकर, अर्हत्, भगवान्, परमात्मा आदि। भगवान का अर्थ होता हैं भग् = ज्ञान अर्थात् ज्ञानवाले जो हो उसे भगवान कहते हैं। राग-द्वेष को जड-मूल से नाश करने के कारण जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता हैं वे भगवान हो जाते हैं। क्योंकि अब उन्हें अपने दिव्य ज्ञान से संपूर्ण विश्व का स्वरूप एवं अतीत अनागत और वर्तमान के सभी रहस्य हाथ में रहे हुए आंवले की तरह स्पष्ट दिखाई देते हैं।

कई लोगों को सवाल होता है ऐसे परमशुद्ध जिनेश्वर (तीर्थंकर-सर्वज्ञ) कौन हुए ? उसका उत्तर यह है कि जैनधर्म अवतारवाद को नहीं स्वीकारता है। अतः एक ही व्यक्ति ईश्वर बनता है। यह बात जैनों को स्वीकार्य नहीं हैं। यहाँ तो अनंत आत्मा भगवान बने हैं। इसी कारण वहाँ उनके नामो का निर्देश नहीं है। हाँ, उदाहरण के तौर पर उनके एक दो या उससे भी अधिक नाम बताए जाते हैं। जैनधर्म अनंत आत्माओं को भगवान मानता हैं। क्योंकि जो व्यक्ति राग-द्वेष विजेता बनता है वह अरिहंत हो जाता हैं। और ऐसे तो आज तक अनंतकाल में अनंत आत्माएँ भगवान हो गए फिर भी इस अवसर्पिणी काल की अपेक्षा से सर्व प्रथम ऋषभदेव भगवान हुए एवं अंतिम महावीरस्वामी भगवान बने हैं। इसके बीच अन्य अजितनाथ आदि २२ तीर्थंकरों भी हुए है। उनमें शांतीनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ का नाम इतिहास में ज्यादा विख्यात हुआ हैं।

इन २४ तीर्थंकर सर्वज्ञों के नाम क्रमशः इस तरह जाने...

१. ऋषभदेवस्वामी	७. सुपार्श्वनाथ स्वामी	१३. विमलनाथस्वामी	१९. मल्लीनाथस्वामी
२. अजितनाथस्वामी	८. चंद्रप्रभस्वामी	१४. अनंतनाथस्वामी	२०. मुनिसुव्रतस्वामी
३. संभवनाथस्वामी	९. सुविधिनाथस्वामी	१५. धर्मनाथस्वामी	२१. नमिनाथस्वामी
४. अभिनंदनस्वामी	१०. शीतलनाथस्वामी	१६. शांतीनाथस्वामी	२२. नेमिनाथस्वामी
५. सुमतिनाथस्वामी	११. श्रेयांसनाथस्वामी	१७. कुंथुनाथस्वामी	२३. पार्श्वनाथस्वामी
६. पद्मप्रभस्वामी	१२. वासुपूज्यस्वामी	१८. अरनाथस्वामी	२४. महावीरस्वामी

जर्मनी के जग विख्यात डॉ. हर्मन जेकोबी ने लीखा है कि..."In conclusion let me assert my Conviction that jainism is an original System, quite distinct and independent from all others, and that, therefore it is of great importance for the Study of philosofical thought and religious life in ancient india" (Read in the Congress of the history of Religions) अर्थात् अंत में मुझे अपना निश्चय जाहिर करने दो कि... "जैनधर्म यह मूल धर्म है सर्व दर्शनों से यह दर्शन सर्वथा भिन्न है और स्वतंत्र है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धर्मिक जीवन के अभ्यास के लिये वह बहुत महत्त्व का है।"

श्री पंच परमेष्ठी

श्री पंच परमेष्ठी के १०८ गुण.....

अरिहंत भगवान के १२ गुण[1] : अष्ट महाप्रातिहार्य-जैसे कि (१) अशोकवृक्ष (२) पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामर (५) सिंहासन (६) आभामंडल (७) देवदुंदुभि और (८) तीन छत्र[2] तथा ४ मूल अतिशय (९) अपायापगमातिशय (१०) ज्ञानातिशय (११) पूजातिशय और (१२) वचनातिशय इत्यादि १२ गुण तथा ३५ वाणी के गुण और ३४ अतिशयों से जो युक्त है, ऐसे अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो.....।

सिद्ध भगवान के ८ गुण : (१) अनंत ज्ञान (२) अनंत दर्शन (३) अनंत चारित्र (वीतरागता) (४) अनंतवीर्य (स्वाभाविक अनंत शक्ति) (५) अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख (६) अक्षय (अजर-अमर) स्थिति (७) अरूपी अवस्था और (८) अगुरुलघुता। शाश्वत स्थान ऐसे मोक्ष को जिसने प्राप्त कर लिया है[3] उन्हें सिद्ध भगवंत कहते है ऐसे सिद्ध भगवंतो को नमस्कार हो...।

आचार्य भगवंत के ३६ गुण[4] : पांच इन्द्रियों का संयम, नव गुप्ति से युक्त ब्रह्मचर्य का पालन व चार कषायों का वर्जन तथा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पाँच आचारों का शुद्ध पालन, ५ महाव्रत और अष्ट प्रवचनमाता रूप ५ समिति और ३ गुप्ति को धारण करना अर्थात् ५ + ९ + ४ + ५ + ५ + ८ = ३६ गुण धारक[5] आचार्य भगवंत को नमस्कार हो.....।

उपाध्याय[6] भगवंत के २५ गुण : ११ अंग तथा १२ उपांग का जो अध्ययन करते हैं और दूसरों को करवाते हैं।(११ अंग = (१) आचारांग (२) सूयगडांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) भगवती (६) ज्ञाताधर्मकथांग (७) उपासकदशांग (८) अंतकृद्दशांग (९) अनुत्तरोपपातिकदशांग (१०) प्रश्नव्याकरण तथा (११) विपाक सूत्र।[7] १२ उपांग = (१) औपपातिक (२) राजप्रश्नीय (३) जीवाजीवाभिगम (४) प्रज्ञापना (५) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति (६) सूर्यप्रज्ञप्ति (७) चंद्रप्रज्ञप्ति (८) निरयावलिका (९) कल्पावतंसिका (१०) पुष्पिका (११) पुष्पचूलिका (१२) वृष्णिदशा (१२ से २३) तथा (२४) चरणसित्तरी और (२५) करणसित्तरी का पालन करनेवाले उपाध्याय भगवंत को नमस्कार हो...।

साधु भगवंत[8] के २७ गुण : ५ महाव्रत, छट्ठा रात्रीभोजन विरमण व्रत, छःकाय के जीवो की रक्षा, पांच इन्द्रियों का संयम, मन-वचन-काया के योगों को जीतना, क्षमाशीलता, लोभत्याग, भावों की निर्मलता, पडिलेहणादि में उपयोग रखना, संयमयोगों में युक्तता अर्थात् ५ समिति ३ गुप्ति का पालन करते हुए निद्रा-विकथा-अविवेक का वर्जन, २२ प्रकार के परिषह, उपसर्ग को समता पूर्वक सहन करनेवाले ऐसे २७ गुण धारक[9] साधु भगवंत को नमस्कार हो.....।

इस प्रकार १२ + ८ + ३६ + २५ + २७ = १०८[10] गुणधारक पंच परमेष्ठि भगवंतों को नमस्कार हो।

(१) (A) दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति-१२०, (B) आवश्यक निर्युक्ति-९२०/९२१, (२) (A) संबोध प्रकरण-२१, (B) पदार्थ स्थापना संग्रह-१०६, (C) दर्शनशुद्धि प्रकरण-८ (३) (A) द्रव्यलोकप्रकाश/सर्ग-२, श्लोक-२७-२८ (B) शास्त्रवार्ता समुच्चय-८/१५१, (C) तत्त्वार्थभाष्य-संबंधकारिका (D) चैत्यवंदन महाभाष्य-३५७/२८६ (E) श्रावकप्रज्ञप्ति-३९६ (F) धनगणितसंग्रहणीगाथा-१३ (४) (A) गाथा सहस्त्री-६४२, (B) विशेषावश्यक भाष्य-१३९० (C) आवश्यक निर्युक्ति-९९४, (५) (A) पंच प्रतिक्रमण-पंचिदिय संवरणो सूत्र, (B) प्रवचन सारोद्धार-६४ वाँ द्वार-गाथा-५४० से ५४६ (C) धर्माचार्यबहुमानकुलकम् (D) गुणमाला प्रकरण/गाथा-४ की टीका (E) बृहत्कल्पभाष्य (F) पुष्पमाला प्रकरण-३३० से ३३३ (G) गुरुगुणषट्-त्रिंशत्षट्त्रिंशिका (६) (A) सम्यक्त्व सप्तति (B) विशेषावश्यकभाष्य-३१/९७ (C) गुणमाला प्रकरण-४ (७) (A) पाक्षिक सूत्र (पक्खि सूत्र) (B) हेमकोष ग्रंथ (८) (A) आवश्यक निर्युक्ति-१००२/१००५ (B) गुणमाला प्रकरण-५ (९) (A) संबोध प्रकरण-२ (B) संग्रह शतकम्-६१ (C) प्रवचनसारोद्धार-१३५४ (D) संबोध सित्तरी-२८ (E) गाथासहस्त्री-२ (F) रत्नसंचय-४१५ (१०) रत्नसंचय-३५७

१०८ की महिमा...

जिस तरह पंच परमेष्ठि के १०८ गुण, अष्टोत्तरी महापूजन में १०८ अभिषेक, बलदेव-वासुदेव के १०८ लक्षण, शत्रुंजय महातीर्थ के १०८ नाम, पार्श्वनाथ भगवान के १०८ नाम, बडे पूजनों में १०८ दीपकों की आरती, जगडुशा के द्वारा १०८ जिनमंदिरों का निर्माण, अष्टापदजी महातीर्थ पर १०८ पुरूषों के साथ भगवान ऋषभदेव का निर्वाण, १०८ वर्ष तक मौर्यवंश का राज्यकाल, १०८ साधु के साथ भगवान धर्मनाथ का मोक्ष, चौदवें उदय में १०८ युगप्रधान आचार्य, शत्रुंजय महातीर्थ पर १०८ जात्रा रूप नव्वाणुं यात्रा, राजा श्रेणिक के द्वारा १०८ स्वर्णमय जवों का स्वस्तिक, नवकारवाली के मणके १०८ तथा मांगलीक वस्तु १०८ होती है ठीक उसी प्रकार इस ग्रंथ में भी १०८ के उपर विषय (लेख) जानना चाहिए।

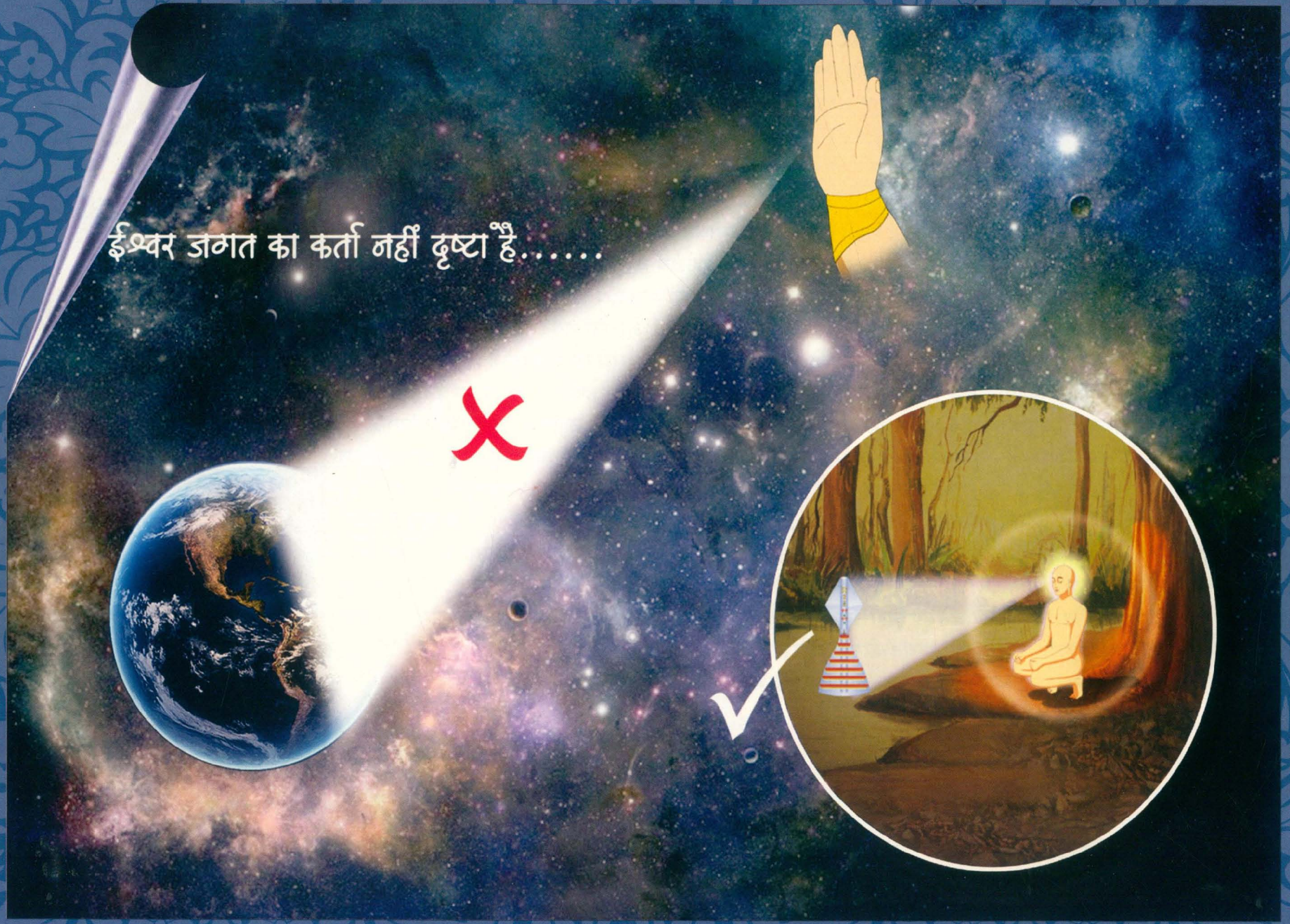
ईश्वर जगत का कर्ता नहीं दृष्टा है.....

क्या ईश्वर जगत का निर्माणकर्ता हो सकता है ?.....

ईश्वरने जगत को बनाया नहीं किन्तु बताया हैं। विश्व का सर्जन-संचालन कोई ईश्वर नहीं करता। क्योकि यह विश्व तो आकाश की तरह शाश्वत है। इसका संचालन तो जीव और कर्म करते हैं। पुरुषार्थ जीव का होता है और सहारा कर्म का। यदि ऐसा न मानकर हम ईश्वर को जगतकर्ता मानें तो अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं। जैसे कि...

(A) ईश्वर को क्या प्रयोजन है जिसके निमित्त वह इस समस्त दुविधा में ग्रस्त हो ?

(B) वह इस प्रकार का निर्माण ही क्यों करता है ?

(C) ईश्वर को दयालु माना गया है, यदि ईश्वर को जगतकर्ता माना जाए तो क्या वह दयालु ईश्वर जीव को दुःख देनेवाले नरकादि पदार्थों की रचना कर सकता है ?

(D) ईश्वर यह समस्त रचना किस शरीर से करता है ? वह शरीर कैसे बना ? किससे बना ? इत्यादि...इन प्रश्नों के उत्तर पर विचार करने से ईश्वर के विषय में एक विचित्र सा चित्र प्रस्तुत होता है। जैसे कि...

(I) यदि ईश्वर किसी प्रयोजन के बिना ही सर्जन और संहार करता है तो उसे मूर्खतापूर्ण खेल कहा जाएगा।

(II) यदि वह क्रीडावश करता है तो उसे बालक कहा जाएगा।

(III) यदि वह दयावश जो ऐसा करता हैं तो वह सबको सुखी बनाए और सब के लिए सुख के साधनों का निर्माण करे। ऐसा करता नहीं हैं इससे उसमें दया की त्रुटि महसूस होती है।

(IV) यह कहा जाता है कि "ईश्वर तो न्यायाधीश है।" अतः वह जीव के अपराधों का दंड देने के लिए दुःख के साधनों की रचना करता है। तो अब यहां प्रश्न खड़ा होता है कि...

यह सबकुछ करने की क्षमतावाला तो ईश्वर सर्व शक्तिमान गिना जाए और उसे दयावान तो माना ही गया है, तो वह ईश्वर जीव को अपराध ही क्यों करने देता है ? जिसके फल-स्वरूप उसे बाद में दंड देना पड़े ? यदि पुलिस अपनी आँखों के सामने ही किसी को दूसरे की हत्या करते हुए देखती रहे, तो वह पुलिस भी अपराधी मानी जाएगी। तब क्या ईश्वर को अपराधी मानेंगे ? अथवा क्या ऐसा मान लेगें कि सर्व शक्तिमान ईश्वर के पास अपराधी को रोकने की शक्ति नहीं है ? या क्या वह निर्दय है ऐसा माना जाए ?

इसके अतिरिक्त कुछ और भी प्रश्न उपस्थित होते हैं। जैसे कि... (१) यदि ईश्वर विश्व का निर्माण व संचालन करता है तो वह यह सब कुछ कहाँ बैठकर करता है ? (२) यदि ईश्वर साकार सशरीरी है तो उसके शरीर का निर्माता कौन ? (३) यदि उसे निराकार मानते हों तो निराकार ऐसा ईश्वर इस साकार विश्व की रचना किस प्रकार कर सके ? सारांश यहि है कि ईश्वर वो जगत का कर्ता नहीं है। यदि जीवों के जैसे कर्म तदनुसार ईश्वर उनकी रचना करता है तो दरअसल कर्ता कर्म हुए, ईश्वर नहीं। तात्पर्य-ईश्वर जगत को बनानेवाले नहीं किन्तु बतानेवाले हैं।

ईश्वर यानी जैनधर्म के सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान समग्र विश्व का स्वरूप बताते हैं। एवं विश्व के अंतर्गत जड-चेतन द्रव्यों की गति-विधियाँ स्पष्ट करते हैं। अर्थात् उनके विषय में यथार्थ प्रकाश डालते हैं।[1]

(१) जैनधर्म का परिचय

3

श्री महावीरजी के उपदेश अनुसार चलने से शांति प्राप्त हो सकेगी । इस महापुरुष के बताए मार्ग पर चलने से हम संपूर्ण शांति प्राप्त कर सकेंगे। जैन धर्म ने संसार को अहिंसा की शिक्षा दी हैं, किसी भी दूसरे धर्म ने अहिंसा की मर्यादा यहा तक नही पहुचाई, इसीलिए जैनधर्म अपने अहिंसादि सिद्धांत के कारण विश्वधर्म होने का पूर्णतया उपयुक्त है।

Jainism has contributed to the world the sublime doctrine of "Ahimsa." No other religion has emphasized the importance of Ahimsa and carried it's practice to that extent Jainism deserves to become the universal religion because of it's "Ahimsa" doctrine.

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

(भूतपूर्व राष्ट्रपति)

संपूर्ण विश्व में जैनधर्म का झंडा लहरा रहा है.....

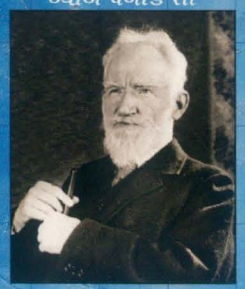

ज्योर्ज बर्नाड शो

देवीदास गांधी

जैनधर्म वह विश्वधर्म है.....

जैनधर्म यह सचमुच विश्वधर्म है, कारण कि...

(A) जैनधर्म समग्र विश्व का यथावस्थित स्वरूप प्रगट करता है।

(B) जैनधर्म ऐसे नियम, सिद्धांत, आचार व तत्त्वों का निर्देश करता है, जो समस्त विश्व द्वारा ग्राह्य है।

(C) जैनधर्म में इष्टदेव ऐसे सर्वज्ञ तीर्थंकर हैं, जिनकी वीतरागता, सर्वज्ञता और सत्यवादिता आदि विशिष्ट गुण विश्व को मान्य हैं।

(D) जैनधर्म में समग्र विश्व के युक्तिसिद्ध और सद्भुत तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया हैं।

(E) जैनधर्म समग्र विश्व के जीवों को अपनी कक्षानुसार सत्य अवस्था से लेकर वीतरागता तक के धर्मों का प्रतिपादन करता है।

(F) जैनधर्म में अनेकान्तवादादि सिद्धांत तथा अहिंसा, सत्य, अचोर्य, अब्रह्मत्याग एवं अपरिग्रहादि आचार बताए गए हैं, जिनसे समग्र विश्व की दुःखद् समस्याओं का समाधान हो सकता है।

ऐसे जैनधर्म में परमात्मा बनने की सोल ऐजेन्सी किसी एक को नहीं दी गई हैं, परंतु यह तो विश्व के किसी भी जीव को यह अधिकार मिल सकता है। एकबार महात्मा गांधी के पुत्र देवीदास गांधीने लन्दन में समर्थ नाट्यकार और महान् चिंतक जोर्ज बर्नाड शॉ से प्रश्न किया - ''यदि परलोक का अस्तित्व हो तो आप अब यहाँ से दूसरा जन्म कहाँ लेने की इच्छा रखते है''?

उन्होंने उत्तर दिया - ''मैं जैन होना चाहता हूँ।'' देवीदासने पुनः पूछा - ''परलोक में विश्वास रखनेवाले हमारे यहाँ ३०,००,००,००० (तीस करोड) हिन्दु हैं। उन्हें छोड़कर आप बहुत छोटी कम्युनीटी में जन्म लेना क्यों चाहते हैं ? तब बर्नाड शॉ ने कहा - ''हिन्दु धर्म में ईश्वर-परमात्मा बनने का अधिकार (Sole Agency) किसी एक व्यक्ति को ही दिया गया है, परंतु जैनधर्म में विशिष्ट योग्यता से संपन्न कोई भी व्यक्ति आत्मा की उन्नति-उत्थान कर के परमात्मा बन सकता है। तो मैं इस पंक्ति में क्यों न खड़ा होऊँ ? दूसरा कारण यह हैं कि जैनधर्म में व्यवस्थित, क्रमिक व वैज्ञानिक उत्क्रांतिमार्ग बताया गया है, ऐसा अन्य धर्म में नहीं है... इसलिए ''जैनधर्म वह विश्वधर्म'' है।[१]

(१) जैनधर्म का परिचय

4

Mr. George Bernard Show, in the couse of his talks with shri Devidas Gandhi, son of Mahatma Gandhi expressed the view that Jaina Teaching were appealing to him much and that he wished to be reborn in a Jain family. Due to the inffuence of Jainism. he was always taking pure food free from meat diet and liquor. "If there is a rebirth, than I wish to be reborn in a jain family.

अगर पुनर्जन्म हो तो मैं जैन कुटुंब में जन्म लेना चाहता हुं। बर्नाड शॉ ने यह बात महात्मा गांधी के पुत्र देवीदास गांधी के साथ वार्तालाप में की थी।

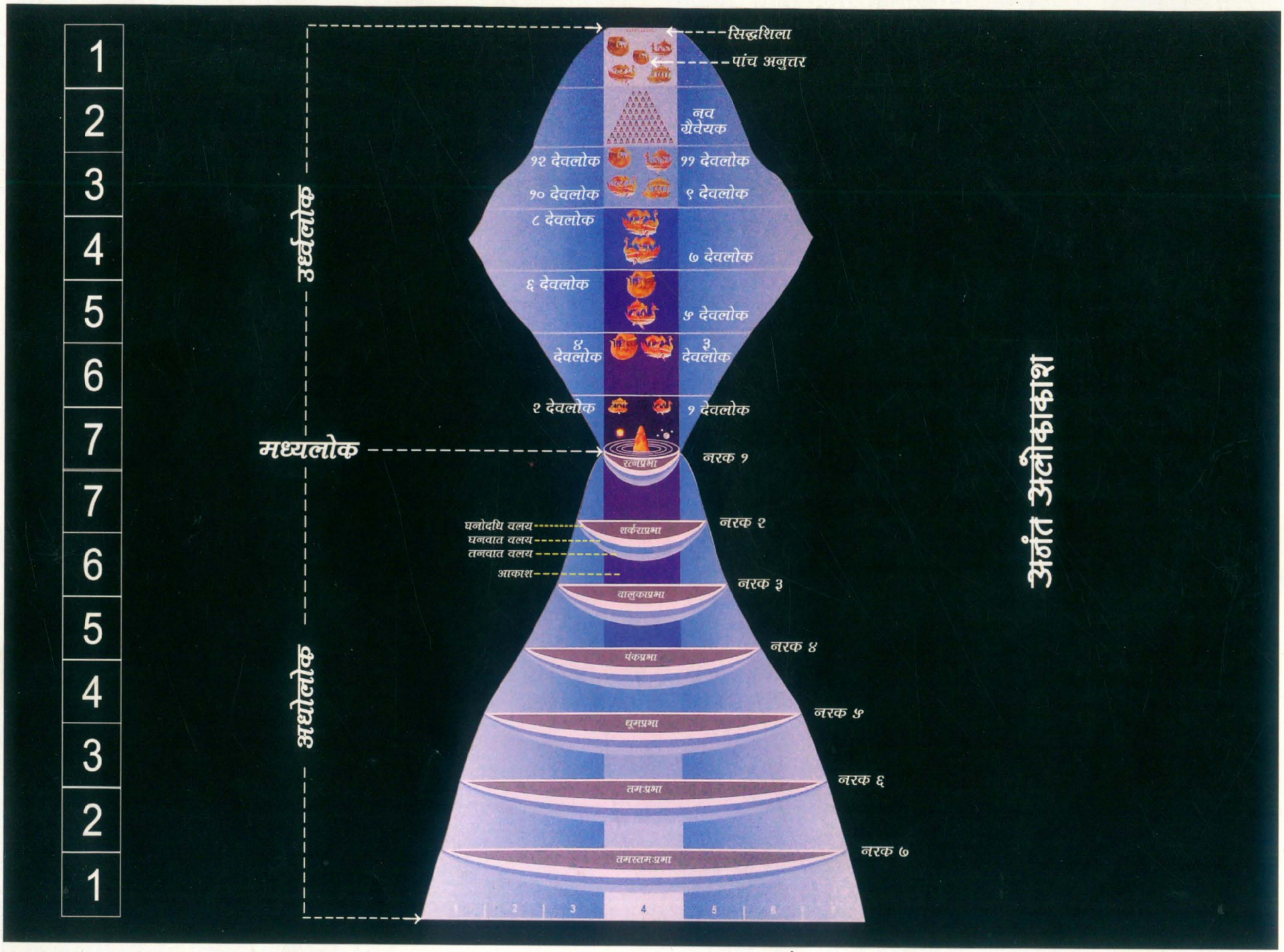

1
2
3
4
5
6
7
7
6
5
4
3
2
1
सिद्धशिला
पांच अनुत्तर
नव ग्रैवेयक
१२ देवलोक
११ देवलोक
१० देवलोक
९ देवलोक
८ देवलोक
७ देवलोक
६ देवलोक
५ देवलोक
४ देवलोक
३ देवलोक
२ देवलोक
१ देवलोक
उर्ध्वलोक
मध्यलोक
रत्नप्रभा
नरक १
घनोदधि वलय
घनवात वलय
तनवात वलय
आकाश
शर्कराप्रभा
नरक २
वालुकाप्रभा
नरक ३
पंकप्रभा
नरक ४
धूमप्रभा
नरक ५
तम:प्रभा
नरक ६
तमस्तम:प्रभा
नरक ७
अधोलोक
अनंत अलोकाकाश

१४ राजलोक रूप विश्व-व्यवस्था.....

अनंत अलोक के बीच में लोक स्थित है, यह नीचे से ऊपर १४ राजलोक प्रमाण है, तथा लम्बाई में ७ राज चौड़ा है। राज (रज्जु) एक प्रकार का क्षेत्र प्रमाण है। आगमों की भाषा में असंख्यात कोटा कोटी (क्रोड X क्रोड) योजन को एक राज (रज्जु) माना जाता है। एक उपमा द्वारा इसे इस प्रकार समझे... ३,८१,२७,९७० मण वजन का १ भार ऐसे १००० भार प्रमाण लोखंड के गोले को कोई देव उपर से नीचे फेंके तो उस गोले को पृथ्वी पर आते ६ मास - ६ दिन - ६ प्रहर - ६ घड़ी और ६ समय लगता हैं।

अथवा दूसरी रीत से-१ निमेष मात्र में कोई महर्द्धिक देव १,००,००० योजन प्रमाण क्षेत्र उल्लंघन करे तो वह देव उसी गति से ६ मास (महिने) तक जीतना क्षेत्र स्पर्श करे, वह १ राजलोक कहलाता है। ऐसे १४ राजलोक प्रमाण यह लोक होने से इस विश्व को १४ राजलोक भी कहते हैं।

यह समग्र विश्व १४ राजलोकमय हैं, जिसमें देव-नारक-मनुष्य और तिर्यंच तथा मोक्ष आदि संपूर्ण दुनिया आ जाती है।

इस १४ राजलोक के ३ विभाग पड़ते हैं। (१) ऊर्ध्वलोक (२) मध्यलोक (३) अधोलोक[१]

मेरुपर्वत की तलेटी से नीचे रहे हुए ८ रुचक प्रदेशों को समभूतला कहते है, और उसी के आधार से ऊँचाई और नीचाई आदि मापी जाती हैं।

समभूतला से ९०० योजन ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक कहते हैं। जिसमें देवों का निवास होता हैं, जहां अनुक्रम से सौधर्मादि १२ देवलोक तथा उसी के अंतर्गत ३ किल्बिषिक देव और ९ लोकांतिक देवों का वास है। उसके उपर ९ ग्रैवेयक और उसके भी ऊपर ५ अनुत्तरवासी देवों के विमान हैं। तथा सबसे ऊपर ४५ लाख योजन प्रमाण लंबी-चौड़ी और ८ योजन की ऊँचाईवाली सिद्धशिला है और लोकांत पर सिद्ध भगवंत बिराजमान हैं। इस तरह ऊर्ध्वलोक की लंबाई ७ राजलोक में थोड़ी कम (अल्प) प्रमाण हैं।

मध्य (तिर्च्छा) लोक वह समभूतला से ९००-९०० योजन उपर-नीचे का मिलाकर १८०० योजन का विस्तारवाला और तिर्च्छा असंख्य योजन तक फैला हुआ है। इस मध्यलोक में सबसे बीच में जंबूद्वीप (मेरुपर्वत) और उसके फिरते द्विगुण-द्विगुण विस्तारवाले लवणसमुद्रादि असंख्य द्वीप-समुद्र हैं[२], उसमें भी मात्र अढाईद्वीप में ही मनुष्यों का जन्म-मरण होता है और उसके बाहर तो मात्र तिर्यंचो (पशु-पक्षी) का ही वसवाट होता है। तथा ज्योतिषचक्र, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभकादि देवों का निवास भी इस मध्यलोक में ही हैं।

समभूतला से ९०० योजन नीचे ७ राजलोक से कुछ अधिक प्रमाणवाला अधोलोक हैं। वह ऊपर के भाग में १ राजलोक और नीचे ७ राजलोक प्रमाण चौड़ाइवाला है। इस अधोलोक में नीचे नीचे १ से ७ नरके आइ हुई हैं, तथा उसमें ही (नरको में) भवनपति वगेरे देव भी रहते हैं।

१४ राजलोक के बराबर मध्यभाग में त्रसनाडी आई हुई हैं, वह त्रसनाडी १ राज चौड़ी और १४ राज लंबी है। देव-मनुष्य-तिर्यंच और नारकी स्वरूप सर्व त्रस जीवों का निवास इस त्रसनाडी में ही हो सकता है, कारण कि - त्रसनाडी के बाहर तो केवल स्थावर जीवों का ही निवास होता है।

(१) (A) भगवती सूत्र/शतक-११/उद्देशा-१०/सूत्र-२, (B) स्थानांग (ठाणांग) सूत्र-३/उद्देशा-२/सूत्र-१६१ (C) बारस अणुवेक्खा, गाथा-३९

(२) (A) मूलाचार-१०७६ (B) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति संग्रहणी-१/१९ (C) हरिवंशपुराण-५/२, ६२६-६२७ ।

5

जिस तरह एक राज का मान कितना ? वह इस लेख में हमने जान लिया। यह बात एक सामान्य वाचक के गले न भी उतरे लेकिन वैज्ञानिकों का एक उदाहरण देता हुं जिससे शास्त्रोक्त सत्य की प्रतीति अपने आप हो जाएगी। वैज्ञानिकों ने इस विराट आकाश का अभ्यास किया, उसमें इन्होंने सूर्यमालाओं को देखा, अनेक सूर्य देखे। एक से दुसरी सूर्यमाला कितनी दुर है ? इसे विराट दुरबीनों से देखा। माप निकालकर गीनती करके कहाँ कि आकाश में लाखो सूर्यमालाएँ है। वे एक दुसरे से इतनी दुर है कि अगर वहाँ पहुँचना हो तो एक घंटे में १,००,००० (एक लाख) माइल के हिसाब से एक रॉकेट गति करे तो केवल एक सूर्यमाला से दुसरी सूर्यमाला के पास पहुँचने में ८७ करोड वर्ष लगते हैं।

- देखिये "रिडर्स डायजेस्ट - ग्रेप्वर्ड एटलस", अमेरिका

वैशाख संस्थान संस्थित १४ राजलोक

कर कमरे धरी नर खड़ा,
होवे पांव पसार ।
द्रव्य पूर्ण सब लोक का
जानो यह आकार ॥

दोनों हाथ कटि तट पर रखकर कोई पुरुष वैशाख संस्थान के समान[१] (पैर चौड़े कर के) खडा हो इसके समान यह लोक है। अथवा चिरकाल तक ऊर्ध्व दम लेने के कारण तथा वृद्धावस्था के कारण बहुत थक जाने से कोई पुरुष कमर पर दो हाथ रखकर खड़ा हो इस प्रकार का यह लोक होता है। अथवा अधोमुख में रहे एक बड़े शराव के पृष्ठ भाग पर एक छोटा शराव संपुट रखा हो - ऐसे आकार में यह लोक रहा हुआ है। यह लोक सदा शाश्वत हैं, न किसी ने धारन कर रखा है या न किसी ने बनाया हैं। यह स्वयं सिद्ध है और बिना आश्रय से और बिना आधार के आकाश में अद्धर रहता है।[२]

यह लोक उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप अर्थात् त्रिगुणात्मक है। इसके जो धर्मास्तिकायादि ६ द्रव्यों कहे हैं उनसे संपूर्ण भरा हुआ है तथा अपने उपर मस्तक पर सिद्धात्माओं के बिराजमान होने से हर्ष में आकर मानो नृत्य करने के लिए चरण फैलाकर खड़ा हो - इस तरह लगता हैं। इस प्रकार के स्वरूपवाले अखिल-संपूर्ण लोक (विश्व) के १४ विभाग कल्पे हुए हैं और इसका प्रत्येक विभाग एक ''रज्जु'' प्रमाण है। सर्वथा नीचे के लोकान्त से सातवें नरक के ऊपर तल पर्यन्त एक रज्जु होता है। इस तरह सातों नरक के एक के बाद एक उपर प्रत्येक तल तक गिनते, सब मिलाकर सात ''रज्जु'' होता है।

रत्नप्रभा नारकी के ऊपर के तल से पहले दो देवलोक के विमान आ जाते है, वहाँ तक आठवाँ ''रज्जु'' होता है और वहाँ से चौथे माहेन्द्र देवलोक का अन्त आए वहाँ तक नौवाँ ''रज्जु'' आता हैं तथा वहाँ से छट्ठे लांतक देवलोक के अंत तक दसवाँ ''रज्जु'' पूर्ण होता है। वहां से लेकर आठवें सहस्त्रार देवलोक की सीमा पूर्ण हो जाए वहां तक अग्यारहवाँ ''रज्जु'' हैं और वहां से बारहवें अच्चुत देवलोक की सीमा पूर्ण हो जाए वहाँ बारहवां रज्जु संपूर्ण होता हैं। इस तरह अनुक्रम से ग्रैवेयक के अन्तिम तक तेरहवाँ ''रज्जु'' और लोक के अंत में चौदहवाँ ''रज्जु'' पूर्ण होता है। इस प्रकार समग्र १४ राजलोक का स्वरूप प्रतित होता है। कहाँ जाता है कि मध्यलोक का आकार झल्लरी (खंजरी) के सम वर्तुलाकार, अधोलोक का आकार वेत्रासन (कुंभी) तथा ऊर्ध्वलोक का आकार मृदंग के समान (सदृश) है।[३]

यह अभिप्राय: ''आवश्यक निर्युक्ति'' ''चूर्णि'' और जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण विरचित ''संग्रहणी'' का हैं। ''योगशास्त्र'' के अभिप्राय: से तो समभूतल रुचक से सौधमेन्द्र तक १½ रज्जु होता हैं। माहेन्द्र अन्त तक २½ रज्जु, ब्रह्मदेवलोक के अंत तक ३ रज्जु, अच्युतान्त तक ५ रज्जु, गैवेयक तक के अंत तक ६ रज्जु और लोकान्त तक ७ रज्जु पूर्ण हो जाते हैं। यह अभिप्राय: ''लोकनालिका द्वात्रिंशिका'' ग्रंथानुसार भी हैं।

(१) (A) भगवती सूत्र/शतक-११/उद्देशा-१०/सूत्र-३ (B) द्वादश भावना-लोकस्वभाव भावना-५९, (C) आचारांग सूत्र, श्रुत.-१, अध्य.-२, उद्देशा-१ (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-३ (२) (A) भगवती सूत्र/शतक-९/उद्देशा-३३/सूत्र-३४/३५ (B) योगशास्त्र(चतुर्थ प्रकाश) गाथा-१०६ (३) (A) धवला, ४/१, ३ गाथा-६/११, (B) त्रिलोकसार गाथा-६, (C) जंबुद्दीवपण्णत्तिसंगहणी-४/४-९, (D) द्रव्यसंग्रह टीका- /३५/११२/११, (E) क्षेत्रलोकप्रकाश सर्ग-१२, श्लोक-४५ से ४७ (F) योगशास्त्र-चतुर्थ प्रकाश, गाथा-१०५.

It is only an assumption that the earth is round. some astronomers like copernicus had spread this theory only to explain some space phenomenon but this theory has never been proven scientifically. The astronomers who had faith in Copernicus had always said, "This can happen only if the earth is round."

१४ राजलोक तथा तीनों लोक के मध्यस्थान

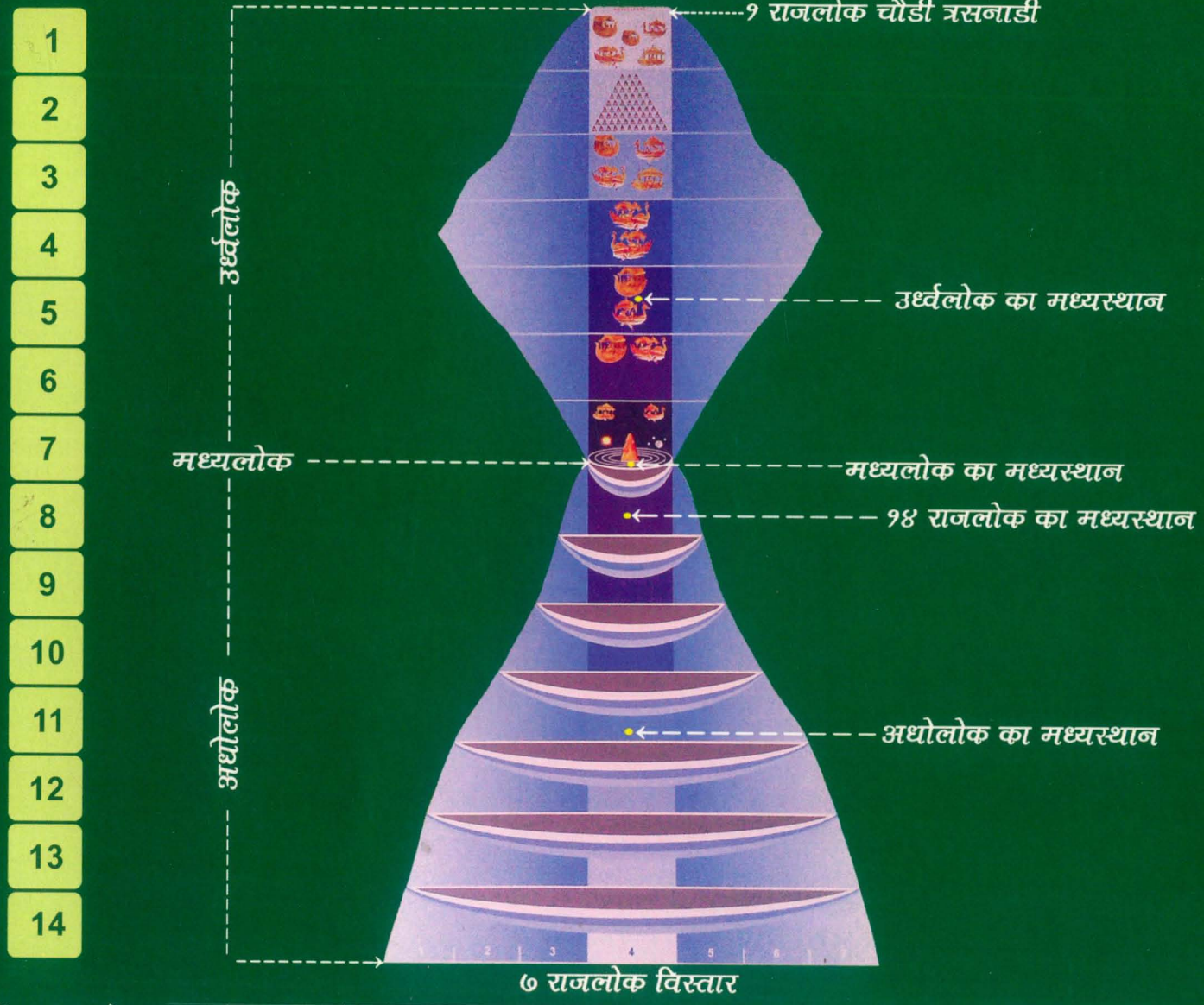

१४ राजलोक तथा तीन लोक के मध्यस्थान.....

१४ राजलोक (संपूर्ण विश्व) का मध्यस्थान = श्री "भगवती सूत्र" के आधार से समग्र १४ राजलोक का मध्यस्थान[१] रत्नप्रभा (घम्मा) पृथ्वी के नीचे अधोभाग में रहे हुए ऐसे घनोदधि-घनवात और तनवात को उल्लंघन कर असंख्य योजन जब नीचे जाते हैं तब इस १४ राजलोक का मध्यस्थान आता है। और उस मध्यस्थान से उपर ७ राजलोक और नीचे ७ राजलोक प्रमाण होता है। इस बात से यह एक बात तो निश्चित है कि अधोलोक सात रज्जु से अधिक है और ऊर्ध्वलोक वह सात रज्जु से न्यून है। कारण के लोक का मध्यभाग घम्मा पृथ्वी-घनोदधि-घनवात-तनवात और असंख्य योजन आकाश बीतने के स्थान पर है और वहाँ से ७ रज्जु प्रमाण अधोलोक नीचे रहा हुआ है। तथा अधोलोक की शरुआत रुचक प्रदेश से ९०० योजन के बाद से लेकर सातवीं नरक की पृथ्वी के अंत बाद घनोदधि-घनवात-तनवात और असंख्य आकाश के अंत तक अर्थात् नीचे लोकांत तक कहा हुआ हैं तब लोक के मध्यस्थान से रुचकप्रदेश तक आने के लिए असंख्य योजन प्रमाण आकाश-तनवात-घनवात और २०,००० योजन प्रमाण घनोदधि तथा प्रथम नरक का १,८०,००० योजन माप... अधोलोक के सातरज्जु प्रमाण में बढ़ाने से अधोलोक का माप सात रज्जु से अधिक प्राप्त होता है यह बात तो निःसंदेह है।

अधोलोक का मध्यस्थान = अधिक ऐसे ७ राजलोक प्रमाण अधोलोक का मध्यभाग (मध्यस्थान) चोथी पंकप्रभा पृथ्वी के घनोदधि-घनवात -तनवात को उल्लंघन करके असंख्यात योजन प्रमाण आकाश पूर्ण होने के बाद आता है।[२]

मध्यलोक का मध्यस्थान = मध्यलोक-तिर्च्छालोक का मध्यस्थान, वो अष्टरुचक वाले दो क्षुल्लकप्रतर है।[३]

ऊर्ध्वलोक का मध्यस्थान = ऊर्ध्वलोकवर्ती प्रथम के चार देवलोक को छोड़ पाँचवे ब्रह्म देवलोक के छः प्रतर में से तृतीय रिष्ट नामक प्रतर में जहाँ लोकान्तिक देवों के विमान हैं, वहाँ अर्थात् उस स्थान पर ऊर्ध्वलोक का मध्यबिंदु-मध्यभाग (Centre) आता हैं।[४]

मध्यलोक प्रमाण = मध्यलोक का प्रमाण १८०० योजन हैं। उसमें उपरितन क्षुल्लक प्रतर के ऊर्ध्वरुचक प्रदेश से ऊर्ध्व ९०० योजन समझना और अधोरुचक स्थान से अधोभाग में ९०० योजन समझना। इस उपलक्षण से सार निकला कि अष्टरुचक स्थान ही तिर्च्छालोक का मध्य हैं। इस तरह से यह मध्यलोक ऊर्ध्वाधो१८०० योजन प्रमाण झालर (घंट) की माफिक वर्तुलाकार में स्थित हैं।

ऊर्ध्वलोक प्रमाण = अष्टरुचक प्रदेश से ९०० योजन उपर तिरछे लोक को छोड़ने के बाद लोकान्त तक का भाग सब ऊर्ध्वलोक गिना जाता हैं। वह सात रज्जु से कुछ कम (न्यून) मृदंगाकार में हैं।

अधोलोक प्रमाण = अष्टरुचक प्रदेश से नीचे ९०० योजन छोड़कर अधोलोकान्त तक का भाग अधोलोक जानना। वह अधोमुखी कुंभी के आकार में हैं। इसलिए कहा गया हैं....

"वेत्रासनसमोऽधस्तान्, मध्यतो झल्लरीनिभः। अग्रे मुरजसंकाशो, लोकः स्यादेवमाकृतिः॥" (योगशास्त्र)

(१) भगवती सूत्र/शतक-१३/उद्देशा-४/सूत्र-६ (२) भगवती सूत्र/शतक-१३/उद्देशा-४/सूत्र- (३) (A) भगवती सूत्र/शतक-१३/उद्देशा-४/सूत्र-९ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-५४/५५ (४) (A) भगवती सूत्र/शतक-१३/उद्देशा-४/सूत्र-८ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-१९

7

आत्मनिरीक्षण का उपाय

आँखो पर बंधी पट्टी के कारण बैल चलता तो खूब है, मगर यह नहीं जान पाता कि मैं आगे नहीं बल्कि मात्र एक वर्तुल में ही घूम रहा हूँ। अतः खूब चलने पर भी जब वह पट्टी खुलने पर देखता है कि मैं स्वयं के चलने से आगे तो कही नहीं पहुँचा, परंतु जहाँ का तहाँ ही हूँ। वैसे ही जीवात्मा भी बैल के चलने के समान धार्मिक प्रवृत्तियाँ तो खूब करता है मगर अज्ञान एवं मोह की पट्टी बंधी हुई होने के कारण वह यह नहीं जान पाता कि मैं आगे नहीं, बल्कि एक वर्तुल में ही घूम रहा हुँ। इसलिए ऐसे सचित्र तत्त्वज्ञान के ग्रंथो का निर्माण किया जाता है जिसे पढ़कर आत्मार्थी जीवगण इस अज्ञान एवं मोह की पट्टियों को खोलकर स्वयं का आत्म-निरीक्षण कर सके।

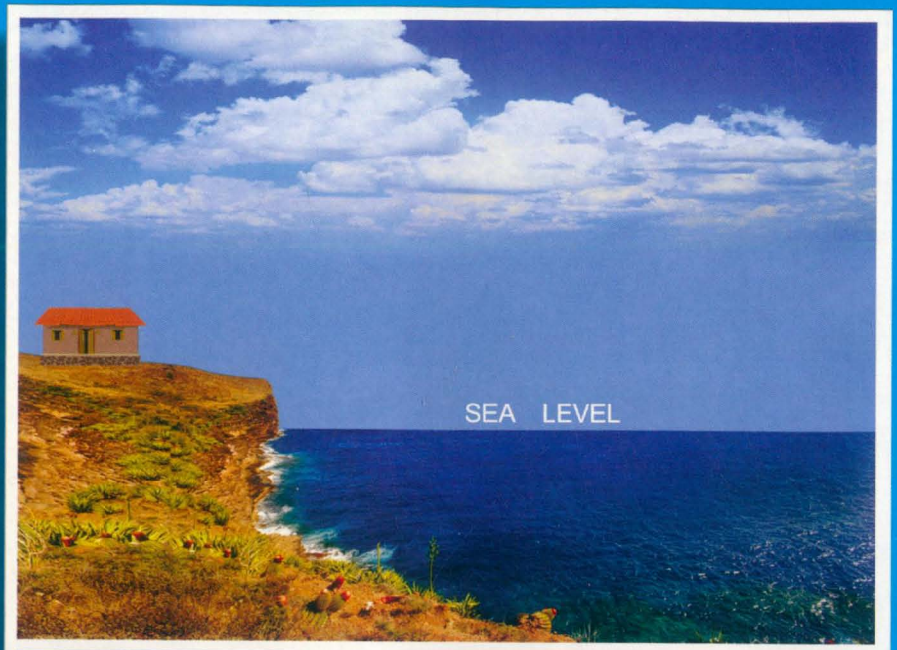

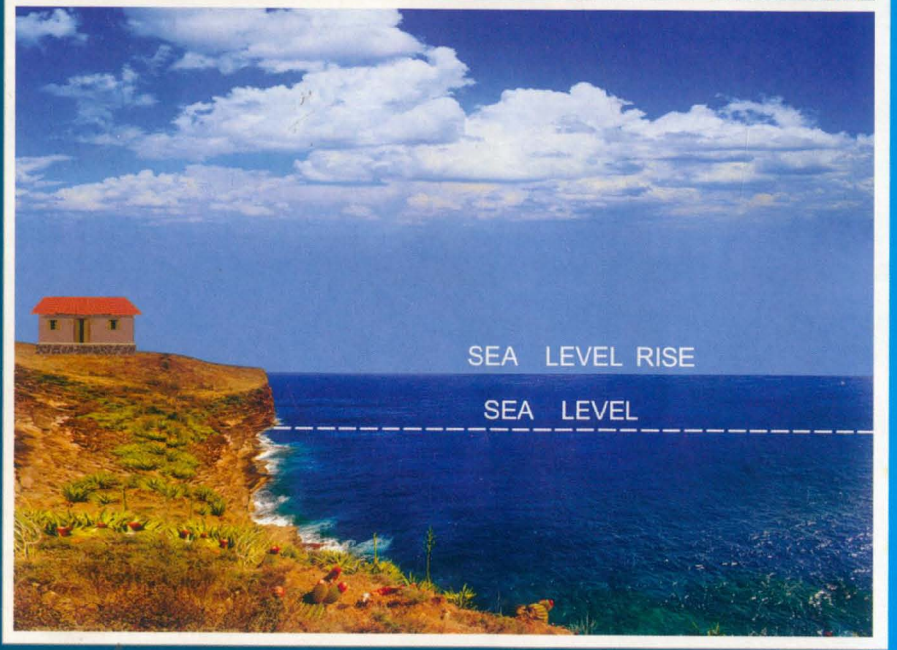

८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला...

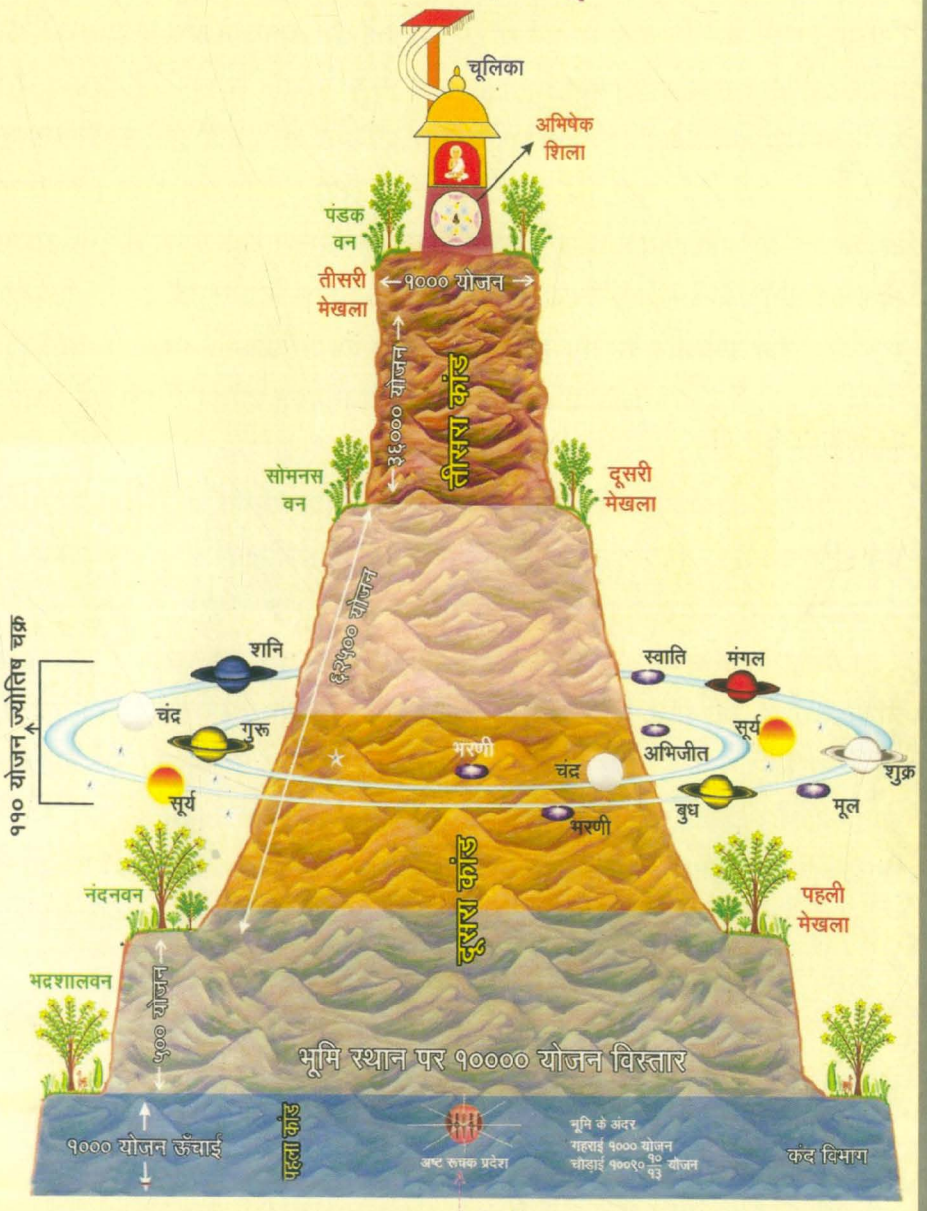

आठ रुचक प्रदेश.....

८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला.....

"**समभूतला**" अर्थात् क्या ? उत्तर - जिस तरह लौकिक व्यवहार में वैज्ञानिकों ने प्रायः बहुतसी (पृथ्वी-पर्वत-नदी आदि) वस्तुओं की ऊँचाई-नीचाई के माप के लिए समुद्र की सतह (Sea-लेवल) निश्चित की है, अर्थात् उसका "समभूतला-स्थान" काल्पनीक दृष्टि से दरियाई सतह रखा है, वैसे ही जैन सिद्धांतों में ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्च्छालोक में विद्यमान प्रायः शाश्वती जिस जिस वस्तु का जितनी जितनी ऊँचाई-नीचाई का प्रमाण दिखाया है वह सब सर्वज्ञोक्त वचनानुसार इस समभूतला की अपेक्षा से रखा गया है।

प्रश्न = यह समभूतला पृथ्वी कहाँ आई है ? रुचकप्रदेश कहाँ आये हैं ? समभूतला और रुचकप्रदेश वे दोनों एक ही स्थान स्थित है ? अथवा अन्य अन्य स्थान पर स्थित है ?

उत्तर = सर्वप्रथम तो एक बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि समभूतला और रुचकप्रदेश (स्थान) एक ही वस्तु हैं लेकिन अन्यान्य स्थानवाली वस्तुएँ नहीं है । अब समभूतला कहां आई है, यह देखते है । समभूतल-रुचकस्थान वह मेरु के १०,००० योजन परिधिवाले कन्दभाग के नीचे घम्मा-रत्नप्रभा पृथ्वी में आये हुए दो क्षुल्लकप्रतर हैं उनका मध्यभाग है। ये प्रतर चारों और से लोकान्त को स्पर्श कर रहे हैं। ये प्रतर १४ राजलोकवर्ती सर्व प्रतरों में लंबाई-चौड़ाई में क्षुल्लक अर्थात् छोटे होने से क्षुल्लक प्रतरों के रूप में परिचित हैं। इसलिए रुचकप्रस्तार ही प्रतरप्रस्तार हैं ऐसा भी कहा जाता है। ये दोनो प्रतर आमने सामने (ऊपर-नीचे) स्थित हैं। उनमें अधःस्थान से ऊपर माने हुए जो क्षुल्लक प्रतर आए, उसके उपर के भाग में चार रुचक प्रदेश हैं और उसके सन्मुख (ऊर्ध्व) के दूसरे क्षुल्लकप्रतर में (नीचे के भाग से सम्बद्ध) चार रुचकप्रदेश हैं। यह स्थान घम्मा पृथ्वी में गये हुए मेरु के कन्द के मध्य में समझना।[१] इन अष्टरुचक प्रदेशों को ज्ञानीपुरुष "**चौरसरुचक**" इस नाम से भी संबोधित करते हैं। ये प्रदेश गौस्तनाकार में होते हैं।

यह समभूतला-रुचकप्रदेश स्थान ही दिशा और विदिशा का प्रभव स्थान है तथा वही इस तिर्यग्लोक का मध्यस्थान हैं। अर्थात् रुचकस्थान, समभूतलस्थान और दिशाप्रभवस्थान इन तीनों का स्थान एक ही है ऐसा स्पष्ट रूप से कह सकते हैं। साथ ही साथ में मेरुपर्वत के वनखंडादि की ऊँचाई वगैरह तथा "**अधोग्राम**" की शरूआत भी इस रुचक से ही प्रारंभ होती है और वहाँ से ही १,००० योजन गहराई लेने की हैं । क्योंकि "**मंडल प्रकरण**" ग्रंथ में स्पष्ट बताया है कि "**समभूतलापेक्ष्या योजनसहस्त्रमधोग्रामाः ।**" इसी तरह यह समभूतला-रुचकप्रदेश के लिए **भगवती सूत्र, स्थानांग सूत्र, नन्दीसूत्र वृत्ति, नन्दी चूर्णी, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, तत्त्वार्थवृत्ति, आवश्यक सूत्र, विशेषावश्यक भाष्य, लोकप्रकाश, क्षेत्रसमास, संग्रहणी, जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रज्ञापणा (पण्णवणा), सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, मंडलप्रकरणादि** अनेक सूत्रों में (ग्रंथो में) बातें बताई गई हैं, तो जिज्ञासुओं को गुरुगम से जान लेना चाहिए - ग्रंथ गौरव के भय से इस विषय को यही समाप्त करते हैं।

(१) (A) भगवती सूत्र/शतक-१३/उद्देशा-४/सूत्र-९, (B) विशेषावश्यक भाष्य-शिष्यहिता टीका-गाथा २७०० की टीका (C) ठाणांग सूत्र-१० वाँ अध्ययन-सूत्र-७२० (D) क्षेत्रलोकप्रकाश/सर्ग-१२/गाथा-३९/५१... (२) राजवार्तिक-१/२०/१२/७६/१३

8

If the earth is round

The solar eclips that took place on 30th August, 1905 was fully visible in north-west Africa, the North sea, Greenland, Iceland, Siberia, North Asia and British America. How it is possible, that this solar eclipse was visible simultaneously in America and Asia?

If the Earth is round

How is it that the level of the water is the same though there is sea on both the sides of the surez canal ? In comparision with the coast the middle part must be 166 Feet high, but why is it not so ?

षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व)

षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व).....

हम जिस विश्व में रहते हैं, उसे जैनदर्शन की भाषा में 'लोक' कहा जाता है। लोक क्या है ? इसके उत्तर में जैनागमों के अंतर्गत आया हुआ उत्तराध्ययन सूत्र के २८/७ में कहा गया है कि - ''धम्मो अहम्मो आगास, कालो पुग्गल जंतवो। एस लोगोत्ति पन्नत्ते, जिणेहिं वरदंसिहि॥''[१] अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये सब जहाँ रहते हैं उसे लोक कहते हैं। ये सब धर्मादि असंख्य तथा अनंत प्रदेशो का समुह होने से इन्हें ''अस्तिकाय'' अर्थात् ''धर्मास्तिकाय'' आदि भी कहा जाता है।

(१) धर्मास्तिकाय : जो जीव और पुद्गलों को चलने में सहायता करता हैं, उसे ''धर्मास्तिकाय'' कहते हैं। गति की शक्ति तो द्रव्य में अपनी रहती हैं, परन्तु 'धर्म' द्रव्य उसे चलाने में सहायक होता है। जैसे मछली को चलने (तैरने) में जल। तथा जैसे रेल को दौडने में पटरी सहायक होती है वैसे ही जीव और पुद्गल को चलने (गति) में धर्मास्तिकाय सहायक बनता है। यह स्वयं अरूपी, अचेतन, निष्क्रिय है, फिर भी दूसरो की गति में सहायक बनता हैं। (आधुनिक विज्ञान की भाषा में इसे 'ईथर' (Ether) नाम से पहचान सकते हैं। विद्युत तरंगे व ध्वनि आदि के परमाणु 'ईथर' की सहायता से ही गति कर सकते हैं।)

(२) अधर्मास्तिकाय : इसका गुण है जीव और पुद्गल को ठहरने (स्थिरता) में सहायता करना। जैसे कि - थके हुए पथिक को वृक्ष की शीतल छाया ठहरने में सहायता करती है तथा गाडी को ठहरने में ''ब्रेक'' सहायक होता हैं, उसी तरह उक्त दोनों द्रव्य संपूर्ण लोक में व्याप्त हैं। जहाँ ये नहीं है, वहाँ किसी प्रकार की गति (Movement) नहीं हो सकती।

(३) आकाशास्तिकाय : जो द्रव्य जीव व पुद्गलादि द्रव्यों को स्थान या आश्रय देता है, उसे ''आकाश'' कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे ''स्पेस'' (Space) कह सकते हैं। आकाशद्रव्य संपूर्ण लोक में भी और लोक के बाहर भी है। किन्तु लोक के बाहर धर्म और अधर्म द्रव्य नहीं होने से वहां जीव और पुद्गल नहीं जा सकते। इसी कारण आकाश के दो भेद हो जाते हैं - (१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश। जहाँ पर धर्मास्तिकायादि का अस्तित्व है वहाँ तक लोकाकाश हैं जो १४ राजलोक प्रमाण है तथा इसके बाहर अनंत शून्य आकाश है वो अलोकाकाश हैं।

(४) काल : आगमों में कहा है कि - ''वत्तणा लक्खणो कालो'' - वर्तना अर्थात् जीव व पुद्गल के पर्याय परिवर्तन व परिणमन में जो निमित्त कारण बनता हैं, छोटा-बड़ा तथा दिनरातादि का जो कारण है, वह ''काल'' है। काल एक अनंत द्रव्य हैं। इसके दो भेद हैं (१) व्यवहार काल = जहाँ सूर्य और चन्द्र की गति होती है - उस गति से मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्षादि समय का ज्ञान होता है। (२) निश्चयकाल = जहाँ द्रव्य के वर्तनादि पर्याय रूप निश्चय काल जानना।

(५) पुद्गलास्तिकाय : जिसमें द्रव्यों का मिलना-बिछुड़ना, सड़ना-गलना, बढना-घटना, ५-वर्ण, ५-रस, ५-स्वाद, २-गंध तथा ८-स्पर्शादि गुण हैं, परंतु चेतना तत्त्व इसमें नहीं होता। उसे पुद्गल कहते हैं। संसार में यु देखने जाए तो जितने भी जड़ पदार्थो को हम देखते हैं या नहीं देख सकते ऐसे परमाणु आदि सर्व पुद्गल रूपी-अरूपी जड़ पदार्थ है।

(६) जीवास्तिकाय : जिसमें ज्ञान अथवा चेतना है उसे जीव कहते हैं। चेतना का अर्थ हैं - संवेदना, सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति। जीव को चेतना व आत्मा भी कहते हैं। जीव के अनेक भेद प्रभेद है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी संसारी जीव हैं। जो मुक्तात्मा (सिद्ध) है, वे भी जीव तो हैं, परंतु वे इन्द्रियादि से रहित होने से ''मुक्त'' या ''सिद्ध'' जीव कहलाते हैं।

यह छः द्रव्य जहाँ विद्यमान होते हैं उसे ''लोक'' (विश्व/ब्रह्मांड) कहा जाता है।

(१) (A) उत्तराध्ययन सूत्र/अध्ययन-२८/गाथा-७ और १०४१-५० (B) आवश्यकनिर्युक्ति, अध्य.-५

9

सत्य कहीं बाहर नहीं बल्कि तुम्हारे स्वयं के भीतर है। इसलिए सत्य की प्राप्ति बाहरी दुनिया में घूमने या बाहरी दुनिया से संबंधित साहित्य को पढ़ने, सुनने या समझने से नहीं बल्कि भीतरी दुनिया में घूमने या भीतरी दुनिया के घूमक्कडों के द्वारा निर्मित साहित्यों को पढने, सुनने, समझने और तदनुसार भ्रमण करने से हो सकती है। क्योंकि उन्होंने स्वयं के साहित्य में भीतरी दुनिया का ही स्वरूप और उस दुनिया में प्रवेश और भ्रमण की रीतियाँ बताई है।

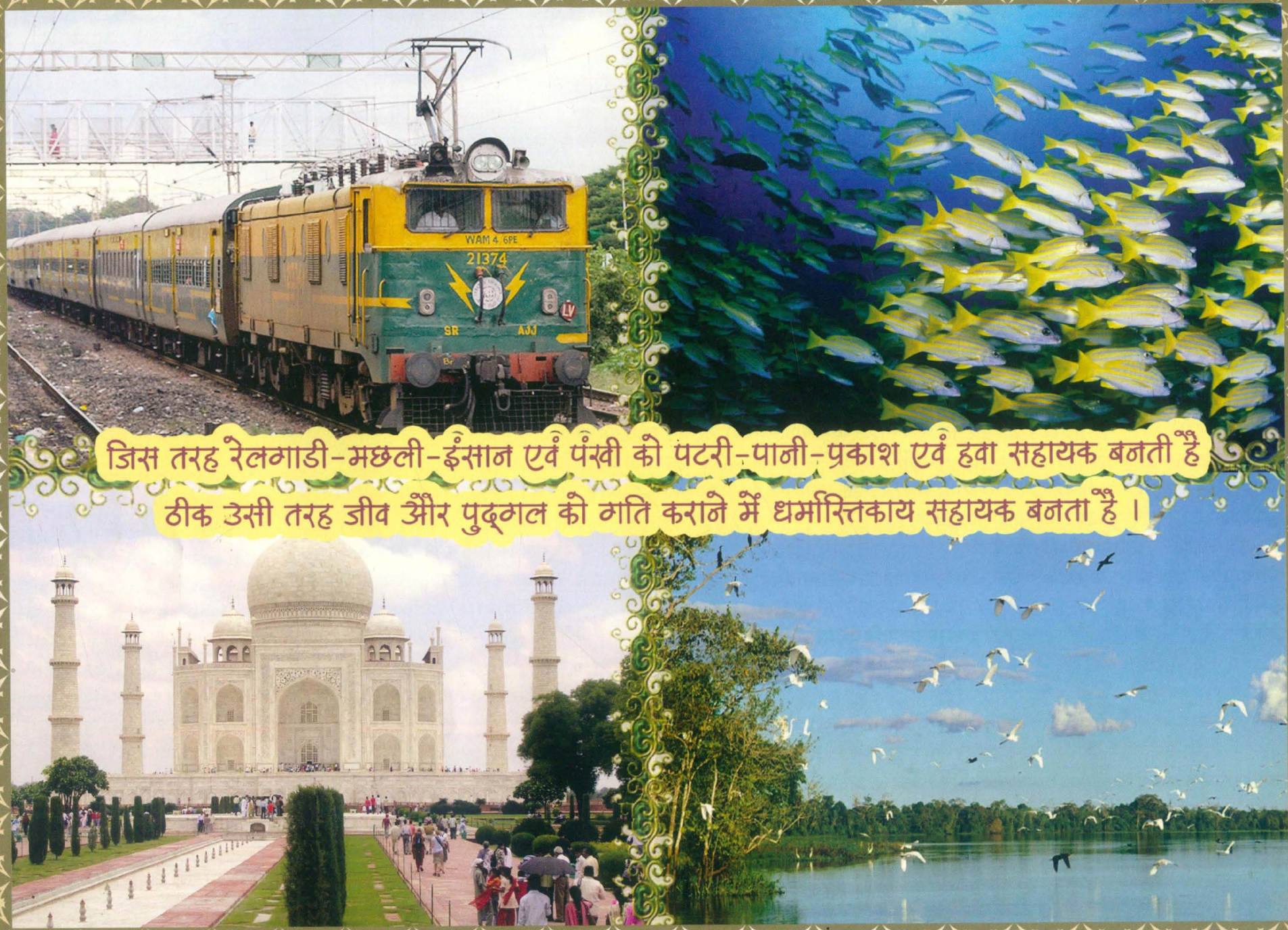

जिस तरह रेलगाडी-मछली-इंसान एवं पंखी को पटरी-पानी-प्रकाश एवं हवा सहायक बनती है
ठीक उसी तरह जीव और पुद्गल को गति कराने में धर्मास्तिकाय सहायक बनता है ।

धर्मास्तिकाय.....

धर्मास्तिकाय = यह धर्मास्तिकाय अरूपी है अर्थात् दिखता नहीं है परंतु १४ राजलोक में सर्वत्र व्याप्त है। जो की गति और स्थिति का कारण जीव और पुद्गल खुद ही है तो भी निमित्त कारण अपेक्षित हैं। अर्थात् उसमें धर्मास्तिकाय वह गति करने में सहायक स्वभाववाला होने से गतिशील और गतिपूर्वक स्थितिशील ऐसे ही जीव और पुद्गल पदार्थो में वह निमित्त हैं। मत्स्यादि को गति करने में तैरने में जैसे जल सहायरूप बनता है उसी तरह इस १४ राजलोक में स्वभाव से ही गति करते जीवो को और पुद्गलों को यह धर्मास्तिकाय सहायक बनता है। अर्थात् जैसे जल में तैरने की शक्ति मत्स्य की खुद की है, परंतु उसे तैरने कि क्रिया में उपकारी कारण जल हैं अथवा जैसे आंख में देखने की शक्ति रही हुई है फिर भी प्रकाश रूप सहकारी कारण बिना यह देख नहीं सकती। पंख के द्वारा स्वयं उड़ने की शक्ति तो पक्षीयों में विद्यमान हैं तो भी उन्हें जिस तरह हवा की अपेक्षा जरूर रहती है ठीक उसी तरह जीव और पुद्गलों में स्वयं गति करने का स्वभाव तो है ही फिर भी धर्मास्तिकाय द्रव्य के सहचार बिना वह गति नहीं कर सकते।

जीवों के गमनागमनरूप गति कार्य में सहायक धर्म धर्मास्तिकाय हैं उसी तरह पुद्गल में भाषा-उच्छ्वास-मन-वचन-काययोगादि वर्गणा के पुद्गलों की चलित क्रियाओं में वह वह पुद्गलों का ग्रहण तथा विसर्जन में यह धर्मास्तिकाय ही उपकारी है। अगर यह सहायक न होता तो भाषादिक पुद्गलों की गति के अभाव में जीवों का बोलना, चलना, के समझना इत्यादिक कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अत: संपूर्ण विश्व स्थगित और शून्य बन जाता।

यहाँ पर एक बात खास ध्यान रखें कि यह धर्मास्तिकाय द्रव्य कोई प्रेरक नहीं है अर्थात् अगतिमान एसे स्थिर रहे हुए जीवों तथा पुद्गलों को बलात्कार से गति कराने में सहायक बनता नहीं है, परंतु जब जीव और पुद्गलो को स्वयं गति करने की इच्छा हो तब यह द्रव्य मात्र सहायक बनता है। जो वह प्रेरक-धक्का मारनेवाला बन जाय तो तो जीव और पुद्गलों की हरहमेंश गति शुरु ही रहती परंतु ऐसा वास्तव में होता नहीं है।

इस धर्मास्तिकाय के तीन प्रकार हैं। (१) **स्कंध** (२) **देश** (३) **प्रदेश**...

(१) **स्कंध :** एक वस्तु का संपूर्ण भाग "स्कंध" शब्द से पहचाना जाता है। (उदा. बुंदी का संपूर्ण लड्डु)

(२) **देश :** स्कंध के समग्र भाग में से सहज न्यूनादिक भाग (टुकड़े) को "देश" कहते हैं। (उदा. खंडित लड्डु)

(३) **प्रदेश :** स्कंध के देश का निर्विभाज्य विभाग के जो एक परमाणु जितना ही सूक्ष्म होता है★ जिसके सर्वज्ञ पुरुष भी दो भाग कल्प ना शके ऐसे सूक्ष्म अणु जितने भाग को "प्रदेश" कहते हैं। (उदा. लड्डु में रही हुई एक कणी)

यह धर्मास्तिकाय द्रव्य (१) "द्रव्य" से (संख्या से) एक हैं। (२) "क्षेत्र" से लोकाकाश प्रमाण हैं। (३) "काल" से तीनों काल में रहनेवाला शाश्वत है। (४) "भाव" से वर्ण-गंध-रस-स्पर्श से रहित है और (५) "गुण" से जीव और पुद्गल को गति करने में सहायक स्वभाववाला होने से सहायक गुणवाला है। इस प्रकार से धर्मास्तिकाय की पांच प्रकार से प्ररूपणा हुई। यह धर्मास्तिकाय अलोक में नहीं होने से वहाँ जीव और पुद्गलों की गति नहीं हो सकती।

★ विज्ञान के साधन कोई भी काल में परमाणु को देख नहीं सकते... । परमाणु बोम्ब की जो बात आती है वह हकीकत में अनेक परमाणुओं के स्कंध अथवा अणुओं का जथ्था है... क्योंकि परमाणु तो ज्ञानी ही अपनी ज्ञानदृष्टि से देख सकते हैं।

(१) नवतत्त्व प्रकरण-१३ (आ. देवेन्द्रसूरिजी कृत-१३० गाथावाला)

विश्व के सर्वोच्चकक्षा के वैज्ञानिको की गणना में आये हुए आईन्स्टाईन खुद मानते थे कि यह विश्व गतिमान और अगतिमान रूप जो दो रूप से दिख रहा है, उसके पीछे कोई न कोई सूक्ष्म कारण काम कर रहा होगा। कोई अदृश्य शक्तियां इन दोनों पदार्थो को सहाय कर रही है। ऐसा तर्क (विचार) उनको हुआ था, और उसके संशोधन के लिए अथाग मेहनत भी की थी... परंतु वह (आईंस्टाईन) उनके (गतिमान-अगतिमान रूप तत्त्व) के पार को पा न सके। कारण के वह जिसकी शोध कर रहे थे वह दूसरा कुछ नही परंतु जैनदर्शन के विज्ञान अनुसार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय नामक तत्त्व ही थे...। जिसे वर्तमान विज्ञान "Ether" (ईथर) के नाम से पहचानता है।

अधर्मास्तिकाय.....
जिस तरह थका हुआ इन्सान वृक्ष की छाया को देखकर बैठ जाता है उसी तरह जीव और पुद्गल के स्थिर आदि कार्यों में यह अधर्मास्तिकाय तत्त्व कारण रूप है ।

अधर्मास्तिकाय.....

अधर्मास्तिकाय'' = अधर्मास्तिकाय वह धर्मास्तिकाय के जैसे ही १४ राजलोक में सर्वत्र व्याप्त है। अर्थात् गुफाओं में, समुद्र में, नदी में, पर्वत में... आदि सर्वत्र एक सूई की नोक जितना भाग भी ऐसा नहीं है की जहाँ अधर्मास्तिकाय का अस्तित्व न हो। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों द्रव्य अन्योन्य साहचर्य स्वभाववाले ही हैं, जैसे दोनों जुड़वा भाई हो, ऐसी कल्पना को करवा देते हैं। जहाँ जहाँ धर्मास्तिकाय हैं वहाँ वहाँ अधर्मास्तिकाय भी रहा हुआ ही है।

यह अधर्मास्तिकाय भी पाँच भेदों से प्ररूपित हैं - उसमें ''द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव'' रूप चारों की प्ररूपना तो धर्मास्तिकाय के जैसी ही समझ लेनी चाहिए। मात्र पांचवा जो प्रकार है उसमें जो भिन्नता है वह अब हम बतातें हैं ''गुण'' से वह इस प्रकार हैं... जिस तरह कोई मुसाफिर विश्राम के लिए वृक्ष की छाया तथा रेलगाड़ी को खड़ी रहने में जैसे रेल्वे स्टेशन सहायक बनता है, ठीक उसी तरह लोक में स्थिर रहने के लिए इच्छा करते ऐसे जीव तथा पुद्गलों को स्थिर रहने में अधर्मास्तिकाय सहायक बनता है[१]। गमन करते जीवों को खड़ा रहना हो, स्थिर होना हो, शयन करना हो इत्यादिक अवलंबनवाले कार्यों में तथा चित्त की स्थिरता★ आदि स्थिर परिणामी कार्यों में यह अधर्मास्तिकाय कारण रूप हैं।

धर्मास्तिकाय के जैसे ही अधर्मास्तिकाय नाम का पदार्थ भी जीव और पुद्गलों को कोई प्रेरणा करके-पकड़ के स्थिर नहीं करता, परंतु स्वतः स्थिर रहने की इच्छा वाले ऐसे जीवों तथा पुद्गलों को सहायभूत बनता हैं। अगर वह उनको प्रेरक रूप हो जाए तो जीव और पुद्गल हमेशा स्थिर ही रह जाते... तथा इस प्रकार दोनों प्रकार के द्रव्यों (गति कराने में तथा स्थिरता कराने में) प्रेरक रूप बने तो गति और स्थिति दोनों में सांकर्य-संघर्षभाव उत्पन्न हो जायेगा और उससे द्रव्य की सिद्धि असिद्ध हो जायेगी, जो कभी भी नहीं चल सकती। इसलिए दोनों द्रव्य प्रेरक नहीं परंतु सहायक गुणवाले है यह बात सिद्ध होती है। अलोक में अधर्मास्तिकाय द्रव्य नहीं हैं। इसलिए वहाँ जीव और पुद्गल द्रव्य की स्थिति भी नहीं है। जहाँ यह (अधर्मास्तिकाय) द्रव्य हैं वहाँ पर ही जीव और पुद्गलों का अस्तित्व हो सकता है और वह अस्तित्व तो इस १४ राजलोक में ही है। धर्मास्तिकाय के जैसे ही अधर्मास्तिकाय के भी स्कंध-देश-प्रदेश रूप तीन प्रकार हैं और यह असंख्य प्रदेशात्मक ही हैं।

★ यदि यह अधर्मास्तिकाय नामक पदार्थ जगत में न हो तो जीव - पुद्गलों की गति सदैव चालू ही रहे। किसी भी स्थान पर इनकी स्थिर अवस्था हो ही नही सकती। इसी प्रकार यदि धर्मास्तिकाय नामक पदार्थ जो न हो तो उनकी स्थिति हमेशा बनी रहे।

(१) नवतत्त्व प्रकरण-१४ (आ. देवेन्द्रसूरिजी कृत-१३० गाथावाला)

अनादि काल से दुनिया के समस्त आर्य व अनार्य धर्मों में पृथ्वी को सपाट माना गया है। आर्य धर्मों मे जैन, बौद्ध व वैदिक धर्मों में पृथ्वी के तश्तरी जैसी गोल व समतल होने के स्पष्ट पाठ उपलब्ध है। ईसाई धर्म की बाईबल व इस्लाम धर्म की कुरान में भी पृथ्वी को समतल माना गया है। पृथ्वी को तश्तरी जैसी गोल व सपाट मानने में कोई वैज्ञानिक अड़चने नहीं है। अपने स्व अनुभवों, निरीक्षणो व सदीयों के पारंपरिक ज्ञान के माध्यम से भी पृथ्वी को स्थिर व समतल सिद्ध किया जा सकता हैं। इसके विपरीत पृथ्वी को गोल व घूमती हुई मानने का एक भी प्रत्यक्ष प्रमाण आज तक वैज्ञानिक उपलब्ध नहीं करा सके है। वास्तविकता तो यह है कि इतिहास के किसी भी दौर में वैज्ञानिक यह सिद्ध नही कर सके है कि पृथ्वी गोल है व वह घूमती है। पृथ्वी गेंद (बोल) जैसी गोल है व घूमती है, यह विज्ञान की दृष्टि में भी केवल एक सिद्धांत है, हकीकत नहीं।

लोकाकाश

पृथ्वी, वृक्ष, मकान, झोंपड़ी एवं पवनचक्की
इत्यादि सर्व पदार्थ आकाश
में स्थान प्राप्त करते है।

जिस तरह दूध से भरे ग्लास में शक्कर समा जाती है।

आकाशास्तिकाय (लोकाकाश).....

आकाशास्तिकाय द्रव्य लोक और अलोक के भेद से दो प्रकार का है। जो कि आकाशद्रव्य लोकालोक में सर्वत्र व्याप्त होने से एक अखंड द्रव्य ही है, फिर भी लोक में रहे हुए धर्मास्तिकायादिक द्रव्यों के साथ रहा हुआ आकाशास्तिकाय को ''लोकाकाश'' और उसके सिवाय के आकाशास्तिकाय को ''अलोकाकाश'' कहते हैं।[1] तो चलिए मेरे प्रिय मित्रों ! सर्वप्रथम हम ''लोकाकाश'' का स्वरूप देखते हैं...

लोक में रहा हुआ आकाशद्रव्य असंख्य प्रदेश प्रमाण हैं और वह स्वप्रमाण धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय यह दो द्रव्यों से सदाकाल युक्त है। अर्थात् जिस तरह राजा दो प्रधान को धारण करके जगत् का रक्षण करता है ठीक उसी तरह यह दोनों द्रव्यों के साथ रहकर जगत् को उपकारक बन रहा हैं। कारण के, आकाश बिना अर्थात् खाली जगह बिना जीव और पुद्गल रह ही नहीं सकते इसलिए यह जरूरी द्रव्य हैं। इस लोकाकाश के स्कंध-देश-प्रदेशों का स्वरूप भी धर्मास्तिकाय के जैसे ही समझना।

यह आकाशास्तिकाय द्रव्य ''द्रव्य'' से एक ही है और सर्वत्र व्याप्त है। परंतु धर्मास्तिकायादिक की अपेक्षा से यह दो विभागों में विभक्त हैं (१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश। ''क्षेत्र'' से लोकालोक प्रमाण होने से अनन्त हैं। परंतु ''लोकाकाश'' की अपेक्षा से असंख्यप्रदेशात्मक ही है। ''काल'' से यह अनादि अनंत अर्थात् शाश्वत हैं और ''भाव'' से वर्ण-गंध-रस-स्पर्श से रहित है। तथा ''गुण'' से अवगाह-अवकाश देने के स्वभाववाला हैं। कारण के जिससे जीवों और पुद्गलों को स्थान मिला है।[2]

शक्कर को अवकाश देनेवाला जैसे दूध हैं और अग्नि को अवकाश देनेवाला जैसे तपा हुआ लोखंड़ का गोला है वैसे ही धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय इन चारों द्रव्यों को जगह देने में कारणभूत जो कोई भी द्रव्य हो तो वह आकाशास्तिकाय (लोकाकाश) है। एक आकाशप्रदेश जितने स्थान में परमाणु आदि एक द्रव्य रहते हैं तो उतने ही स्थान में अर्थात् एक आकाशप्रदेश जितने स्थान में (पुद्गल की तथाविध विचित्रता होने से) सेंकडों-हजारों-लाखों-संख्य-असंख्य-अनंत प्रदेशी स्कंधो का समुह भी रह सकता है, इसलिए आकाश में अवगाह (स्थान) देने की सिद्धि स्वतः हो जाती है। यहाँ पर एक समझने जैसी बात यह है कि जो आकाशप्रदेश में संख्यप्रदेशी-असंख्यप्रदेशी के अनंतप्रदेशी स्कंध रहे हुए हों वहीं पर दूसरे उसी प्रकार के संख्य, असंख्य के अनंतप्रदेशी स्कंध रूपी पुद्गल भी उसके उस प्रकार के जाती गुण स्वभाव से रह सकते हैं। अर्थात् पुद्गलों का उस प्रकार का विचित्र स्वभाव ही मुख्य कारण है। जिस तरह एक कमरे के स्थान में एक दीपक अपने प्रकाश को उस कमरे में व्याप्त करता है अब उसी कमरे में दूसरे प्रदीप्त ऐसे सैंकड़ो-हजारो दीपको अथवा इलेक्ट्रिक गोले (बल्प) रखने में आए तो भी वह सर्व दीपको का अथवा गोलों का प्रकाश पूर्व के प्रकाश में अंतर्गत हो जाता है, अर्थात् एक ही जगह (स्थान) में सर्व के प्रकाश को स्थान मिल सकता है ठीक उसी तरह... एक ही आकाशप्रदेश में संख्य-असंख्य अथवा अनंतप्रदेशी स्कंध भी रह सकते हैं।

(भगवती सूत्र, शतक/१४, उद्देशो/४)

★ एक प्याला दुध से लबालब भरा हो और उसमें ऊपर से शक्कर डाले तो भी दुध में शक्कर धुलने के बाद किसी प्रकार की कोई वधघट नहीं होती। यदि बढ़ जाए तो अवकाश दिया, ऐसा कहा नहीं जा सकता, किन्तु ऐसा तो होता ही नहीं। जब लोहे के गोले को लुहार भट्टी में तपाता हैं, अग्नि उसमें समाविष्ट रहती है। फिर भी गोला अग्निकाय के प्रवेश से भारी वजनवाला नहीं होता क्योंकि उसमें अन्य पदार्थ को अवकाश देने का स्वभाव होने से उसमें वह अन्तर्निहित हो जाती हैं।

(भगवती सूत्र, शतक/१३, उद्देशो/४)

(१) (A) सर्वार्थसिद्धि-५/१२/२७८ (B) राजवार्तिक-५/१२/१८/४५६/१० (C) नयचक्र-वृत्ति, ६८ (D) द्रव्यसंग्रह-मूल-१९/२ (E) बारस अणुवेक्खा-३९ (F) तिलोयपण्णति-४/१३४-१३५ (G) त्रिलोकसार-५ (H) पंचाध्यायी-उत्तरार्ध- २२ (I) राजवार्तिक-५/१२/१८/४५६/७ (J) धवला-४/१, ३, ९/१ (K) पंचास्तिकाय/त.प्र.-८७/१३८ (L) नयचक्रवृत्ति-९९

(२) (A) आलापपद्धति-२/१/१३४ (B) प्रवचनसार/त.प्र.-१३३ (C) धवला-१५/३३/७ (D) तत्त्वार्थ सूत्र-५/१८

12

आज के छात्र अपनी सामान्य व सहज समझ का उपयोग कर यदि सोचें तो उन्हे स्पष्ट हो जायेगा कि पृथ्वी यदि अपनी धुरी पर ११०० मील प्रति घंटे की गति से घूम रही हो तो पृथ्वी पर के मनुष्य, प्राणी, वाहन, वृक्ष, नदियाँ व समुद्रादि स्थिर नहीं रह सकते हैं। पृथ्वी यदि गोल-गोल घूम रही हो तो विमान को अमेरिका जाने की जरुरत नहीं है। बल्कि अमेरीका ही विमान के पास आ जायेगा।

न्युटन के गुरुत्वाकर्षण के उटपटांग नियमों को आधार बनाकर ये सब बाते जो मानी नहीं जा सकती है उन्हे स्कुलों के अध्ययन द्वारा दिमाग में ठुंस दिया गया है। अब जबकी आइन्सटाईन ने न्युटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांतों को ही गलत सिद्ध कर दिया है, तब ये सब विवेचनाएँ धोखा ही सिद्ध हुई है।

अलोकाकाश की अपेक्षा से लोकाकाश की कल्पना

आकाशास्तिकाय (अलोकाकाश).....

अलोकाकाश यह लोढ़े के पोले गोलाकार समान है और लोकाकाश से अनंत-गुण हैं। जो कि इस अलोक के पार को पाने में कोई भी समर्थ नहीं है फिर भी असत् कल्पना के द्वारा भगवती सूत्र, शतक-११ वाँ, उद्देश-१० वाँ, सूत्र-२० वाँ में जो घटना कही हैं उसे भी हम देख लेते हैं...

एक बार मेरुपर्वत के ऊपर दश दिशाओं के दस देव कौतुहल को लेकर खड़े हुए। उस समय में मानुषोत्तर पर्वत के शिखर पर रहकर आठ दिक्कुमारियाँ अपनी अपनी दिशा में बलिपिंडों को फैंकने लगीं। इधर दिक्कुमारियों ने इस तरह एक समय में बलिपिंडों को फैंका कि आठों बलिपिंडों को पृथ्वी पर पड़ने न देकर उन देवोंने एक ही गति द्वारा एक साथ ग्रहण कर लिया। उसी गति द्वारा जब वे देव अलोक के अन्त भाग को देखने की इच्छा को लेकर सभी साथ में दशों दिशाओं में चले जाते हैं ठिक उसी समय किसी एक मनुष्य को एक लाख वर्ष की आयुवाला एक पुत्र हुआ, और फिर उसी पुत्र को भी उतनी ही आयुष्यवाला (अर्थात् लाख वर्षवाला) एक पुत्र हुआ। उस पुत्र के पुत्र का भी इतने ही आयुष्यवाला एक पुत्र हुआ... इस तरह काल जाते जाते सात पीढ़ी की परम्परा हो गई। अनुक्रम से उनकी अस्थि, मज्जादि भी नष्ट हो गये, उनका नाम भी नष्ट हो गया... अब उस समय कोई यदि सर्वज्ञ परमात्मा से प्रश्न करे कि - हे भगवन्! इन देवोंने जितना क्षेत्र पार किया है वह अधिक है अथवा जो पार करना क्षेत्र अभी शेष बाकी है वो अधिक हैं? तब सर्वज्ञ भगवंत कहते हैं कि - जितना क्षेत्र पार किया है वह क्षेत्र तो बहुत अल्प हैं और जो बाकी हैं वह तो अनंतगुण बाकी है इस दृष्टांत से अलोक की विशालता कितनी अपार है वह ख्याल आ जाती है।[१]

अनंत विस्तारवाले इस अलोक का आकार पोले लोह के गोले समान हैं और वह अलोक लोक के चारों और रहा हुआ है। वो धर्मास्तिकायादि पांचों द्रव्यों से रहित है, मात्र वहाँ आकाश-पोलाण के सिवा दुसरा कुछ भी नहीं है। इसलिए "भगवतीसूत्र" में श्री गौतमस्वामीजी प्रश्न पूछते हैं - महाऋद्धिवाला महान शक्तिशाली कोई देव लोकान्त में खड़ा रहकर अलोक में हाथ अथवा पैर यावत् साधन आदि कोई भी अंग प्रसारने के लिए समर्थ हैं? उत्तर : हे गौतम! यह कार्य करने के लिए वह देव समर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि अलोक में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय द्रव्यों का अभाव होने से वहाँ देवों की (जीव-पुद्गलों की) कोई भी प्रकार से गति-स्थिति हो ही नहीं सकती, तो फिर मनुष्यादिक की तो बात ही क्या करनी ?... (भगवती सूत्र/शतक-१६/उद्देशा-८) जो आकाशास्तिकाय द्रव्य न होता तो अनंत जीव और अनंत परमाणु तथा उनके अनंत स्कंध विश्व-लोकाकाश में रह ही नहीं सकते...।

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-१४३ से १५५

लोक अलोक जैसी वस्तु है, उसकी प्रतीति कैसे हो ?

एक बात खास समझने जैसी है, कि यह विश्व में विद्यमान जो जो शब्द है, उन शब्दों का व्यवहार सापेक्ष ही होता है। इसका तात्पर्य क्या ? जैसे की - अहिंसा शब्द बोलने पर उसका प्रतिपक्षी हिंसा शब्द आ ही जाता है उसी तरह सत्य का असत्य, चेतन का जड आदि। तो "लोक" शब्द बोलने पर उसका प्रतिपक्षी शब्द "अलोक" उत्पन्न हो ही गया। दुसरा अर्थ यह है कि लोक के सिवाय अलोक नाम का द्रव्य (औपचारिक रूप से) है। यदि वास्तविक रूप में विचार करें तो ज्ञात होगा कि ये लोक या अलोक इस अनंत-अखंड़ आकाश में रही हुई वस्तुएँ है। इसी से आप एक विराट, अखंड़, अनंत आकाश की कल्पना करते हैं। इसी के बीच चौदह राजरूप लोक अवस्थित हैं। ऐसी कल्पना करें तो चारों और घूमते अलोक अवकाश खाली रिक्त भाग के बीच में खड़े रहे लोक का चित्र आँख के समक्ष कल्पित कर सकोगे। अलोक की महान अनंतता के सामने चौदह राजलोक समुद्र के सामने बिन्दु जैसा दिखाई देता है।

13

लगभग १००० वर्षो से यह विवाद चल रहा है कि पृथ्वी थाली जैसी गोल है या वह गेंद जैसी गोल है। जिस प्रकार ईसाई धर्म की बाईबल में पृथ्वी को सपाट बताया गया है, उसी प्रकार मुसलमानों की कुरान व हिन्दु की भागवत पुराण में पृथ्वी को समतल ही दर्शाया गया है। जो पृथ्वी को गेंद (बोल) जैसी गोल मानते है, वे आज भी कुछेक प्रश्नो के जवाब तर्क युक्त नहीं दे पाते है और इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि इस विषय के बारे में हमें अपना दिमाग खुला रखना चाहिए और किसी भी सिद्धांत या मान्यता पर अपनी आंखे बंद कर विश्वास नहीं करना चाहिए।

व्यवहार काल
बालक
युवा
वृद्ध
जन्म से मृत्यु की यात्रा

काल द्रव्य.....

काल के दो प्रकार होते हैं - (१) व्यवहारकाल (२) निश्चयकाल।

व्यवहारकाल का स्वरूप - केवलज्ञानी भगवंत के ज्ञान से जिसके दो विभाग न हो सके ऐसे काल के निर्विभाज्य अंश को "समय" कहते हैं। आँख की पलक झपने में असंख्य समय व्यतीत हो जाते है। अर्थात् समय इतना सूक्ष्म है। जीर्णवस्त्र, जो एक सैकंड़ से भी कम काल में चीरा जाता है, उसमें रहे हुए एक एक के क्रम से हजारों सूत के धागे इतने अल्पकाल में छेदे जाते हैं कि एक धागे के छेदन में सेकंड़ के हजारवें भाग से भी कम काल लगता है। फिर भी सैकंड़ के इस हजारवें भाग से भी कम काल में असंख्य समय लग जाते हैं, यह है समय की सूक्ष्मता। कम से कम ऐसे ९ समय के काल का एक जघन्य अंतर्मुहूर्त होता है। तथा ४८ मिनिट में १ समय कम कालमान का एक उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। अब चलीए नीचे दिए गए कोष्ठक से काल के अनेक भेदों का ज्ञान करते है।

१. काल का अविभाज्य अंश	= १ समय[१]	१३. ६ मास	= १ अयन (दक्षिणायन वा उत्तरायन)
२. असंख्य समय	= १ आवलिका	१४. २ अयन	= १ वर्ष (संवत्सर)
३. २५६ आवलिका	= १ क्षुल्लक भव	१५. ५ वर्ष	= १ युग
४. ४४४६ १/२ आवलिका	= १ श्वासोश्वास वा १७ १/२ क्षुल्लक भव[२]	१६. ८४,००,००० वर्ष	= १ पूर्वांग
५. ७ श्वासोश्वास	= १ स्तोक	१७. ८४,००,००० पूर्वांग	= १ पूर्व (७,०५,६०,००,००,००,००० वर्ष)
६. ७ स्तोक	= १ लव	१८. ८४,००,००० पूर्व	= भ. ऋषभदेव का आयुष्य[४]
७. ३८ १/२ लव	= १ घडी = २४ मिनट	१९. असंख्य वर्ष	= १ पल्योपम
८. ७७ लव = २ घडी	= १ मुहूर्त = ४८ मिनट[३]	२०. १० कोटाकोटि पल्योपम	= १ सागरोपम
९. ३० मुहूर्त	= १ अहोरात्र = २४ घन्टे	२१. १० कोटाकोटि सागरोपम	= १ उत्सर्पिणी वा १ अवसर्पिणी
१०. १५ अहोरात्र	= १ पक्ष	२२. २० कोटाकोटी सागरोपम	= १ कालचक्र
११. २ पक्ष	= १ मास (महिना)	२३. अनंत कालचक्र	= १ पुद्गलपरावर्तकाल इत्यादि
१२. २ मास (महिना)	= १ ऋतु		

काल के अनंत समय हैं। भूतकाल अनन्त समय प्रमाण है जो नष्ट हो चुका है, भविष्य काल भी अनंत समयात्मक है किन्तु वो अभी उत्पन्न नहीं हुआ है और उसमें वर्तमान एक समय डालो तो सर्व काल होता हैं।

व्यवहारकाल : ४५ लाख योजन के मनुष्य क्षेत्र में अर्थात् अढाईद्वीप में सूर्य-चंद्रादि ज्योतिषी विमान के भ्रमण में जो काल का प्रमाण निर्णित होता है उसे व्यवहारकाल कहते हैं।(जों उपर के कोष्ठक में बताया है... १ समयादि से लेकर...)

निश्चयकाल : द्रव्य के वर्तनादि पर्याय रूप जो नैश्चयिक काल वो वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व के रूप से पांच प्रकार का होता है।

यह कालद्रव्य व्यवहार काल की अपेक्षा से "द्रव्य" से अनंत हैं। "क्षेत्र" से अढाईद्वीप रूप मनुष्य क्षेत्र में है । "काल" से अनादि-अनंत और "भाव" से वर्णादि चतुष्क रहित है तथा अरूपि है।

सूर्यादिक की गति से ज्ञान होनेवाला और मुहूर्तादिक के द्वारा अनुमेय ऐसा यह (नैश्चयिक नय से) कालद्रव्य अस्तिकाय बिना का द्रव्य है। इसलिए लोक को "षडस्तिकायमय" नहीं परंतु "पंचास्तिकायमय" लोक ऐसे रुढ शब्दों का प्रयोग शास्त्रों में बहुत से स्थानों पर किया गया है।

(१) (A) ज्योतिष करंडक सूत्र (B) काललोकप्रकाश-३/१०४/१०५ (C) काललोकप्रकाश/सर्ग-२८/सूत्र-१९८ से २०० (२) हेमकोष ग्रंथ (३) (A) क्षुल्लक भवावलि-२१ (B) त्रैलोक्य दीपिका-२९७ (४) काललोकप्रकाश/सर्ग-२८

14

The Earth is static : Islam

The kuran, the Islamic scripture too states at several places that the earth is flat and static. The sun proceeds on a fixed path. "Sure Yamin-67" "The moon too proceeds on its definite path to the extent that it wanes to appear as a branch of the dry dates tree. Sure yamin-38. "The sun can not catch the moon" - It too can not come before the day. Everything proceeds on its fixed path - 39. only the god can keep the sky and the land stable so nothing tumbless down. Sura kaatir 49, Thus Islam too state that the earth is static.

पुद्गल द्रव्यों के १० भेद

शब्द

अंधकार

उद्योत

प्रभा

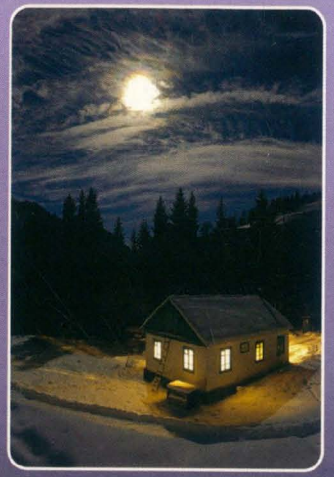

छाया

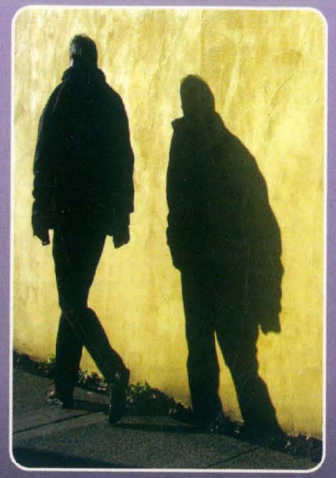

आतप

वर्ण

गंध

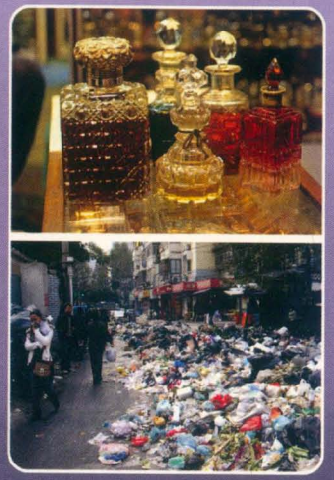

रस

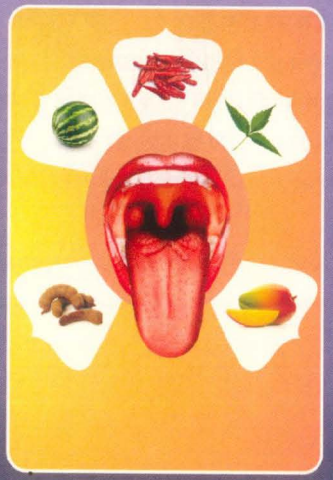

स्पर्श

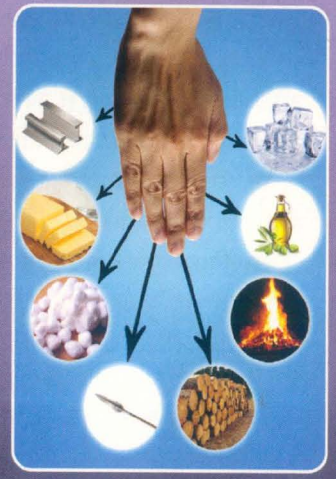

पुद्गल द्रव्य.....

प्रतिसमय "पुद्" = पुरण अर्थात् मिलना और "गल" = गलन अर्थात् बिखरना... ऐसे स्वभाववाले पदार्थ को "पुद्गल" कहा जाता है। क्योंकि हर हंमेश (समय) पुद्गलस्कंध नये नये परमाणुओं से पूरित होते है तथा प्रति समय वह पूर्वबद्ध परमाणुओं से बिखर भी जाते हैं। यह पुद्गल प्रदेश समूह रूप होने से इस द्रव्य को अस्तिकाय से सहित संबोधित किया जाता है। ऐसे देखा जाए तो पुद्गल वह वास्तविक रूप से परमाणु स्वरूप है, परंतु उसके विकार से संख्य-असंख्य और अनंत प्रदेशी स्कंध भी बनते ही है ! इसलिए स्कंध को वैभाविक धर्मवाला और परमाणु को स्वाभाविक धर्मवाला कहा गया है। यह उपरोक्त सभी प्रकार के भेदवाले प्राय: अनंत पुद्गल इस जगत् में सर्वत्र सर्वदा विद्यमान हैं।

यह पुद्गल-द्रव्य "द्रव्य" से परमाणु-द्विप्रदेशी स्कंधादि से लेकर अनंतप्रदेशी स्कंधो तक अनंत पुद्गल रूप जानना। "क्षेत्र" से १४ राजलोक प्रमाण। "काल" से अनादि-अनंत और "भाव" से वर्ण-गंध-रस-स्पर्श सहित रूपी द्रव्य... तथा "गुण" से पुरण-गलण के स्वभाववाला होने से विविध परिणामी तथा विविधाकृतिवाला है।

पुद्गल के १० लक्षण[१] : (१) शब्द = अर्थात् ध्वनि, आवाज या नाद इसके तीन भेद हैं। (१) सचित्त = जीव के मुख से निकले वह शब्द सचित्त हैं। (२) अचित्त=पाषाणादि दो पदार्थो के परस्पर टकराने से होनेवाली आवाज अचित्त हैं (३) मिश्र = जीव के प्रयत्न से बजनेवाली वीणा-बांसुरी आदि आवाज मिश्र हैं। (२) अंधकार = प्रकाश का अभाव अंधकार है, यह भी एक पौद्गलिक पदार्थ है जो देखने में बाधक बनता हैं। (३) उद्योत = शीतपदार्थ के शीत प्रकाश को उद्योत कहते हैं। चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-तारा तथा जूगनु आदि के शीतल प्रकाश को उद्योत कहते हैं। (४) प्रभा = सूर्य-चंद्र के प्रकाश से जो दूसरी किरण रहित अप्रकाश पड़ता है वह प्रभा हैं। यदि प्रभा न हो तो सूर्यादि की किरणों का प्रकाश जहाँ पड़ता हो, वहीं केवल प्रकाश रहता और उसके समीप के स्थान में ही अमावस्या का गाढ अंधकार व्याप्त रहता, परंतु उपप्रकाश रूप प्रभा के होने से ऐसा नहीं होता। (५) छाया = दर्पण, प्रकाश अथवा जल में पड़ने वाला प्रतिबिंब छाया कहलाती हैं। (६) आतप = शीत वस्तु का उष्ण प्रकाश आतप कहलाता हैं। इस कर्म का उदय उन्हीं जीवों को होता है जिनका शरीर स्वयं तो ठंड़ा है लेकिन उष्ण प्रकाश करते हैं। जैसे सूर्य का विमान एवं सूर्यकांतादि रत्न स्वयं शीत है परंतु उनका प्रकाश उष्ण होता है। आतप नामकर्म का उदय अग्निकाय के जीवों को नहीं होता बल्के सूर्यबिंब के बाहर पृथ्वीकायिक जीवों को ही होता है। (७) वर्ण =जिस कर्म के उदय से शरीर में कृष्णादि वर्ण (रंग) हो उसे 'वर्ण' कहते हैं, इसके ५ भेद हैं - (१) कृष्ण (काला) (२) नीला (३) पीला (४) लाल और (५) सफेद। (८) गंध = घ्राणेन्द्रिय (नाक) के विषय को गंध कहते हैं, इसके २ भेद हैं - (१) सुरभि (सुगंध) (२) दुरभि (दुर्गंध)। (९) रस = रसनेन्द्रिय के विषय को रस कहते हैं, इसके ५ भेद हैं (१) तीखा (२) कड़वा (३) कसैला (४) खट्टा और (५) मीठा। (१०) स्पर्श = स्पर्शेन्द्रिय का विषय हो वह स्पर्श कहलाता हैं। इसके ८ भेद हैं (१) कर्कश (कठोर) (२) कोमल (३) हलका (४) भारी (५) ठंड़ा (६) गर्म (७) रुखा और (८) चिकना...।

(१) सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छायातवेहिअ (इय)। वन्न-गंध-रसा-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥१॥ (नवतत्त्व प्रकरण ग्रंथ)

15

पुद्गलद्रव्य...

जिस तरह जैनदर्शन की मान्यतानुसार परमाणु १ समय में १४ राजलोक तक गति कर सकता है, उसी तरह विज्ञान की मान्यता अनुसार, (१) प्रत्येक इलेक्ट्रोन १ सेकंड़ मे १२०० माईल की गति करता है। (२) गैस के परमाणु १ सेकंड़ मे एक दूसरे के साथ ६ अबज बार टकराते हैं। (३) आईन्स्टाईन के समीकरण के हिसाब से ($E=mc^2$) प्रकाश की गति एक सेकंड़ में ३० अबज सेन्टीमीटर की कही है। E अर्थात् शक्ति, M अर्थात् पदार्थ का समूह और C अर्थात् प्रकाश जितने सेन्टीमीटर में प्रवास करे उसका प्रमाण और वह शक्ति ज्यादा से ज्यादा ३० अबज सेन्टीमीटर को ३० अबज से गुनने पर जो आता है उतना प्रवास कर सकता है। (४) हीरे जैसे ठोस पदार्थो के अणुओं की भी गति हर घंटे मे ९५०माईल की है...इत्यादि... विज्ञान इसी तरह जो सत्यान्वेषी रहेगा तो जरुर ऐसा लगता है कि एक दिन सर्वज्ञ कथित तत्त्वज्ञान से मिल जाएगा।

जीवद्रव्य
देवगति
मनुष्यगति
तिर्यंचगति
नरकगति

''जीवन्ति प्राणान्धारयन्ति इति जीवाः'' अर्थात् इन्द्रियादि १० बाह्य-प्राणों को तथा वास्तविक दृष्टि से सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यादि रूप भाव प्राणों को जो धारण करता है उसे जीव कहते हैं। अथवा चेतना या उपयोग लक्षणवालों को भी जीव कहा जाता है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य और उपयोग जीवों के लक्षण है। आगमों में भी कहा गया हैं... (१) ''उपयोगो लक्षणम्'' - तत्त्वार्थ सूत्र, अध्य.-२, सूत्र-८.[१] (२) ''जीवो उवओग लक्खणो'' - उत्तराध्ययन सूत्र, अध्य.-२८, गाथा-१६[२], (३) ''उवओग लक्खणे जीवे'' - भगवती सूत्र, शतक-२, उद्देशा-१०[३]।

जीव का लक्षण उपयोग है। जीव की चेतना परिणति को उपयोग कहा जाता है। उपयोग का अर्थ है ज्ञान और दर्शन। ज्ञान का अर्थ है जानने की शक्ति, दर्शन का अर्थ है देखने की शक्ति। ऐसे तो उपयोग के भेद करते हुए जैनागमों में साकारोपयोग (ज्ञान) और निराकारोपयोग (दर्शन) दो प्रकार बताए हैं। इसलिए जिसमें ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग पाया जाता हैं वह जीव है। जीव को चैतन्य इसलिए कहते हैं कि उसमें सुख-दुःख और अनुकूलता-प्रतिकूलतादि की अनुभूति करने की क्षमता हैं। उसमें ज्ञान होने से वह अपने हिताहित का बोध कर सकता है। पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया के योग, आयु और श्वासोश्वास रूप १० प्राणों का धारक होने से जीव को प्राणी भी कहते हैं।

जीव स्वयं अरूपी हैं लेकिन वह संसारी अवस्था में पुद्गल से बने शरीर में रहता है, एवं शरीर के आकार को धारण करता हैं। यद्यपि स्वभाव से सर्व जीव एक समान होने से उसके भेद नहीं हो सकते फिर भी कर्म के उदय से प्राप्त शरीर की अपेक्षा से जीव के २-३-४-५-६-१०-१४ इत्यादि और विस्तृत रूप से यावत् ५६३ भेद भी हो सकते हैं। बिना प्राण के प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। भाव प्राण जीव के ज्ञानादि स्वरूप है जो सिद्धात्माओं में पूर्णतया प्रगट हैं तथा संसारी जीव को जीने के लिए द्रव्य प्राणों और पर्याप्तियों की अपेक्षा रहती है।

यह जीवद्रव्य ''द्रव्य'' से अनंत की संख्या में हैं। ''क्षेत्र'' से १४ राजलोक में उत्पत्तिवाला हैं। ''काल'' से अनादि-अनंत हैं और ''भाव'' से अरूपी होने से वर्ण-गंधादिक रहित हैं और अंत में ''गुण'' से ज्ञान-दर्शनादिक गुणयुक्त होता हैं तथा स्व-स्व शरीर तुल्य विविधाकृतिवाला होता हैं।

विभिन्न दृष्टि से जीव के प्रकार : (१) जीव का एक प्रकार - चेतना की अपेक्षा से...
(२) जीव के दो प्रकार - संसारी और मुक्त अथवा त्रस और स्थावर की अपेक्षा से...
(३) जीव के तीन प्रकार - पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद की अपेक्षा से...
(४) जीव के चार प्रकार - देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, और नरकगति की अपेक्षा से...
(५) जीव के पाँच प्रकार - एकेन्द्रिय, बेईन्द्रिय, तेईन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से...
(६) जीव के छः प्रकार - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की अपेक्षा से वगेरे[४].....।

(१) तत्त्वार्थ सूत्र, अध्ययन-२, सूत्र-८, (२) उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन-२८, गाथा-१६ (३) भगवती सूत्र, शतक-२, उद्देशा-१० (४) (A) गोम्मटसार-जीवकाण्ड, मूल व जीवतत्त्वप्रदीपिका-७५/७७, १३२ (B) धवला २/१, १/५९१

16

एक औंस पानी के स्कंध (परमाणु नहीं) खाली करने हो तो प्रो. अन्ड्रेड के अनुमान से ३ अबज व्यक्ति निरंतर रात-दिन प्रति मिनट ३०० स्कंध निकालते ही रहे तो ४० लाख वर्षो तक की समयावधि हो जाए तब पूर्णतः खाली हो...

If every man, woman and child in the world were turned to counting than and counted fast, say five a second, day and night. It would take about 4 million (40,00,000) years to complete the job.

The mechanism of nature by E.N. Dsc. Ancrade. D.Sc., Ph.D., P. 37.

उपरोक बात से एक बात अत्यंत स्पष्ट होती है कि सर्वज्ञ प्रणीत वाणी कितनी सूक्ष्म हैं, क्योंकि इन्ही सर्वज्ञ तीर्थंकरो ने पानी के १-१ बूंद में असंख्य जीव कहे है।

षड्द्रव्यों के २३ द्वार.......
धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय
आकाशास्तिकाय
दिन
रात
काल
पुद्‌गलास्तिकाय
देवगति
मनुष्यगति
जीवास्तिकाय
तिर्यंचगति
नरकगति

षड्द्रव्यों की विशद समझ के लिए यहाँ परिणामी वगैरह २३ द्वारों से उपर्युक्त विचारणा की जा रही है।(१) परिणामी = जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य परिणामी है। अर्थात् परिवर्तनशील है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था पाने वाले होते हैं। जैसे सोना कलशावस्था त्यागकर मुगुटावस्था को एवं जीव पशुपने को छोड़कर मनुष्यपने को तथा संसारी अवस्था को त्यागकर मुक्तावस्था को पाता हैं।(२) अपरिणामी = धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये चार द्रव्य अपरिणामी हैं। अर्थात् अपरिवर्तनशील हैं।(३) जीव = जिसमें चेतना हो वह जीवद्रव्य हैं।(४) अजीव = जो चेतना से रहित हो, अर्थात् जीव बिना के धर्मास्तिकायादि पांचों द्रव्य.....।(५) मूर्त = रूपी द्रव्य एक मात्र पुद्गलास्तिकाय है।(६) अमूर्त = पुद्गल के बिना अन्य पाँचों द्रव्य अरूपी हैं।(७) सप्रदेशी = प्रदेशों से युक्त जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय पांच द्रव्य हैं। जीवास्तिकायादि तीन और एक लोकाकाश प्रत्येक के असंख्य प्रदेश हैं। अलोकाकाश के अनंतप्रदेश हैं। पुद्गलास्तिकाय के संख्य, असंख्य और अनंतप्रदेश है।(८) अप्रदेशी = प्रदेश रहित एक मात्र कालद्रव्य हैं।[१] (९) एक = जो मात्र एक की संख्या में हो ऐसे द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ये तीन हैं।(१०) अनेक = जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल तीन द्रव्य अनेक हैं। ये प्रत्येक द्रव्य अनंत की संख्या में हैं।(११) क्षेत्र = आकाशास्तिकाय एक क्षेत्र द्रव्य है जिसमें शेष द्रव्य रहे हुए है।(१२) क्षेत्री = जो आकाश क्षेत्र में रहनेवाले हैं ऐसे धर्मास्तिकायादि ५ क्षेत्री द्रव्य है।

(१३) सक्रिय = गमनादि क्रिया करनेवाले जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये दो द्रव्य हैं।(१४) अक्रिय = गमनादि क्रिया से रहित धर्म/अधर्म/आकाश और काल ये चार द्रव्य हैं।(१५) नित्य = सदा काल एक ही अवस्था में स्थिर धर्म / अधर्म / आकाश और काल ये ४ द्रव्य हैं।(१६) अनित्य = यद्यपि द्रव्यरूप से सभी द्रव्य नित्य हैं तथापि जीव और पुद्गल द्रव्य भिन्न भिन्न अवस्थाओं को पाते हैं इसलिए ये दो द्रव्य अनित्य हैं।(१७) कारण = जो द्रव्य अन्य द्रव्य के गति आदि कार्य में निमित्त कारण रूप बने एसे धर्म / अधर्म / आकाश / पुद्गल और काल ये पांच कारण द्रव्य हैं।(१८) अकारण = धर्मास्तिकायादि द्रव्यों के प्रति निमित्त कारण न होने वाला जीवद्रव्य अकारण हैं।(१९) कर्ता = क्रिया के प्रति स्वतंत्र अधिकारी एक मात्र जीव द्रव्य ही हैं।(२०) अकर्ता = जीव द्रव्य के बिना धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य क्रिया के प्रति स्वामी न होने से अकर्ता द्रव्य हैं।(२१) सर्वगत = सर्वव्यापी-लोक और अलोक में सर्वत्र आकाशद्रव्य रहा हुआ हैं।(२२) असर्वगत = आकाश के बिना धर्मादि पांच द्रव्य लोकाकाश में ही होने से असर्वगत हैं।(२३) अप्रवेशी = यद्यपि सर्व द्रव्य एक ही स्थान में एक दूसरे में परस्पर प्रवेश करके ही रहते हैं, तथापि कोई भी द्रव्य सर्वथा अन्य द्रव्य रूप से परिणत नहीं होता हैं। अत: एव सर्व द्रव्य अप्रवेशी है, एक दूसरे में प्रवेश नहीं पाते हैं अर्थात् अपने मूल स्वरूप का कभी त्याग नहीं करते हैं।

इस तरह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल तथा जीवास्तिकाय रूप षड्द्रव्यों का २३ द्वारों से स्वरूप कथन हुआ★।

(१) (A) द्रव्यसंग्रह, मूल-२५, (B) परमात्मप्रकाश, मूल-२/२४, (C) गोम्मटसार-जीवकाण्ड मूल-६२०/१०७४ (D) नियमसार-मूल, ३६

★ परिणामी जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिया य। निच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥१४॥(नवतत्त्व प्रकरण)

17

आर्यदेश का प्रभाव

इस आर्यदेश में मंदिरों की ईंटे भी इतनी प्रभावशाली थी कि जिसे पानी में डालने के बाद यंत्र बिगर भी वह तैर सकती थी... इस बात के पुरावे रूप... थोड़े वर्षो पूर्व नालंदा के खोदकाम दरम्यान मंदिरो के खंड़ेर मिल आए थे और इस मंदिरो की ईंटो को जब पानी में डालने में आया तब वह सभी ईंटे पानी मे तैर रही थी... जिसे देखकर आज के कहलाते वैज्ञानिक वर्ग हाथ को सिर पर रखकर खुजलाने लग गये थे !!!

।। लोक स्वरूप चिन्तन से मानसिक शान्ति...।।

एवं लोको भाव्यमानो विविक्त्या, विज्ञानां स्यान्मानसस्थैर्यहेतुः ।
स्थैर्यं प्राप्ते मानसे चात्मना-सुप्राप्यैवाऽऽध्यात्मसौख्य-प्रसूतिः ।।

विवेचन : इस प्रकार विवेकपूर्वक लोक के स्वरूप का चिन्तन करने से मानसिक स्थिरता प्राप्त होती हैं। मन की चंचलता एक बहुत बड़ा दुर्गुण हैं। आत्मचिन्तन के बिना उसका निराकरण संभव नहीं है। इस विस्तृत लोक स्वरूप का चिन्तन हमारे मन की स्थिरता में सहायक बनता हैं। विस्तृत लोक स्वरूप के चिन्तन से हमें यह पता चलता है कि हमारी आत्मा इस विशाल लोक में किस प्रकार भटक रही हैं। कभी वह मनुष्य के रूप में रही है तो कभी वह पशु के चेतना के रूप में..। कभी अपनी आत्मा ने देवत्व प्राप्त किया तो कभी वह नारक भी बनी हैं। इस प्रकार एक नट की भांति भ्रमण कर रही अपनी आत्मा ने अनेक रूप किए हैं।

अपनी आत्मा के भवभ्रमण के चिंतन से हमें इस संसार के प्रति निर्वेद पैदा हो सकता हैं। कैसा यह भीषण संसार हैं ? जहाँ जन्म-मरण की भयंकर केद में हमारी आत्मा नाना प्रकार की आपत्तियों का ग्रास बनती जा रही हैं । यह संसार वास्तव में दुःख रूप, दुःख-फलक और दुःखानुबंधक ही हैं। यहाँ का क्षणिक सुख भी भावि भयंकर दुःख का ही कारण बनता हैं। अपनी आत्मा का भूतकाल भयंकर दुःखों में ही व्यतित हुआ हैं, इस संसार में मधुबिन्दु तुल्य कहीं क्षणिक सुख है तो उस सुख के पीछे पुनः दुःख का ही पहाड़ खड़ा हुआ दिखाई देता हैं। इस प्रकार लोक स्वरूप के चिन्तन से मन की स्थिरता प्राप्त होती हैं और मन की स्थिरता एक बार प्राप्त हो जाये तो उससे ही आत्महितकर आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति सुलभ हो जाती हैं।

द्वार-२

मध्यलोक

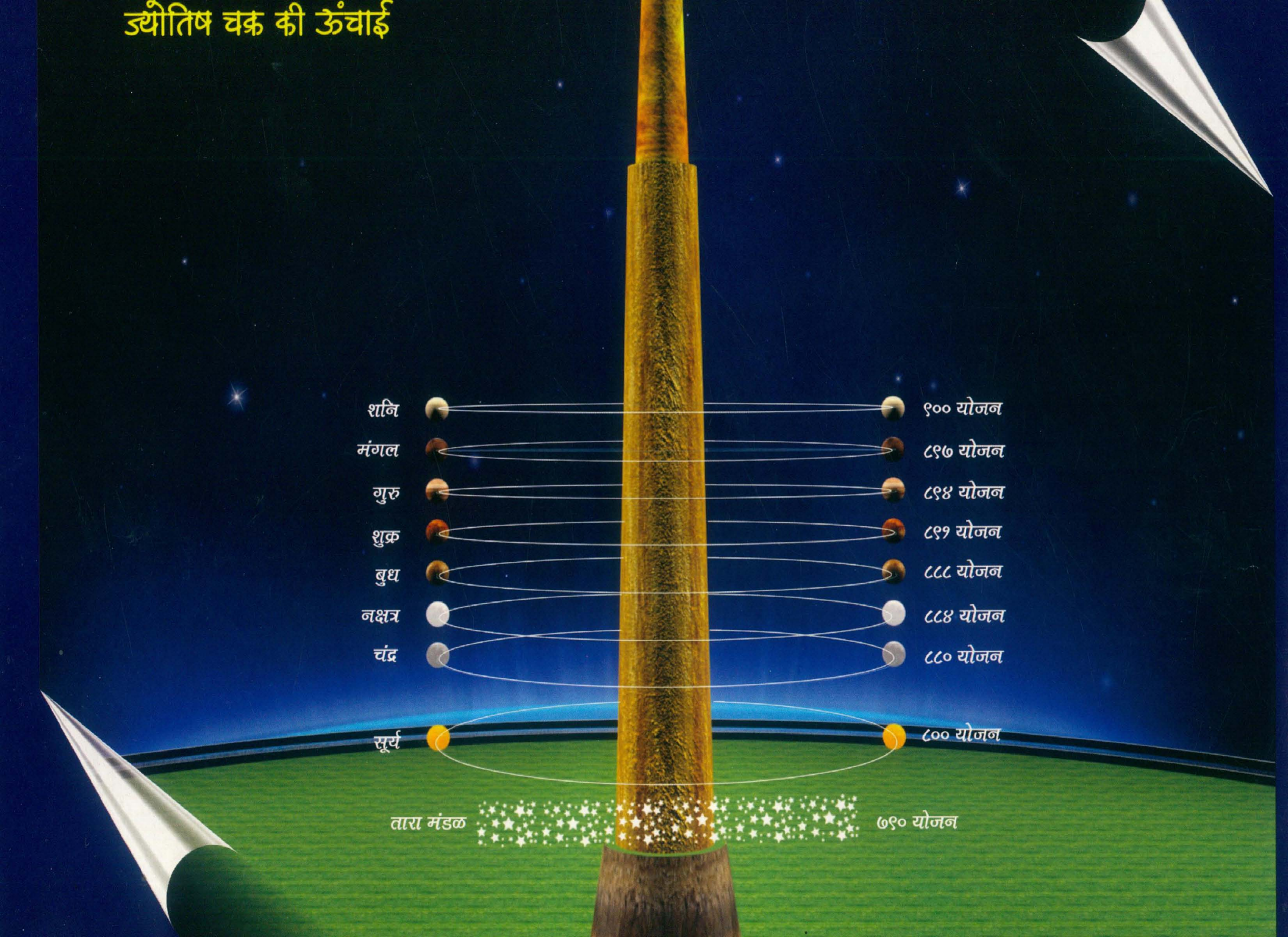

ज्योतिष चक्र की ऊंचाई

जैन गणितानुसार एक योजन के माईल कितने होते है ?.....

- जैन शास्त्रों में गणित की एक स्वतंत्र पद्धति है, इसमें माप के विशिष्ट पारिभाषिक शब्द भी आयोजित हैं। उस पारिभाषित गणितानुसार अंगुल या योजनादि माप के इंच, योजनादि कितने होते हैं इसकी समझ यहाँ दी गई हैं। यद्यपि योजन किसे कहा जाए ? इसके बारे में अनेक विसंवाद आज भी प्रवर्तित ही हैं। वर्तमान विश्व में विदेशी विद्वानों-वैज्ञानिकोंने पिछले सैंकड़ों सालों से भौगोलिक तथा खौगोलिक पदार्थों की ऊँचाई-नीचाई की कक्षा निश्चित करने को समुद्री तल को अर्थात् Sea-लेवल को ध्रुव बताया। क्योंकि माप निश्चित करने को कोई भी एक स्थान निश्चित न हो तो गिनति किससे सम्बधित करें ?
- जिस तरह आम तौर पर Sea-लेवल निश्चित हुआ है उसी तरह जैन शास्त्रकारोंने अपने त्रैलोक्यवर्ती पदार्थों के माप के लिए (प्राय: शाश्वता) समभूतला शब्द से परिचित स्थान को ध्रुव मध्यबिंदु निश्चित किया है यह स्थान हमारी धरती के नीचे हैं जिसके परिचय हेतु इस ग्रंथ के पृष्ठ १६ से पाठ देखिए। इस युग में अति तीव्र गति से आगेकुच करते हुए विज्ञान के माप के साथ अपनी गणना की तुलना करने की तीव्र जिज्ञासा अभ्यासियों को होती है अत: अत्यावश्यक सूचि नीचे दी गई है।
- जैन गणित के हिसाब से ४०० कोस का एक प्रमाणांगुल योजन निश्चित हुआ है। वर्तमान गणित की परिभाषा में इस योजन का विभाजन माईलों में करें तो सूक्ष्म गणना के हिसाब से तो ३६३६.३६ माईल होते हैं और स्थूल गणना करें तो ३६०० माईल होते हैं। ज्योतिषचक्र के मापों को माईल में परावर्तित करना हो तो सूक्ष्म गणना के लिए ३६३६.३६ से तथा स्थूल गणना के लिए ३६०० से गुणने से इष्ट संख्या प्राप्त होती हैं।
- ज्योतिषचक्र के माप माईलों के हिसाब से किस प्रकार हैं इसे प्रथम देखे...
- व्यवहार में ४ कोस का एक (१) योजन होता हैं। शास्त्रीय व्यवहार में तो ३६३६.३६ माईल होते हैं और स्थूल गिनती करें तो ३६०० माईल होते हैं। ज्योतिषचक्र के मापों से माईल की सूक्ष्म गिनती ३६३६.३६ से तथा स्थूल गिनती ३६०० से गुनने से इष्ट संख्या उपलब्ध होती हैं।

ज्योतिष चक्र	ऊँचाई	माईल प्रमाण
तारों	७९० योजन	२८,४४,०००
सूर्य	८०० योजन	२८,८०,०००
चंद्र	८८० योजन	३१,६८,९००
नक्षत्रों	८८४ योजन	३१,८२,४००
बुध	८८८ योजन	३१,९६,८००

ज्योतिष चक्र	ऊँचाई	माईल प्रमाण
शुक्र	८९१ योजन	३२,०७,६००
गुरु	८९४ योजन	३२,१८,४००
मंगल	८९७ योजन	३२,२९,२००
शनि	९०० योजन	३२,४०,०००[१]

(१) यह लेख प.पू. आ. श्री यशोदेवसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा लिखित "संग्रहणीरत्नम्" ग्रंथ में से साभार लिया हैं।

"I consider myself fortunate to have had an occasion to live in the province of Lord Mahavira. Ahimsa is the special heritage of Jains. In no other religion of the world do we find the exposition of the doctrine of Ahimsa reaching so high flights as in Jainism.

There is no doubt about the fact that the world today stands in great need of acting upon Mahavira's teachings. But this would be possible only if and when each one of us and especially those who call themselves his followers moulds and leads his life according to those principles."

- Dr. Rajendra Prashad

जंबूद्वीप और लवणसमुद्र

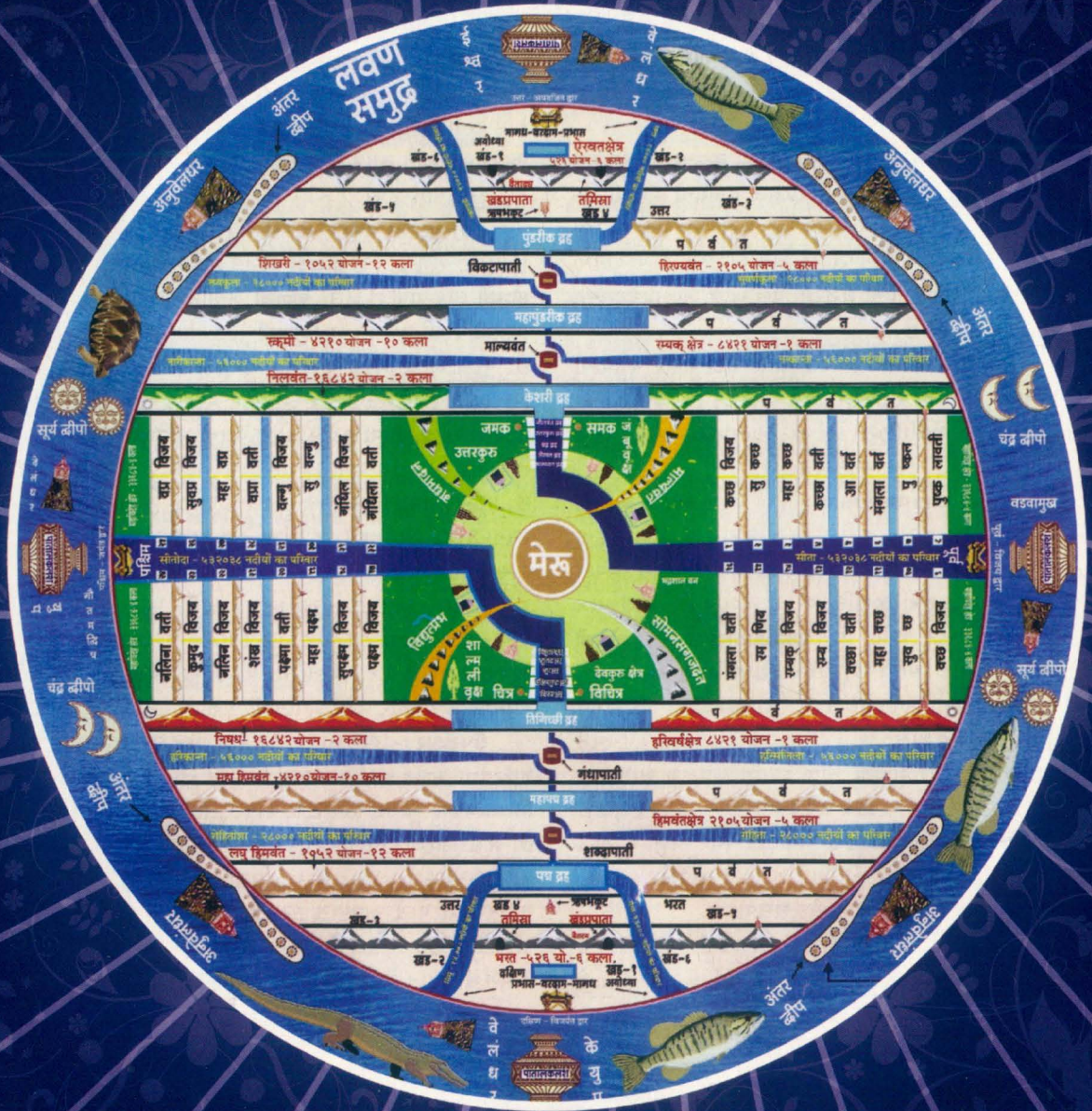

मध्यलोक का स्वरूप.....

अब में मध्यलोक का स्वरूप आपको बताने जा रहा हूँ। घम्मा नारकी की मोटाई के पहले (उपर के) ९०० योजन तिर्छालोक (मध्यलोक) में आते हैं फिर भी उसके वर्णन के प्रसंग पर और वहाँ रहे हुए व्यंतरों का अधोलोक में ही वर्णन किया गया है। अब इस रत्नप्रभा तरफ के उपर के तल का वर्णन करता हूँ। इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र आये हुए हैं और उनकी संख्या अढ़ाई उद्धार सागरोपम जितना समय होता है।[१]

इस मध्यलोक के मध्यभाग में प्रथम जंबूद्वीप नामक द्वीप है, इसके आस-पास वलयाकार रूप में लवणसमुद्र है। इस लवणसमुद्र के आसपास धातकीखंड नाम का द्वीप है उस द्वीप के आसपास कालोदधि समुद्र है, इस समुद्र की चारों तरफ वलयाकार पुष्करवर द्वीप है और उसके आसपास ऐसा ही पुष्करवर समुद्र आया हुआ है। इसी तरह आगे भी द्वीप-समुद्र एक-दूसरे से लिपटकर रहे हुए हैं। वह इस तरह से - वारुणीवर नाम का द्वीप, फिर वारुणीवर नाम का समुद्र, फिर क्षीरवर नाम का द्वीप और उसके बाद क्षीरवर नाम का समुद्र है, उसके बाद घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र और बाद में इक्षुवर द्वीप और इक्षुवर समुद्र आता है बाद में नंदीश्वर द्वीप और नंदीश्वर समुद्र आता है।

इसके बाद तीन बार अरुणादि द्वीप और तीन बार अरुणादि समुद्र आये हुए हैं, उसके नाम कुछ इस प्रकार के है - अरुण, अरुणवर, अरुणवरावभास, कुंडल, कुंडलवर, कुंडलवरावभास, शंख, शंखवर शंखवरावभास, रुचक, रुचकवर, रुचकवरावभास, भुजग, भुजगवर, भुजगवरावभास, कुश, कुशवर, कुशवरावभास, क्रोंच, क्रोंचवर, क्रोंचवरावभास...। इस प्रकार २१ प्रकार के नाम कहे.... ये जो द्वीप हैं, उसी नाम के उसके आस-पास वलयाकार समुद्र आए हैं इस प्रकार समझना[२]।

इस तरह असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। उनके नामों की आम्नाय कुछ इस प्रकार मिलती है.... आभूषण, वस्त्र, सुगंधी, कमल, तिलक, निधान, रत्न, नदी, पद्मद्रह वगेरे द्रहो, कच्छादि विजय, वक्षस्कार पर्वत, वर्षधर पर्वत, देवकुरु, उत्तरकुरु, मंदर (मेरु), सौधर्मादि स्वर्ग, शक्रादि इंद्र, चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारा, पर्वत, शिखर वगैरह इस तरह उत्तम वस्तुओं के जगत में जो जो नाम हैं उन प्रत्येक नाम के अनुसार तीन-तीन द्वीप-समुद्र आए हुए हैं। इतना ही नहीं परन्तु एक ही नाम के भी असंख्य द्वीप-समुद्र हैं, उदा. रूप में जंबूद्वीप इस नाम के भी असंख्य द्वीप समुद्र हैं। इस तरह अंतिम सूर्यावरावभास द्वीप आया हुआ है और उसके आसपास वलयाकार इसी नाम का समुद्र आया हुआ है।

इसके बाद जो जो द्वीप और समुद्र हैं वे पूर्व के अनुसार तीन-तीन नाम के नहीं परंतु एक नाम का द्वीप और समुद्र मात्र १ बार ही आता है जैसे कि देव द्वीप-देव समुद्र, नाग द्वीप-नाग समुद्र, यक्ष द्वीप-यक्ष समुद्र, भूत द्वीप-भूत समुद्र और अंत में स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र आता हैं।[३] जंबूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक के सभी द्वीप समुद्र उत्तरोत्तर द्विगुण-द्विगुण विस्तारवाले होते हैं, जैसे कि - जंबूद्वीप से लवणसमुद्र द्विगुण (डबल) है, लवण से धातकीखंड द्विगुण है... इत्यादि इसी तरह अंतिम द्वीप से अंतिम समुद्र द्विगुण (डबल) है ऐसा जानना...।[४]

(१) (A) प्रवचन सारोद्धार/द्वार-१५९, (B) बृहत्क्षेत्रसमास-३ (C) त्रैलोक्यदीपिका-८५ (D) चैत्यवंदन महाभाष्य-६५३ (२) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-३५ (३) (A) बृहत्संग्रहणी सूत्र - गाथा ७० से ७५ (B) त्रैलोक्यदीपिका-९८ से (C) देवेन्द्र-नरकेन्द्र प्रकरणम् (४) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१५, श्लोक २ से २८

19

अमेरिका में स्थित "फ्लेट अर्थ सोसायटी" की स्थापना आज से ५० वर्ष पूर्व दक्षिण केलिफोर्निया में रहनेवाले सेमुअल शेन्टन नामक एक ब्रिटिशर ने की थी। सन् १९७१ मे सेमुअल शेन्टन का निधन हो गया और उसके पश्चात चार्ल्स के. जान्सन उसके प्रमुख बने। १९ वी सदी में ब्रिटेन में "युनिवर्सल झेटेटिक सोसायटी" थी उसकी पृथ्वी के सबंध में जो मान्यता थी, उन्हें विकसित करने का कार्य यह सोसायटी आज कर रही है। इस सोसायटी ने अपनी मान्यता के अनुसार ही सपाट पृथ्वी का एक नक्शा भी प्रस्तुत किया है। इस नक्शे में पृथ्वी के केन्द्र के रूप में उत्तरध्रुव को दर्शाया गया है।

मध्यलोक का मध्यद्वीप जंबूद्वीप....
लवण समुद्र

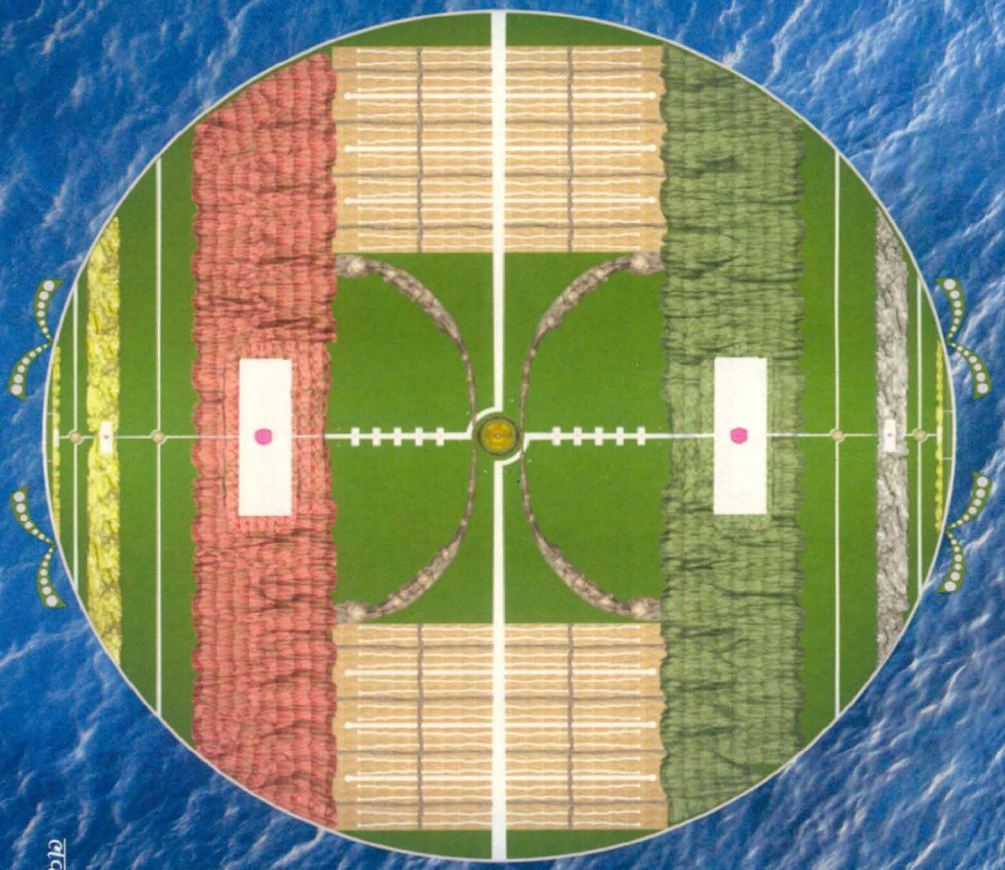

मध्यलोक का मध्यद्वीप = जंबूद्वीप.....

- मध्यलोक के मध्य में रहा हुआ जंबूद्वीप सर्व द्वीप-समुद्रों के बीच में रहा हुआ है और इसका आकार पूर्णिमा के चन्द्र समान गोल और सपाट है।[१] एक पल्योपम की आयुष्यवाला तथा महान समृद्धिवाला ''अनादृत'' नामक अधिष्ठायक देव के आश्रय रूप और विविध रत्नमय-जम्बू नामक वृक्ष अधिक होने से इसका नाम ''जम्बूद्वीप'' पड़ा है, अथवा वहाँ हमेशा प्रफुल्लित जम्बू के विशाल वन होने के कारण जम्बूद्वीप नाम पड़ा हैं।
- यह जम्बूद्वीप १,००,००० (एक लाख) योजन लम्बा-चौड़ा है। इसके चारों तरफ का घेराव ३,१६,२२७ (तीन लाख, सौलह हजार, दौ सो सत्तावीस) योजन, ३ कोस, १५८ धनुष्य, १३ अंगुल, ५ जव और १ युका (जू) प्रमाण परिधि हैं।[२]
- यह जंबूद्वीप ९९,००० योजन से कुछ अधिक ऊँचा है और समभूतला भूमि से १,००० योजन नीचा है। अतः इसका जोड करते उर्ध्व-अधः प्रमाण १,००,००० (एक लाख) योजन से कुछ अधिक होता है।[३] यहाँ एक प्रश्न उठता है कि - जलाशय, पर्वतादि की तो गहराई और ऊँचाई होना योग्य है, परन्तु जम्बूद्वीप की गहराई और ऊँचाई किस तरह होती हैं ? समाधान = इस जंबूद्वीप की पृथ्वी पश्चिम दिशा में घम्मा नारकी की और घटती जाती है वह अनुक्रम से दो विजय में समभूतला से १,००० योजन नीचे उतरती है। वहाँ अधोलोक के गाँव आते हैं और इन सब में इस द्वीप का व्यवहार होने से इसकी इतनी गहराई कहलाती हैं। और इस जम्बूद्वीप में जो जो तीर्थंकर होते हैं इनका मेरुपर्वत के पांडुकवन की शिला पर अभिषेक करने में आता है, इसलिए जंबूद्वीप का बुद्धस्थल (मेरुपर्वत के शिखर) तक व्यवहार गिनकर तत्त्वज्ञानीयों ने इसकी इतनी (१,००,००० योजन) ऊँचाई कही हैं।
- यह जम्बूद्वीप वस्तुतः पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलों का बना है क्योंकि पृथ्वी, जल, जीव और पुद्गलों के ही ऐसे परिणाम होते हैं। तथा यह जंबूद्वीप शाश्वत और अशाश्वत भी है, जैसे की द्रव्य से शाश्वत और पर्याय से अर्थात् वर्ण-गंध-रस तथा स्पर्श से अशाश्वत हैं।
- इस जम्बूद्वीप के अंदर ७ क्षेत्र हैं, और वे एक दूसरे के बीच आए हुए वर्षधर पर्वतों से अलग होते हैं। ये सात क्षेत्र इस प्रकार के है (१) भरत क्षेत्र (२) हिमवंत क्षेत्र (३) हरिवर्ष क्षेत्र (४) महाविदेह क्षेत्र (५) रम्यक् क्षेत्र (६) हिरण्यवंत क्षेत्र और (७) ऐरावत क्षेत्र। इन दो दो क्षेत्रों के बीच में एक पर्वत आया है, वे ६ हैं, जो इस प्रकार जानना... (१) हिमवंत पर्वत (२) महाहिमवंत पर्वत (३) निषध पर्वत (४) नीलवंत पर्वत (५) रुक्मि पर्वत और (६) शिखरी पर्वत....।
- इस जंबूद्वीप में मेरुपर्वत के आसपास २ सूर्य, २ चंद्र, ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह और १,३३,९५० कोडाकोडी तारे फिर रहे हैं।
- यहाँ जम्बूद्वीप में क्षेत्र और पर्वतों का नाम मात्र से ही वर्णन किया गया है इससे समझना कि अभी और विशेष वर्णन हैं इसीलिए उसका उद्देश किया गया हैं।

(१) (A) भगवती सूत्र-शतक ९ / उद्देशा-१ / सूत्र-२/३ (B) जीवाजीवाभिगम सूत्र-३/१/१२३, १२४ (C) ज्ञानार्णव-३३/८, (D) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-२/३/४७९, (E) लोकप्रकाश-१२/४५, (F) आराधना समुच्चय-५८ (G) आदिपुराण-४/४१ (H) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति/वक्ष.-१ (I) ठाणांग सूत्र/अध्य.१/सूत्र-४४ (J) समवायांग सूत्र-सूत्र-१२४ (२) (A) क्षेत्रलोकप्रकाशः, सर्ग-१५, सूत्र-३३/३४/३५ (B) सिद्धांत सारोद्धार-१५ (C) लघु संग्रहणी-८ (३) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१५, सूत्र-३९-४० (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र

20

महासागरों का जल किस प्रकार गोले से चिपका रहता है ?

पानी सदैव सतह ढुंढ़ता है। पानी को कभी भी गेंद के आकार में ढालकर स्थिर नही रखा जा सकता है। फुटबाल पर यदि पानी की बुंदे गिराई जाए तो वे नीचे ही गिर जाएगी। तो इतने सब महासागरों के जल को किस प्रकार पृथ्वी गेंद के आकार में ढालकर अपनी सतह पर पकड़कर रख पाती होगी ? यह पानी यदि स्थिर हो तो उसे केन्द्रस्थ गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव को माना जाये, लेकिन यहाँ तो महासागरों में सदैव ज्वार व भाटा आता ही रहता है। इस गतिशील तरल पदार्थ को गेंद के आकार में घूमने के लिए किस प्रकार बाध्य किया जा सकता है ?

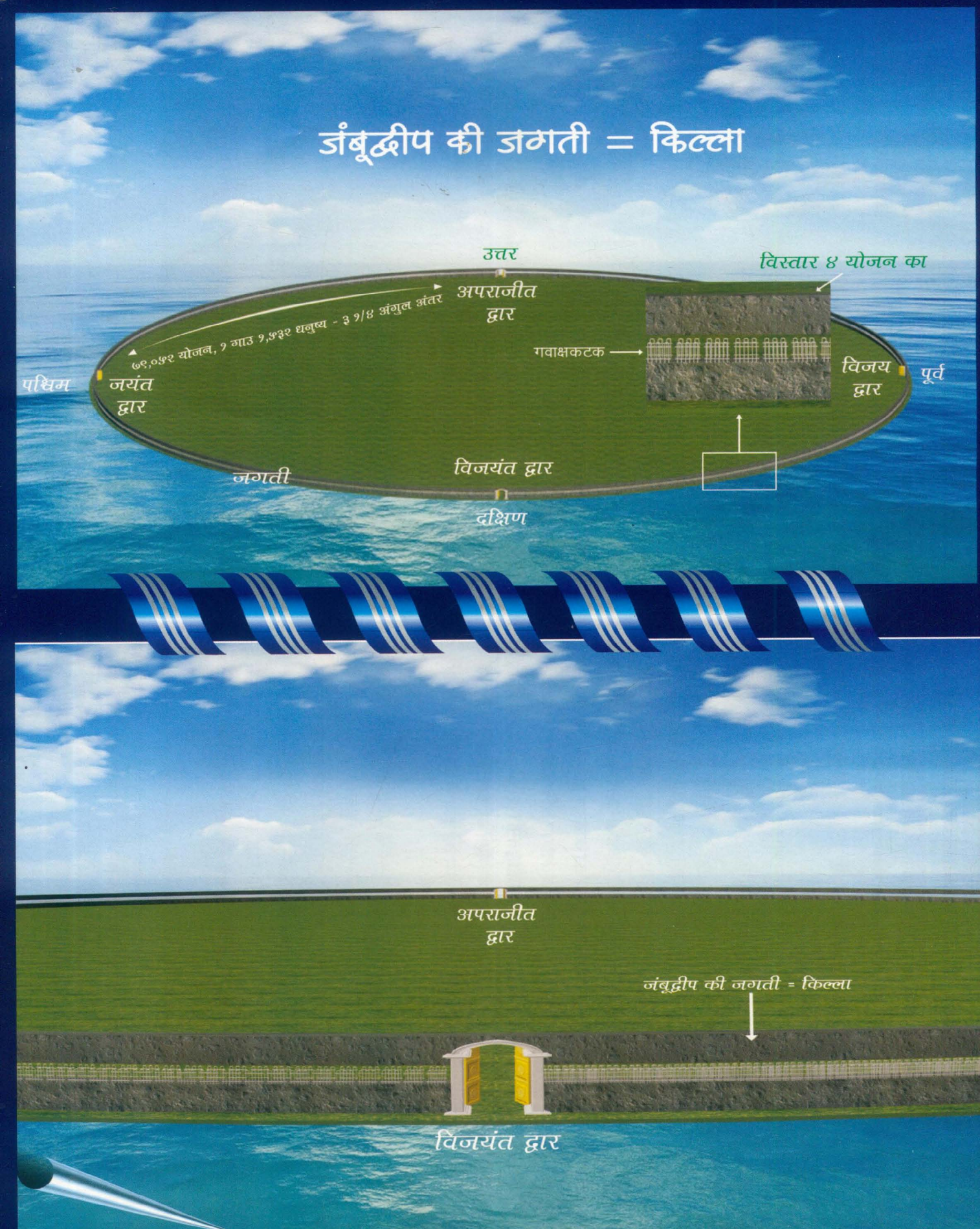

जंबूद्वीप की जगती = किल्ला
उत्तर
अपराजीत द्वार
विस्तार ४ योजन का
७९,०५२ योजन, १ गाउ १,५३२ धनुष्य - ३ १/४ अंगुल अंतर
गवाक्षकटक
पश्चिम
जयंत द्वार
विजय द्वार
पूर्व
जगती
विजयंत द्वार
दक्षिण

अपराजीत द्वार
जंबूद्वीप की जगती = किल्ला
विजयंत द्वार

जंबूद्वीप की जगती = किल्ला.....

एक लाख योजन विस्तारवाले जंबूद्वीप का आकार प्रत्तरवृत्त अर्थात् थाली के समान गोल है। किन्तु लवणसमुद्र के समान वलयाकार नहीं है, परन्तु कुम्हार के चाक के समान ही है।

जंबूद्वीप के चारों तरफ "वज्रमणिमय" नामक कोट है। उसी को शास्त्रों में "जगती" कहते हैं। उसकी ऊँचाई ८ योजन की है। तथा उसका विस्तार मूल में १२ योजन का और पीछे क्रमशः न्यून न्यून होते हुए ऊपर चार (४) योजन का होता है। ऊपर के मध्यभाग में "सर्वरत्नमय" नामक वेदिका है। वह पुरुष, किन्नर, गन्धर्व, वृषभ, सर्प, अश्व तथा हस्ति इत्यादि चित्रों से युक्त हैं। उसमें गुच्छों, पुष्पों और पल्लवों से उत्तम वासन्ती तथा चम्पक इत्यादि विविध प्रकार की रत्नमय लताएँ हैं। वेदिका का घेराव जगती-कोट जितना, ऊँचाई दो गाउ की और विस्तार पांचसौ (५००) धनुष्य का हैं।

वेदिका के दोनों तरफ दो बगीचे हैं। प्रत्येक बगीचे का घेराव जगती-कोट जितना, तथा विस्तार २५० धनुष्य हीन २ योजन का है। वेदिका का और दोनों बगीचों का विस्तार सम्मिलित करते हुए बराबर जगती कोट जितना ४ योजन का होता हैं। दोनों बगीचों में फल और फूल इत्यादिक से मनोहर वृक्ष हैं। उनकी भूमि में रहे हुए तृण-घास के अंकुरो में से चन्दनादि से भी अधिक सुवास प्रसरती हैं। तथा इन अंकुरों का पवन-वायु से परस्पर अथड़ाते हुए वीणादिक वाजिंत्रों के नाद से भी अधिक मनोहर नाद उत्पन्न करता हैं। पवन से परस्पर टकराते हुए ऐसे पंचवर्ण के सुगन्धित मणियों में से भी मधुर ध्वनि निकलती हैं। स्थल-स्थल पर सोपान याने सीढीयोंवाली बावड़ीयाँ, तालाब तथा महासरोवर इत्यादिक होते हैं। बावड़ीयों में जल-पाणी भी मदिरा तथा इक्षुरसादिक के भांति विविध स्वादवाले होते हैं। उनमें अनेक प्रकार के क्रीडापर्वत, विविध प्रकार के क्रीडागृह, नाट्यगृह, केतकीगृह, लतागृह, कदलीगृह, प्रसाधनगृह तथा रत्नमय मण्डप इत्यादिक है।

इन समस्त गिरियों-पर्वतों, गृहों, जलाशयों एवं (तथा) मण्डपादि में व्यंतर जाति के देव यथेच्छ क्रीडा करते हैं। चार दिशाओं में जगती-कोट के विजयादिक नामवाले ४ द्वार हैं। उनके स्वामी विजयादि देव हैं। उन विजयादि देवों की असंख्य द्वीपों और समुद्रों के बाद द्वितीय जंबूद्वीप में राजधानी हैं।

कोट को फिरता हुआ एक "गवाक्ष" यानी झरोखा है। वह गवाक्ष दो गाउ ऊंचा और पांचसौ (५००) धनुष्य चौड़ा (विस्तृत) हैं। गवाक्ष (झरोखा) कोट के मध्यभाग में आया हुआ होने से वहाँ से ही लवण समुद्र के समस्त दृश्य देख सकते हैं।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-१ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१५, श्लोक-४८ से १२९

कोई भी चन्द्रयान जब लगभग १०० कि.मी. की ऊंचाई तक सीधा जाय और उसके पश्चात् क्षैतिजिक समानान्तर भ्रमण करने लगे तब वह चन्द्रमां पर नहीं पहुंचता है, लेकिन वह हमारी वर्तमान दुनिया से ३,८४, ००० कि.मी. की दूरी पर आए पृथ्वी के ही किसी अनजाने कोने में पहुंच जाता हैं। इस कोने तक वर्तमान विमानों के द्वारा हम नही पहुंच सकते है। चन्द्रयान द्वारा जो तस्वीरे भेजी जाती है और जिनके लिए बताया जाता है कि वे चन्द्रमा की भूमि की है, वे वास्तव में पृथ्वी के ही ऐसे किसी दूर के प्रदेश की तस्वीरे होती है। चन्द्रयान द्वारा जो मिट्टी व पत्थरों के टुकडे एकत्रित किए जाते है वे वास्तव में पृथ्वी के ही मिट्टी व पत्थर है। कोलंबस जिस प्रकार भारत को खोजने निकला था और पहुंच गया था अमेरीका, ठीक वैसे ही आज वैज्ञानिक चन्द्रमा की शोध में पृथ्वी के ही किसी अनजाने प्रदेश में पहुंच जाते है।

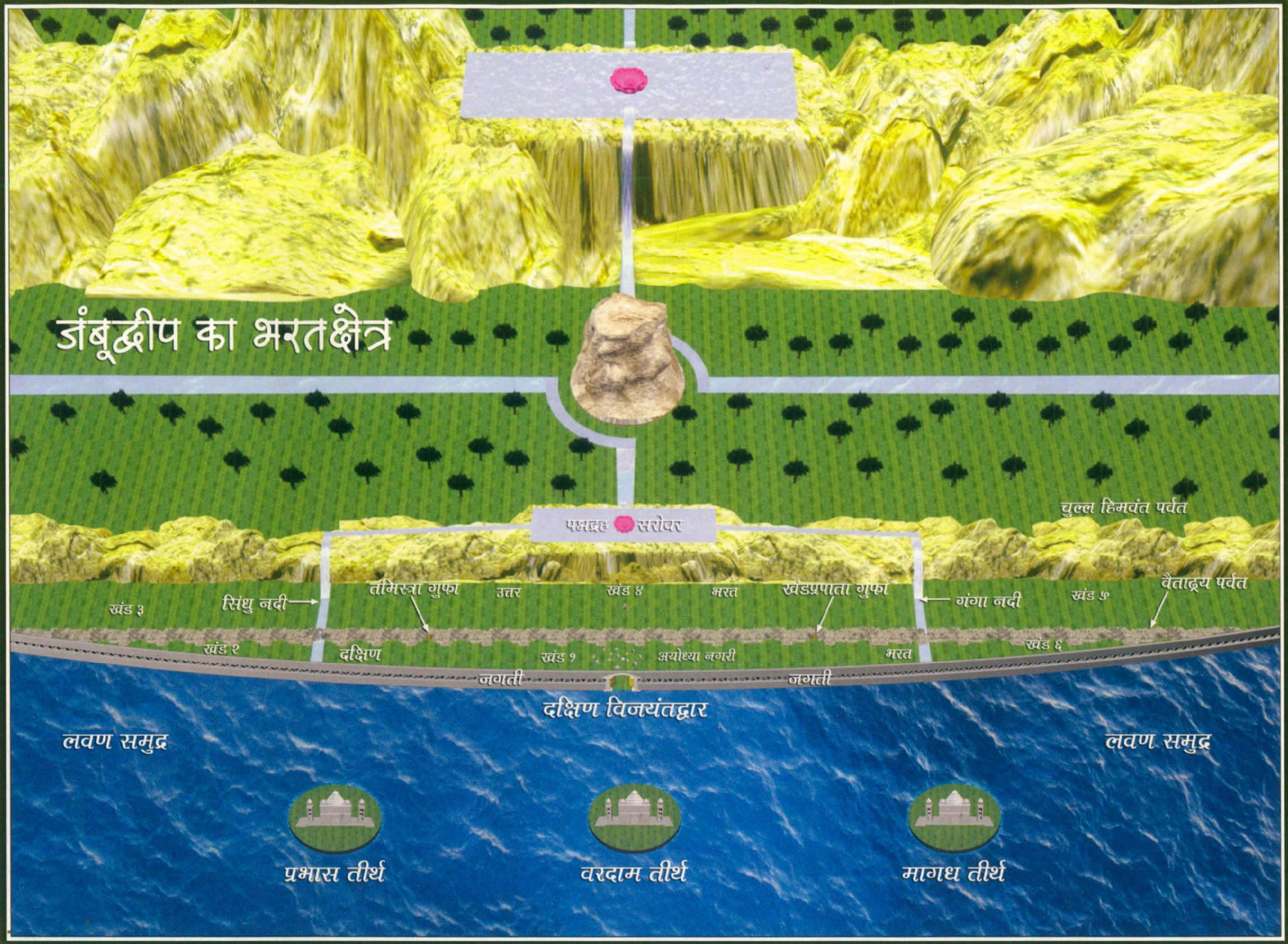
जंबूद्वीप का भरतक्षेत्र
चुल्ल हिमवंत पर्वत
पद्मद्रह सरोवर
खंड ३
सिंधु नदी
तमिस्रा गुफा
उत्तर
खंड ४
भरत
खंडप्रपाता गुफा
गंगा नदी
खंड ५
वैताढ्य पर्वत
खंड २
दक्षिण
खंड १
अयोध्या नगरी
भरत
खंड ६
जगती
जगती
दक्षिण विजयंतद्वार
लवण समुद्र
लवण समुद्र
प्रभास तीर्थ
वरदाम तीर्थ
मागध तीर्थ

भरत क्षेत्र.....

- आपको बताए गये जंबूद्वीप के दक्षिण दिशा के अन्तिम विभाग में ''भरत क्षेत्र'' आया है, जो कालचक्र के कारण अलग-अलग अवस्था को प्राप्त करता हैं। प्रत्यंचा (धनुष्य की दोरी) चढ़ाकर तैयार किए धनुष्य की जैसी आकृति होती है, वैसी भरत क्षेत्र की आकृति है। इसके पूर्व और पश्चिम के किनारे पर और संपूर्ण पीछे के विभाग में समुद्र है।
- एक पल्योपम की आयुष्यवाला इसका अधिष्ठाता देव हैं, और इसके सामानिकादि देव ''भरत'' नाम से बुलाए जाते हैं। यह बात कल्प आचार ग्रंथों में कही हैं। इसी कारण से इस क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र कहा जाता हैं। अथवा वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती इस काल के प्रथम चक्रवर्ती हुए। उनके नाम से अथवा भरत क्षेत्र नाम शाश्वत ही हैं।*
- यह भरत क्षेत्र ५२६ योजन और ६ कला प्रमाण का हैं।
- यह भरत क्षेत्र वैताढ्यपर्वत से दो भागों में विभाजित होता हैं, इससे उसके (भरत क्षेत्र के) दो भाग होते हैं। (१) दक्षिणार्ध भरत (२) उत्तरार्ध भरत।
- हिमवंत पर्वत में से निकलती और वैताढ्यपर्वत को भेदन करती पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में मिलनेवाली गंगा और सिंधु नदियों से इस भरत क्षेत्र का ६ विभागों में विभाजन होता हैं।
- वैताढ्यपर्वत से दक्षिण में और लवणसमुद्र उत्तर में ११४ योजन ११ कला छोड़कर, मध्यखंड के मध्यभाग में ९ योजन चौड़ी और १२ योजन लम्बी अयोध्या नाम से नगरी हैं।
- इसी मध्यखंड में २५ १/२ आर्य देश है इसके सिवा अन्य शेष खण्ड अनार्य हैं तथा अन्य पांच खण्ड भी अनार्य है।
- मध्यखण्ड में रहे हुए आर्य देशों में ही २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेवादि ६३ शलाकापुरुष उत्पन्न होते हैं।
- भरत क्षेत्र के दक्षिण समुद्र में प्रभास, वरदाम और मागध नाम के ३ तीर्थ आये हुए हैं।
- इस भरत क्षेत्र की लंबाई पूर्व लवणसमुद्र से पश्चिम लवणसमुद्र तक १४,४७१ योजन ६ कला हैं।
- इस भरत क्षेत्र के षट्खंड में कुल मिलाकर ३२,००० देश आये हुए हैं।
- इस षट्खंडरूप भरत क्षेत्र में आये हुए चौथे खंड में लघुहिमवंत पर्वत के मूल में आये हुए ''ऋषभकुट'' पर्वत पर उस काल में उत्पन्न हुए चक्रवर्ती अपना खुद का नाम काकिणी रत्न से लिखते हैं।[१]
- अब देखते हैं आगे... भरत क्षेत्र संबंधी पर्वत-नदियाँ इत्यादि का विस्तृत स्वरूप..

★
- वसुदेव हिन्डी = प्रथम खण्ड
- वायुपुराण = ४५/७५
- ब्रह्माण्डपुराण = पर्व-२/१४
- आदिपुराण = पर्व-१५/१५८-१५९
- वराहपुराण = ७४-४९
- वायु महापुराण = ३३/५२
- शिवपुराण = ५२/४८
- नारदपुराण = ४८/५,
- लींगपुराण = ४३/२३
- स्कंधपुराण = कौमारखण्ड-३७/५७
- मार्कण्डेयपुराण-५०/४१
- श्रीमद् भागवत पुराण = ५/४
- आग्नेय पुराण = १०७/१२
- विष्णुपुराण-अंश = २, १/२८-२९/३२
- कुर्म पुराण = ४१/३८

इत्यादि ग्रंथों से भी स्पष्ट होता है की प्रस्तुत देश का नामकरण ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही हुआ है। पाश्चात्यविद्वान श्री J-स्टीवेन्सन **(Brahmanical Puranas...took to name "Bharatvarsh = Kalpasutra Introd.P.XVI)** तथा प्रसिद्ध इतिहास गंगाप्रसाद **m.a.** (प्राचीन भारत, पृष्ठ-५) और रामधारीसिंह दिनकर (संस्कृति के ४ अध्याय, पृष्ठ-१३९) का भी यहीं मन्तव्य हैं।

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६ श्लोक-२ से ४५.

22

जैसा मामला चन्द्रमा का है वैसा ही मंगल का भी है। आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि पृथ्वी व मंगल के बीच औसत अंतर लगभग ४.२० करोड़ कि.मी. का है। जैन भूगोल के अनुसार हमारी पृथ्वी जम्बूद्वीप नाम से जानी जाती है और उसका व्यास १ लाख योजन का है। इसके अलावा असंख्य द्वीप समुद्र है। चन्द्रयान कि तरह ही मंगलयान भी पृथ्वी की सतह से लगभग १०० कि.मी. की ऊंचाई तक ही जाते है। और शेष ४.२० करोड़ कि.मी. पृथ्वी के समानान्तर दिशा में ही प्रयाण करते है। मंगलयान संभवतः जंबूद्वीप के बाहर स्थित किसी टापु पर उतरता है और तब वैज्ञानिक मान लेते है वही मंगल है, जो एक बड़ा भ्रम है।

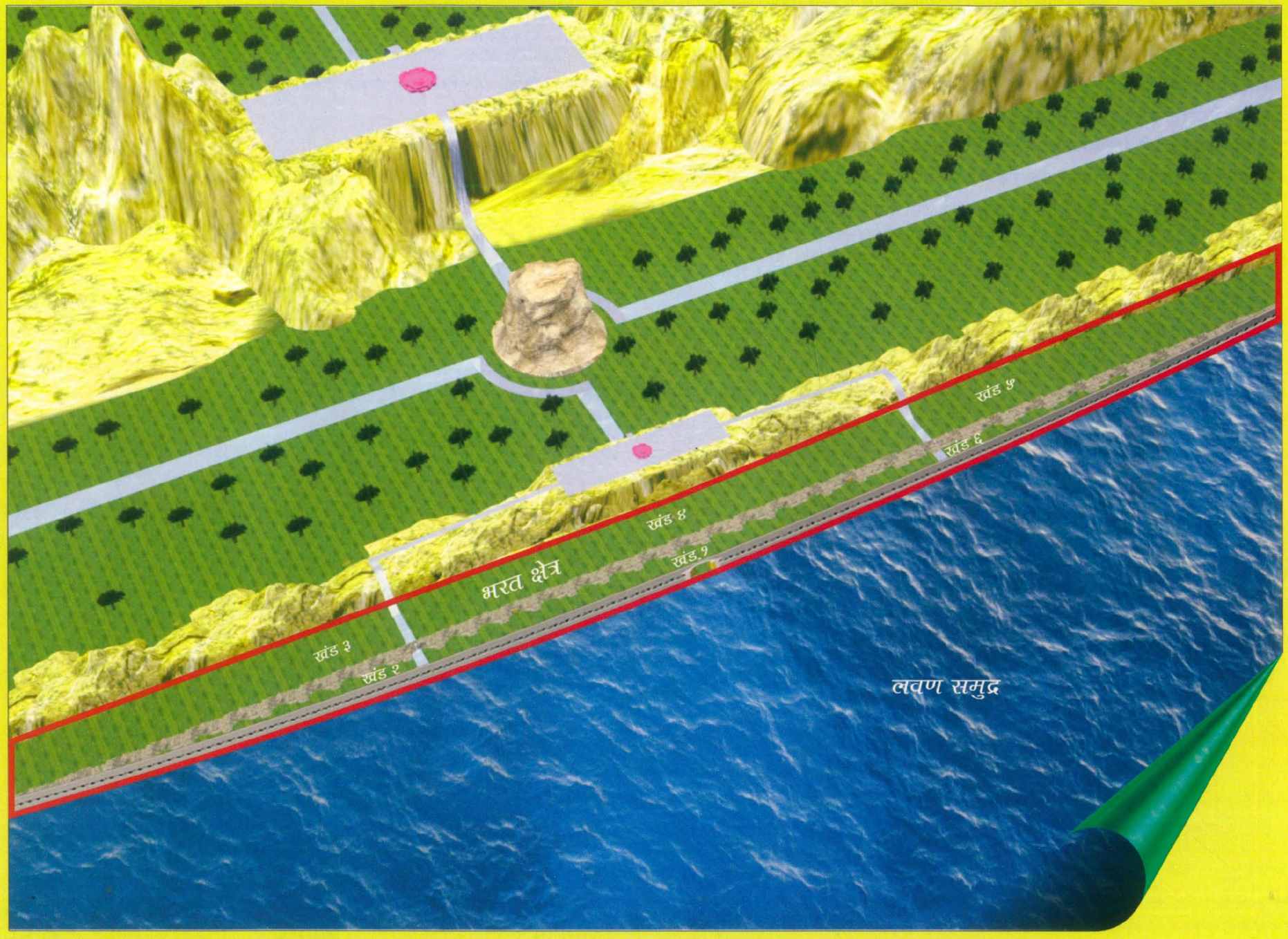
खंड ५
खंड ६
खंड ४
खंड १
भरत क्षेत्र
खंड ३
खंड २
लवण समुद्र

भरत क्षेत्र के मध्यखंड की विशेष जानकारी.....

इस भरत क्षेत्र के ६ खंडों में कुल मिलाकर ३२,००० देश आये हुए हैं, उसमें मध्यखंड में ५,३२० देशों में से मात्र २५ १/२ ही आर्य देश है बाकी के सभी अनार्य देश हैं, इस मध्यखंड में जो २५ १/२ आर्य देश हैं[1] उसके तथा उसके राजधानी के नामों का उल्लेख क्रमशः बताया जा रहा है। तो चलिए... हो जाओ तैयार...

क्रम	देश का नाम	राजधानी का नाम	क्रम	देश का नाम	राजधानी का नाम
१	मगधदेश	राजगृहिनगर (राजगिर)	१४.	दशार्णदेश (छत्तीसगढ़-खानदेश)	मृतिकावती नगर
२	अंगदेश	चंपानगरी (चम्पानाला)	१५.	शांडिल्यदेश	नंदिपुर
३.	बंगदेश (बंगाल)	ताम्रलिप्ती (तामलुक्)	१६.	मलयदेश (पूर्वीघाट)	भद्दीलपुर (हटवरीया के पास)
४.	कलिंगदेश (उडिसा और द्रविड के बीच)	कांचनपुर	१७.	वच्छदेश (अलवर-जयपुर का प्रदेश)	वैराट्पुर
५.	काशीदेश	वाराणसी (बनारस)	१८.	वरुणदेश	अच्छापुरी (अच्छ)
६.	कोसलदेश(अवध)	साकेतपुर (अयोध्या)	१९.	चंदिदेश (चंदेरी)	शौक्तिकावती
७.	कुरुदेश	गजपुर (हस्तिनापुर)	२०.	सिन्धुसौविरदेश (पंजाब)	वीतभयपत्तन (भेरा)
८.	कुशावर्तदेश	सौरिकपुर (शौरीपुर)	२१.	सुरसेनादेश	मथुरानगरी
९.	पांचालदेश (प्रेम)	कांपिल्यपुर (कपिला)	२२.	भंगदेश	पावानगरी (विशाला के पश्चिम में)
१०.	जंगलदेश	अहिच्छत्रानगरी	२३.	पुरिवर्तदेश (वर्तक)	माषानगरी
११.	सौराष्ट्रदेश (काठीयावाड)	द्वारवतीनगरी (द्वारिका)	२४.	कुणालदेश	श्रावस्तिनगरी (सेटमहेट)
१२.	विदेहदेश	मिथिलानगरी (जनकपुर)	२५.	लाटदेश	कोटिवर्षनगरी (बानगढ)
१३.	वत्सदेश (प्रयाग के पश्चिम में)	कौशाम्बीनगरी (कोसम)	२६.	कैकेयजनपदार्धदेश	श्वेतांबिकानगरी (बकोदिला)

उपरोक्त बताये गये २५ १/२ आर्य देशों के सिवाय जो अनार्य देश है, उन्हें इस प्रकार से जानना... (१) शक (पश्चिम भारत का एक देश) (२) यवन-युनान (३) चिलात (किरात) (४) शबर (५) बर्बर (६) काय (७) मरुण्ड (८) ओड (९) भटक (भद्रक-जो दिल्ली और मथुरा के बीच यमुना के पश्चिम में स्थित प्रदेश) (१०) निण्णग-(निम्नग) (११) पक्कनिय (मध्य एशिया का १ प्रदेश... प्रकण्व वा परगना) (१२) कुलक्ष (१३) गोंड (१४) सिंहल (लंका) (१५) पारस (ईरान) (१६) ग्रोध (१७) क्रोंच (१८) अम्बष्ठ (चिनावनदी के नीचले भाग में स्थित १ गणराज्य) (१९) दमिल (द्रविड) (२०) चिल्लल (२१) पुलिन्द (२२) हारोस (२३) होब (२४) वोक्कण (अफघानिस्तान का उत्तरी-पूर्वी छोटा प्रदेश-वखाण) (२५) गन्धहारग (कन्धार) (२६) प्रहलिय (२७) अज्झल (२८) रोम (२९) पास (३०) पउस (३१) मलय (३२) बन्धुय (बन्धुक) (३३) सूयली (३४) कोंकनग (३५) मेय (३६) पल्हव (३७) मालव (३८) मग्गर (३९) आभासिक (४०) अणकंक (४१) चीण (चीन) (४२) ल्हसीय (ल्हासा) (४३) खस (४४) खासिय (४५) ऐल्धर (नेहर) (४६) मेंढ (४७) डोंबिलग (४८) लओस (४९) कक्केय (५०) पओस (५१) अक्खाग (५२) हुण (५३) रोलग (५४) मरु (५५) मरुक[2]... इत्यादि...

(१) (A) विचारसार-४५ से ५० (B) गाथासहस्त्री-१९१ से १९६, (C) सूयगडांग सूत्र-अध्य.-५, उद्देशो-१ (D) प्रज्ञापना सूत्र-प्रथमपद-सूत्र ३७, (२) (A) प्रज्ञापना सूत्र-प्रथम पद - सूत्र-३६, (B) प्रवचन सारोद्धार-गाथा १५८३/४/५, (C) महाभारत-उपायन पर्व, (D) सूयगडांग सूत्र-अध्ययन-५, उद्देशो-१

23

एशिया माईनर में ईसा पूर्व सन् ४०८ में यूक्लिड नामक एक गणितज्ञ का जन्म हुआ था। उन्होंने इजिप्त के एक धर्मगुरु के पास रहकर खगोलशास्त्र का अध्ययन किया था। यूक्लिड ने लिखा है कि सृष्टि के केन्द्र में पृथ्वी है और समस्त ग्रह पृथ्वी की गोलाकार कक्षा में प्रदक्षिणा करते हैं। यूक्लिड २३ वर्ष की उम्र में यूनान की राजधानी एथेन्स गए थे और वहाँ के तत्वचिंतक प्लेटो के परिचय में आए थे। प्लेटो भी मानते थे कि पृथ्वी ही सृष्टि के केन्द्र में है और सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं। यूनान के एक छोटे से गाँव में ईसा पूर्व सन् ३८४ में एरिस्टोटल का जन्म हुआ था। वे प्लेटो के शिष्य थे। एरिस्टोटल भी मानते थे कि पृथ्वी स्थिर है और वह सृष्टि के केन्द्र में है। उनका तर्क था कि आकाश में फेंका गया पत्थर पृथ्वी पर पुनः लौटकर आ जाता है, इसलिए पृथ्वी स्थिर है। यह तर्क आज भी गलत सिद्ध नही हुआ है।

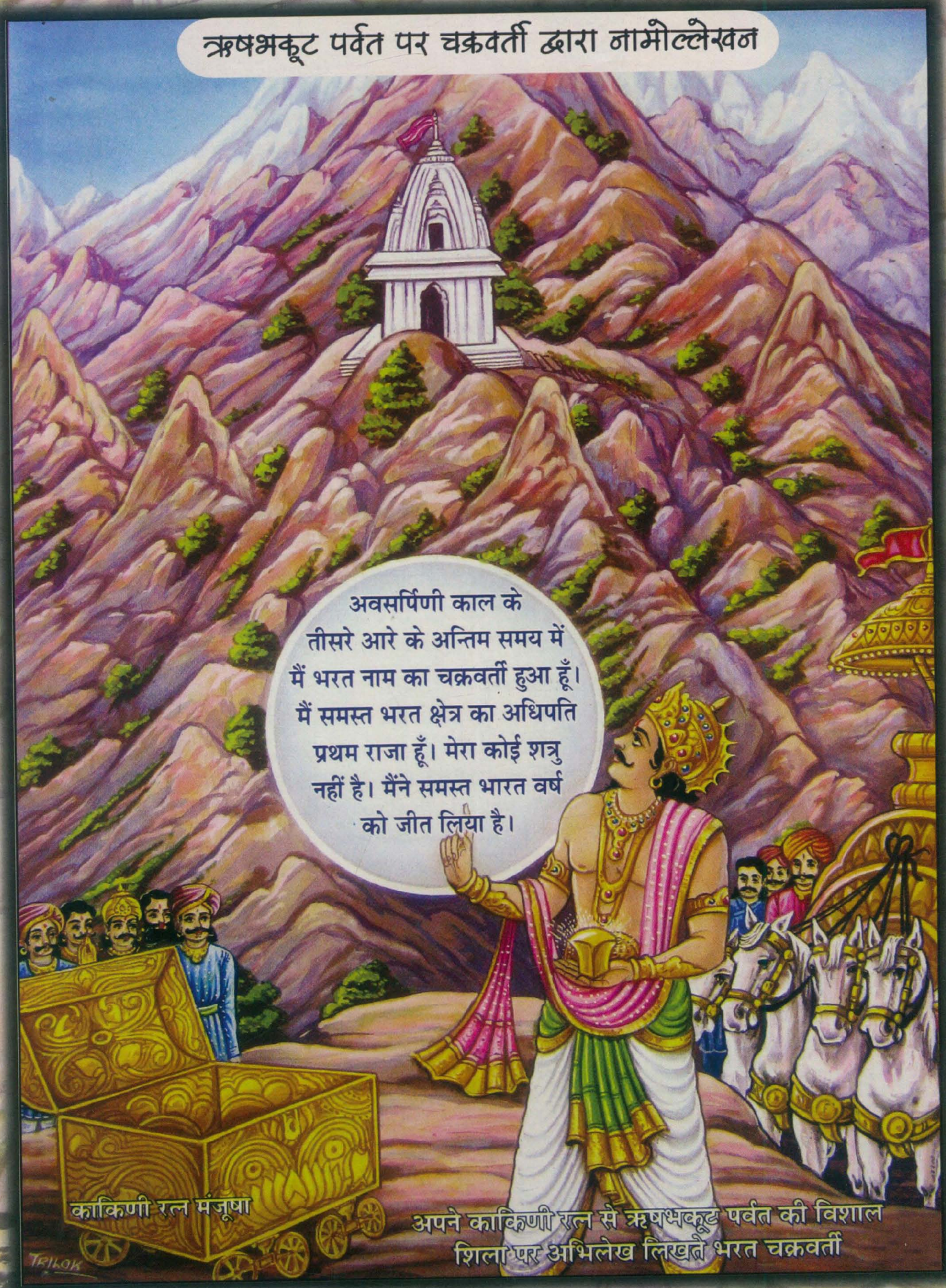

ऋषभकूट पर्वत पर चक्रवर्ती द्वारा नामोल्लेखन

ऋषभकूट पर्वत की विशेष जानकारी.....

जंबूद्वीप के हिमवंत पर्वत की दक्षिण दिशा की और की मेखला के पास गंगा में सिन्धु प्रपात कुंड के बीच ऋषभकूट नामक पर्वत है। वह आठ (८) योजन ऊंचा है तथा २ योजन पृथ्वी के अन्दर निमग्न हैं, और सुन्दर गौपृच्छ के आकारवाला होता है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में ८ योजन, मध्य में ६ योजन और ऊपर ४ योजन की है। इसका घेरावा मूल में २५ योजन, मध्य में १८ योजन और उपर १२ योजन से कुछ विशेष हैं।

एक ऐसा भी मत है कि इसकी लम्बाई-चौड़ाई मूल में, मध्य में और ऊपर अनुक्रम से १२, ८ और ४ योजन की है तथा इसका घेराव अनुक्रम से ३० $^{१}/_{२}$, २५ और १२ योजन से कुछ अधिक हैं। ये दोनों मत जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के हैं। यहाँ प्रश्न होता है कि श्रुत तो सर्वज्ञ भाषित है, तो फिर इसमें मतान्तर क्यों ? सर्व अर्हत् परमात्मा का केवलज्ञान तो एक समान ही होता है, अतः इनका मत भी एक ही होना चाहिए। तब इसका उत्तर देते है कि - श्री स्कंदिलाचार्य और देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में दुष्काल के कारण साधु-साध्वी के द्वारा स्वाध्याय का पठन-पाठन न होने से श्रुतज्ञान विस्मृत हो गया था। उसके बाद जब सुकाल हुआ था, तब सूत्र और उसका अर्थ कम होने लगा, उस समय उसे अखंड रखने के लिए वल्लभीपुर और मथुरा नगरी में संघ एकत्रित हुए। संघ में मुख्य अग्रेसर श्री स्कंदिलाचार्य थे। इस कारण विस्मृत हुआ सूत्रार्थ पुनः पुनः याद करने लगे अतः दोनों वाचना में तफावत-भेद भी आया, और इसी कारण से सूत्रार्थ में किसी किसी जगह फेर-फार हो गया यह संभव हैं। इसलिए उन्होंने तथा उसके बाद पापभीरु, अवार्चीन गीतार्थ महापुरुषोनें कुछ भी निर्णय न होने से दोनों मत सामान्य रूप से स्वीकार किये हैं। इस तरह होने पर भी अभी के जो लोग शास्त्र का वाद-विवादादि दूर करने के लिए एक दूसरे को प्रोत्साहित करते है, वे अपनी माता को सीख-उपदेश देने के समान-समझना चाहिए। इसलिए पू.आ.श्री मलयगिरिसूरिजी म.सा. ने भी ''ज्योतिषकरंडक'' ग्रन्थ की टीका में दोनों बातें स्वीकार की हैं।

इस ऋषभकूट पर्वत पर एक सुन्दर प्रासाद है वह लगभग १ कोस ऊँचा, $^{१}/_{२}$ कोस चौड़ा और १ कोस लम्बा है। इसके ऊपर ऋषभ नाम का देवता का निवास हैं, इस देव की १ पल्योपम आयु होती हैं। इस देव की बहुत ही ऋद्धि समृद्धि होती है।

इस भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त करनेवाले हरेक चक्रवर्ती अपने १४ रत्नों में से काकिणीरत्न के द्वारा इस ऋषभकूट पर्वत पर पूर्व के चक्रवर्ती का नाम मिटाकर अपना स्वयं का नाम अंकित करते हैं।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष. - २ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-१६३ से १७८

हिन्दुस्तान टाईम्स के अक्टुबर के अंक मे एक रशियन वैज्ञानिक लिखते है कि हम जिस पृथ्वी पर रह रहे है और जानते है, उनसे एक कोटि गुनी अधिक जनसंख्या है । ईस्वी सन् १९६५ युनाइटेड इन्फर्मेशन में भी कितने ही वैज्ञानिकों ने सूचित किया था कि हमारे इस ब्रह्मांड जैसे दुसरे ब्रह्मांड का भी अस्तित्व है, जिसमें अरबों लोग निवास करते है । अमेरिका के समक्ष सलामती के लिए एरोड्राम की जगह पसंदगी करने के लिए रशिया के वैज्ञानिकों ने सर्वे करते उत्तर ध्रुव के प्रदेश में रडार द्वारा देखने पर २५००० चौरस मील का प्रदेश देखा जहाँ जाने के लिए प्रयत्न भी किया गया परंतु निष्फल हुआ ।

"कौन क्या कहता है ?"
पुस्तक में से साभार

वर्तमान विश्व का अंदाजित नक्शा....

भरत क्षेत्र में समुद्र कहाँ से आये...?

एक समय ऐसा था कि लवणसमुद्र सौराष्ट्र और गुजरात से बहुत दूर था, परंतु इतिहास में बनी हुई एक घटना के कारण यह लवणसमुद्र (दरिया) बहुत ही नजदीक आ गया है... इस घटना का वर्णन श्री शत्रुंजय महात्म्य के सातवे सर्ग[१] में करने में आया हुआ हैं। जो कुछ इस प्रकार का हैं...

असंख्यवर्ष पहले हुए सगर नाम के द्वितीय चक्रवर्तीने विचारा कि... सौराष्ट्र (काठियावाड) में वर्तित श्री शत्रुंजय पर्वत पर रहे माणीक्यमय जिनबिंबो का कलिकाल के जीवों की बढ़ती हुई लोभ वृत्ति के कारण-रक्षण करने के लिए इस शाश्वत और महापवित्र पहाड़ की चारों ओर से समुद्र ला दूं। जिससे इस रत्नमय बिंबों का भविष्य में लोभासक्त होने वाले पंचमकाल के जीवों से रक्षण मिले, इस भावना से लवणसमुद्र के अधिष्ठायक श्री सुस्थित देव का आराधन करके, लवणसमुद्र के जल को शत्रुंजय पर्वत के चारों और रखने के लिए देव से फरमान किया। आज्ञा वश हुए देवने जंबूद्वीप के पश्चिम द्वार से लवणसमुद्र का जल घूमाया, और अंत में शत्रुंजय-पालिताणा के पास में आये हुए तालध्वज पर्वत (गाँव-तलाजा) तक लाए, इतने में ही सौधर्मेन्द्र महाराजाने भरत क्षेत्र में वर्तित भावों का निरीक्षण करने का उपयोग रक्खा, इसे रखते ही इस अनिच्छनीय घटना को देखते ही तुरन्त स्वर्ग में से उतरकर पृथ्वी पर आकर उस चक्रवर्ती को उद्देश्य कर कहा, कि हे सगर चक्रवर्ती ! कलिकाल में होनेवाले जीवों के लिए श्री सिद्धाचल महातीर्थ इस संसार समुद्र में से छुटने का एक अनमोल कारण हैं। यदि कलिकाल के जीव इस पवित्र तीर्थ के दर्शन नहीं कर पायेगें तो उन्हें मोक्ष पाने का दूसरा प्रबल साधन क्या होगा। यह शत्रुंजय पर्वत तो अनंत सिद्ध जीवों का स्थान होने से इसकी रजेरज भी परम पवित्र है इसलिए हम भी बोलते हैं कि ''कंकड कंकड में अनंता सिद्धा।'' इस पर्वत (तीर्थ) को स्पर्श करनेवाले कोई भी जीवमात्र को अवश्य (भव्य) कहा जाता है। सर्व पर्वतों में यह पर्वत बड़ा पवित्र पर्वत हैं, इसके विमलाचल, सिद्धाचल, सिद्धक्षेत्रादि १००८ नाम है... इसलिए यदि इस तीर्थ को चारों ओर समुद्र से रक्षा जाये तो ऐसे प्रबल आलंबन के बिना कलिकाल के भव्यात्माओं की क्या दशा होगी ?'' कहा जाता है कि जब यह लवणसमुद्र देव के प्रयत्न से भरत क्षेत्र में आया तब टंकण, बर्बर, चीन, भोट, सिंहल आदि संख्याबंध देशों को ताराज (डुबाता) करता हुआ आया था।

आज से लाखों वर्ष पहेले लवणसमुद्र का पानी दक्षिण भरतवर्ष के कितने ही विस्तारों पर संपूर्ण छा गया ऐसा बनना संभावित है, और जो इस भरती में बच गये वह वर्तमान में दिखते २०० से अधिक देशों का चित्रण सामने के चित्र में दिखाई दे रहा हैं जैसे कि - औस्ट्रेलिया, अमेरिका, न्युझीलेन्ड, श्रीलंका, अंडमान, निकोबार, लक्षद्वीप, मालद्वीप, जापान, थाइलेण्ड, इन्डोनेशिया, फिलिपिन्स आदि टापुओं के स्वरूप में रह गये वह भी संभवित हैं। सगर चक्रवर्ती के इस कृत्य (घटना) के बाद भरत क्षेत्र का नक्शा कायम के लिए बदल गया इतना तो जरूर तय है। वर्तमान में विश्व के जितने भी देश के समुद्र लवणसमुद्र के साथ जुड़े हैं, उन्हीं में ज्वार-भाटा आता हैं। रशिया में रहा हुआ कास्पियन समुद्र लवणसमुद्र के साथ जुड़ा न होने से उसमें कभी भी ज्वार-भाटा नहीं आता। जो चंद्र के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण ही ज्वार-भाटा आता होता तो कास्पियन समुद्र में भी ज्वार-भाटा आना चाहिए। परंतु ऐसा तो होता नहीं हैं। सुज्ञ पाठको ! जरा इस बात पर ध्यान से विचार करना।

(१) शत्रुंजय महात्म्य, सर्ग-७

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स जिने "मिस्टीरीयस युनिवर्स (रहस्यपूर्ण विश्व)" नाम के ग्रंथ में लिखते है कि - "Science Should leave off making pronouncement... the river of knowledge has too often turned beck on it self." अर्थात "विज्ञान को नित नयी घोषणा करना छोड़ देना चाहिए... क्योंकि ज्ञान की सरिता बहुत बार अपने मूल स्त्रोत्र के तरफ ही मुड़ जाती है।" इसी वैज्ञानिक ने इस पुस्तक में आगे लिखा है कि... "हम सब अभी तक परम वास्तविकता के पास पहोंचे ही नहीं है।"

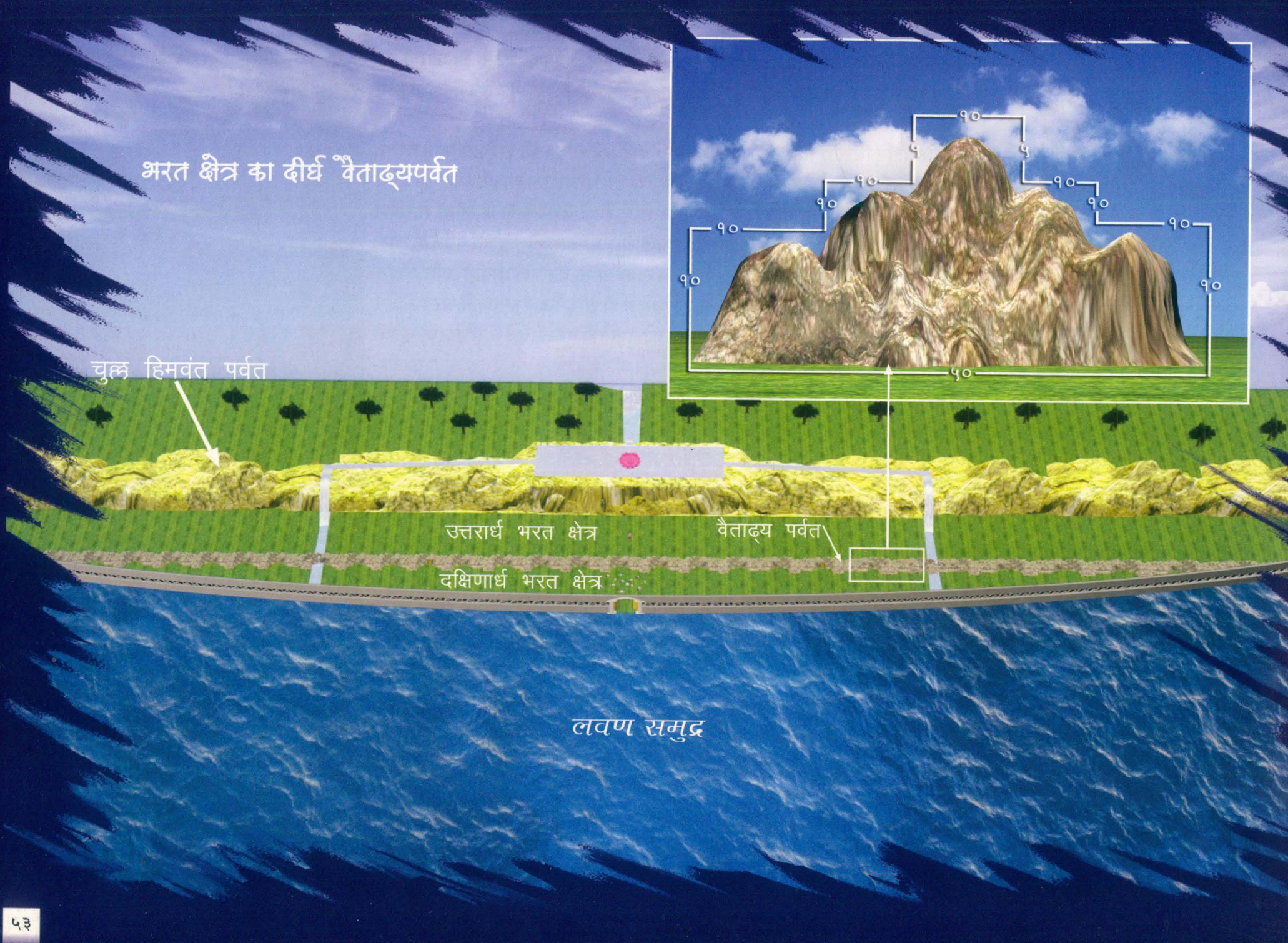
भरत क्षेत्र का दीर्घ वैताढ्यपर्वत
चुल्ल हिमवंत पर्वत
उत्तरार्ध भरत क्षेत्र
वैताढ्य पर्वत
दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र
लवण समुद्र
१०
५
१०
५
१०
१०
१०
१०
१०
५०

दीर्घ वैताढ्यपर्वत.....

हिमवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में २४८ योजन और ३ कला को छोड़कर तथा लवणसमुद्र से उत्तर दिशा में भी उतना ही भाग छोड़कर बीच में मध्यस्थ पुरुष समान रुप्यमय वैताढ्यपर्वत आया है। इससे इस भरत क्षेत्र के दो विभाग हो जाते हैं। इस वैताढ्यपर्वत का विस्तार ५० योजन है और इसकी ऊँचाई २५ योजन की है[१] जो प्रथम खंड के स्वरूप में पहचाना जाता हैं। यह ६ योजन और १ कोस पृथ्वी के अन्दर रहा है, क्योंकि मेरु सिवाय सर्व पर्वत अपनी अपनी ऊँचाई के चौथे भाग पृथ्वी में अवगाढ होते हैं।

इस वैताढ्य की दक्षिण और उत्तर की और समभूतला से ऊँचा १० योजन छोड़कर चौड़ाई में १० योजन और लम्बाई में वैताढ्य समान ही १-१ मेखला है[२]। यहाँ आगे वैताढ्य की चौड़ाई जो मूल में ५० योजन थी वह घटकर ३० योजन रहती है। दोनों मेखला पर मेखला के माप की खेचरों (विद्याधरों) की श्रेणियाँ आयी हुई हैं। दोनों ही श्रेणियों में बाग (बगीचा-उद्यान) और पद्मवरवेदिका शोभ रही है। इसके भूमितल भी रत्नजड़ित होते हैं। इसमें जो दक्षिण श्रेणी है उसमें बड़े ५० नगर है और उत्तर श्रेणी में ऐसे ६० नगर हैं[३], तथा इन सब नगरों के आस-पास इनके अपने देश आए है। दक्षिण श्रेणी का मुख्य नगर का नाम ''गगनवल्लभ'' है और उत्तर श्रेणी के मुख्य नगर का नाम ''रथनुपुर चक्रवाल'' है। ये दोनों मुख्य नगर इसलिए कहलाते हैं कि ये अपनी-अपनी श्रेणी के महासमृद्धशाली राजाओं की नगरियाँ हैं।

इस दोनों श्रेणियों से १०-१० योजन ऊपर जाने के बाद दोनों तरफ १-१ मेखला आती है - अर्थात् विद्याधरों की श्रेणियों से १० योजन उपर जाने के बाद दो श्रेणियां आती हैं। वहाँ शक्रेन्द्र के सोम-यम-वरुण तथा वैश्रमण-कुबेर नाम के लोकपाल (आभियोगिक) देवताओं का निवास होता है[४]। वह देव पल्योपम की आयु वाले होते है तथा उनके भवन रत्नमय होते हैं जो बाहर से गोल तथा अन्दर से चतुष्कोण होते हैं। इन दोनों श्रेणियों में भी पद्मवरवेदिका तथा उद्यान (वनखंड) आए हुए हैं, इनका व्यास १० योजन का होता है। वैताढ्यपर्वत का दूसरा खंड १० योजन ऊँचा और ३० योजन चौड़ा है।

यह पूर्वोक्त सेवक (आभियोगिक) देवो की श्रेणि से ऊंचे ५ योजन जाने के बाद वैताढ्यपर्वत का उपर का भाग आता है यह भाग विविध प्रकार के रत्नों से मनोहर हैं, और १० योजन विस्तारवाला है। इसके मध्य में पद्मवरवेदिका और इसके दोनों तरफ वनखंड (बगीचे) आए हुए हैं। इन दोनों बगीचे में क्रीडापर्वत है और उसके ऊपर कदली गृह में तथा वनादि में व्यंतर देव अपनी इच्छानुसार क्रीडा करते हैं। वैताढ्यपर्वत का यह तीसरा खंड जो ५ योजन ऊँचा और १० योजन चौड़ा है[५]।

इसी तरह सब कुछ उत्तर में आए हुए ऐरावत क्षेत्र में रहे हुए दीर्घ वैताढ्यपर्वत के बारे में जानना। मात्र फरक इतना है कि उत्तर में सौधर्मेन्द्र के बदले ईशानेन्द्र के लोकपाल रहते हैं। महाविदेह क्षेत्र में भी उत्तर-दक्षिण दिशा में रहे हुए ३२ विजयों में आए हुए दीर्घ वैताढ्यपर्वतों के मेखला की लंबाई समान होने से उन पर ५५-५५ नगरों की श्रेणियां आई है। अतः कुल ११०-११० नगर होते हैं। अब जंबूद्वीप में कुल मिलाकर १ भरतक्षेत्र-१ ऐरावत क्षेत्र तथा ३२ विजयों के ३२ दीर्घ वैताढ्यपर्वत कुल ३४ होते हैं, अतः ३४ X ११० = ३,७४० विद्याधरों के नगर हैं।

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-१७८ (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-१८६ (३) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-१८७ (४) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१ सूत्र-१८८-१८९ (५) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-४६ से ८०

26

The China Wall

The great China wall was built some 2500 year ago and the satellite photographs show that the wall is about 2000 k.m.s. long. If the earth were round, the wall would have to be built like an arc but it was built straight because those who constructed the wall believed the earth is flat. The round earth would have cracked the wall but there is no crack that proves the earth is flat.

The canal in china

A big canal in China is 700 miles long. When it was constructed no thought was given to the curvature of the earth. This Chinese canal is a challenge to those who say that the earth is round.

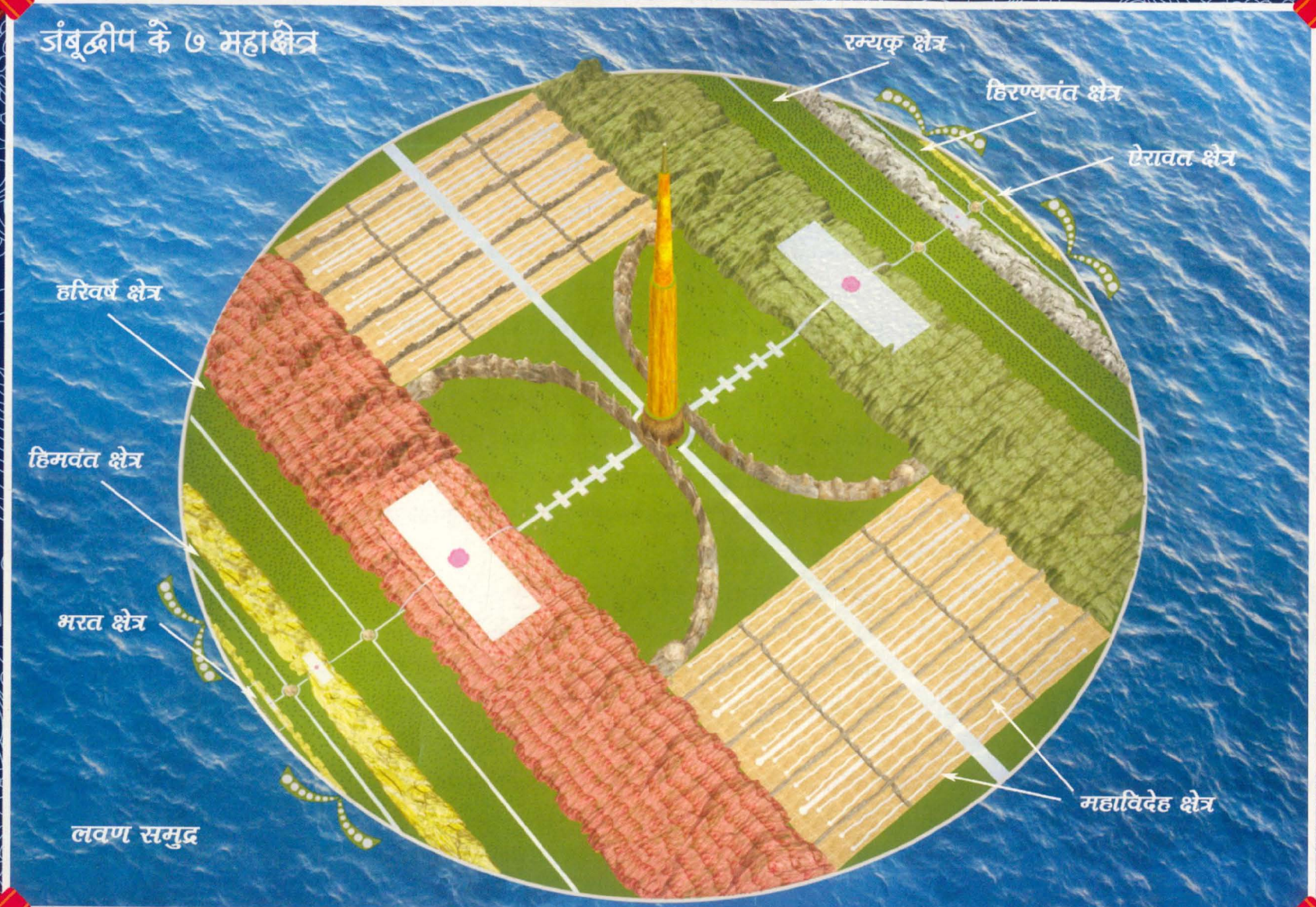
जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र
रम्यक् क्षेत्र
हिरण्यवंत क्षेत्र
ऐरावत क्षेत्र
हरिवर्ष क्षेत्र
हिमवंत क्षेत्र
भरत क्षेत्र
महाविदेह क्षेत्र
लवण समुद्र

जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र.....

हम सब जहाँ रहते हैं वह भरत क्षेत्र हैं। इस भरत क्षेत्र से जैसे जैसे उत्तर में जायेंगे वैसे वैसे पहला हिमवंत क्षेत्र आता है, उसके बाद हरिवर्ष क्षेत्र आता है और उसके बाद महाविदेह क्षेत्र आता है उसके बाद रम्यक् क्षेत्र तथा हिरण्यवंत क्षेत्र और अंत में ऐरावत क्षेत्र आता है अथवा दूसरे ढंग से विचारें तो... दक्षिण समुद्र के पास में रहा हुआ प्रथम भरत क्षेत्र बाद में दूसरा हिमवंत क्षेत्र और तीसरा हरिवर्ष क्षेत्र आता हैं और उत्तर समुद्र के पास में पहला ऐरावत क्षेत्र दूसरा हिरण्यवंत क्षेत्र और तीसरा रम्यक् क्षेत्र है तथा मध्यभाग में महाविदेह क्षेत्र आया हुआ है। इस ७ (सातों) क्षेत्र के अधिपति देवगण-महाकांति, वैभव, बल युक्त एवं १ पल्योपम के आयुष्यवाले उस उस क्षेत्र के नामानुसार ही जाने जैसे कि भरत क्षेत्र का भरतदेव.....।

इस ७ महाक्षेत्रों में से भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी + अवसर्पिणी के ६-६ आरे वर्तते होते हैं। जंबूद्वीप के मध्य में रहे हुए महाविदेह क्षेत्र में अवसर्पिणी के चौथे आरे जैसा काल ही सदा रहता है। हिमवंत क्षेत्र + हिरण्यवंत क्षेत्र में तीसरे आरे जैसा काल होता है तथा हरिवर्ष क्षेत्र और रम्यक् क्षेत्र में दूसरे आरे सम (समान) काल ही रहता है तथा महाविदेह क्षेत्र में मेरु पर्वत के ऊपर-नीचे आये हुए देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र में सदा प्रथम आरे जैसा ही काल रहता हैं। अन्य विशेष जानकारी... नीचे दिये गए कोष्टक से जानिये...

क्रम	सात महाक्षेत्रो के नाम[१]	लम्बाई (पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक)	चौड़ाई योजन-कला	कितने खण्ड प्रमाण	किस स्थान पर ?	मध्यगिरि नाम	महानदियों के नाम
१	भरत क्षेत्र	१४,४७१ $^{५}/_{१९}$ यो.	५२६-६	१	मेरु के दक्षिण में समुद्र स्पर्शी	दीर्घ वैताढ्य	पूर्व में गंगा नदी पश्चिम में सिंधु नदी
२	ऐरावत क्षेत्र	१४,४७१ $^{५}/_{१९}$ यो.	५२६-६	१	मेरु के उत्तर में समुद्र स्पर्शी	दीर्घ वैताढ्य	पूर्व में रक्ता नदी पश्चिम में रक्तवती नदी
३	हिमवंत क्षेत्र	३७,६७४ $^{१५}/_{१९}$ यो.	२,१०५-५	४	हिमवंत पर्वत के उत्तर में	शब्दापाती वृत्त वैताढ्य	पूर्व में रोहिता नदी पश्चिम में रोहितांशा नदी
४	हिरण्यवंत क्षेत्र	३७,६७४ $^{१५}/_{१९}$ यो.	२,१०५-५	४	शिखरी पर्वत के दक्षिण में	विकटापाती वृत्त वैताढ्य	पूर्व में सुवर्णकुला नदी पश्चिम में रुप्यकुला नदी
५	हरिवर्ष क्षेत्र	७३,९०१ $^{१७}/_{१९}$ यो.	८,४२१-१	१६	महाहिमवंत पर्वत के उत्तर में	गंधापाती वृत्त वैताढ्य	पूर्व में हरिसलिला नदी पश्चिम में हरिकान्ता नदी
६	रम्यक् क्षेत्र	७३,९०१ $^{१७}/_{१९}$ यो.	८,४२१-१	१६	रुक्मि पर्वत के दक्षिण में	माल्यवंत वृत्त वैताढ्य	पूर्व में नरकान्ता नदी पश्चिम में नारीकान्ता नदी
७	महाविदेह क्षेत्र	१,००,००० यो.	३३,६८४-४	६४	निषध तथा निलवंत पर्वत के बीच में	मेरुपर्वत	पूर्व में सीता नदी पश्चिम में सीतोदा नदी

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-२३, (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष. - ६, सूत्र-१२५, (C) ठाणांग सूत्र-७/५५५, (D) समवायांग सूत्र-७/३ (E) तिलोय पण्णत्ति (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) चउत्थो महाधिगारे, सुत्त-९१, (F) ज्योतिषकरंडक २०५९ - सटीक, (G) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१५ श्लोक-२५९/२६०

हम पृथ्वी की गोलाई से इतने अधिक परिचित हो गये है कि इसके विरुद्ध कही जानेवाली किसी भी बात पर हम सहज विश्वास नहीं कर सकते। इस कारण कन्दुकाकार पृथ्वी को चपटा कहकर एक अर्वाचीन सिद्धांत ने सचमुख हमें आश्चर्य में डाल दिया है। हो सकता है, भविष्य में किसी दिन पृथ्वी 'रकाबी' के आकार की बताई जाए..! मि.जे.मेकडोनाल्ड नामक अमेरिकन वैज्ञानिकने अपने एक लेख मे अनेक दृढ प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पृथ्वी नारंगी के समान गोल नहीं है।

दिखती है वो पृथ्वी है... यह बात अब वैज्ञानिकों की असत्य बन गई है, क्योंकि अमेरिकन डॉ. ब्रुके अपनी पृथ्वी जैसी दुसरी १० करोड़ पृथ्वी बता रहे हैं। यह अहेवाल (बात) धर्मयुग हिन्दी ता. ८/७/१९६७ के अंक मे प्रगट हुआ था।

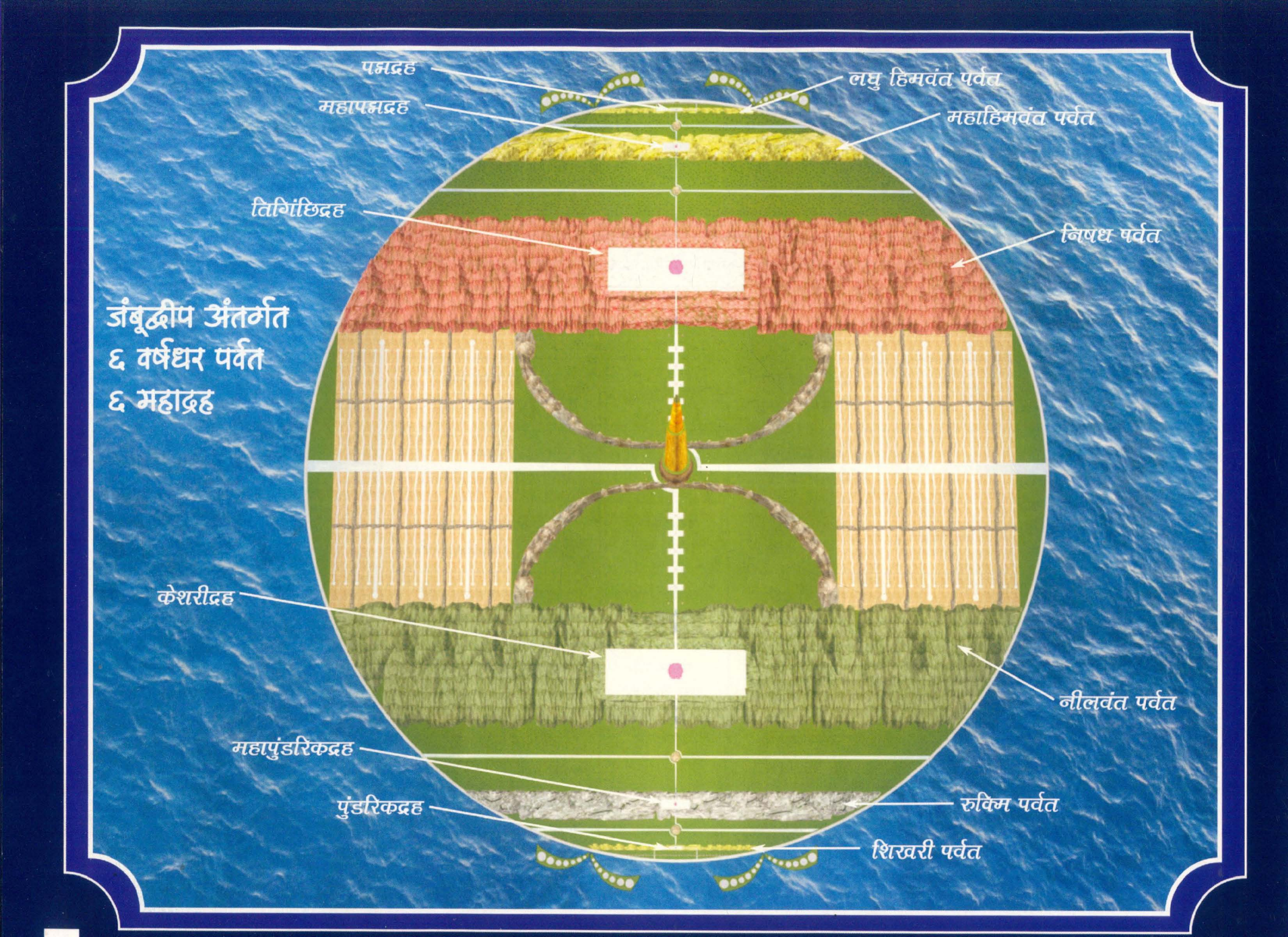
पद्मद्रह
महापद्मद्रह
तिगिंछिद्रह
केशरीद्रह
महापुंडरिकद्रह
पुंडरिकद्रह
लघु हिमवंत पर्वत
महाहिमवंत पर्वत
निषध पर्वत
नीलवंत पर्वत
रुक्मि पर्वत
शिखरी पर्वत
जंबूद्वीप अंतर्गत
६ वर्षधर पर्वत
६ महाद्रह

जंबूद्वीप के ६ वर्षधर (कुलगिरि) पर्वत.....

क्रम	६ कुल गिरि के नाम[1]	किस स्थान पर है ?	कितने खण्ड प्रमाण	वर्ण	लम्बाई	चौडाई[2] यो. / कला	ऊँचाई	कूट संख्या	निकलते सरोवर	निकलती नदियाँ	गहराई
१	लघुहिमवंत पर्वत	उत्तरार्ध भरत की उत्तर दिशा में	२	सुवर्णमय (पीतवर्ण)	२४,९३२ १/२ योजन	१,०५२ - १२	१०० यो.	११	पद्मद्रह	पूर्व में गंगा नदी, पश्चिम में सिंधु नदी उत्तर में रोहिता नदी	२५ योजन
२	महाहिमवंत पर्वत	मेरु की दक्षिण में हिमवंत के अंत में	८	सर्व रत्नमय	५३,९३१ ६/१९ यो.	४,२१० - १२	२०० यो.	८	महापद्मद्रह	दक्षिण में रोहितांशा नदी उत्तर में हरिकांता नदी	५० योजन
३	निषध पर्वत	मेरु की दक्षिण में हरिवर्ष के अंत में	३२	रक्त सुवर्णमय	९४,१५६ यो. २ कला	१६, ८४२- २	४०० यो.	९	तिगिंछिद्रह	दक्षिण में हरिसलिला नदी उत्तर में सीतोदा नदी	१०० योजन
४	नीलवंत पर्वत	मेरु की उत्तर में रम्यक् के अंत में	३२	वैडुर्य रत्न (नीलवर्णमय)	९४,१५६ यो. २ कला	१६, ८४२- २	४०० यो.	९	केशरीद्रह	दक्षिण में सीता नदी उत्तर में नारिकान्ता नदी	१०० योजन
५	रुक्मि पर्वत	मेरु की उत्तर में हिरण्यवंत के अंत में	८	रजतमय (चांदी का)	५३,९३१ ६/१९ यो.	४,२१० - १२	२०० यो.	८	महापुंडरिकद्रह	दक्षिण में नरकांता नदी उत्तर में रुप्यकुला नदी	५० योजन
६	शिखरी पर्वत	मेरु की उत्तर में ऐरावत की दक्षिण में	२	जात्यवंत सुवर्ण का	२४,९३२ १/२ योजन	१,०५२ - १२	१०० यो.	११	पुंडरिकद्रह	दक्षिण में सुवर्णकुला नदी पूर्व में रक्ता नदी पश्चिम में रक्तवती नदी	२५ योजन

जंबूद्वीप के ६ महाद्रह....

क्रम	महाद्रहो के नाम[3]	किस पर्वत पर है ?	लम्बाई	चौडाई	गहराई	किस देवी का निवास	कितने द्वार ?	कितनी नदियाँ नीकली ?
१	पद्मद्रह	लघुहिमवंत पर्वत	१००० यो.	५०० यो.	१० यो.	श्रीदेवी	३-पू.प.उ.	पू. गंगा, प. सिंधु,उ. रोहितांशा
२	महापद्मद्रह	महाहिमवंत पर्वत	२००० यो.	१००० यो.	१० यो.	ह्रीदेवी	२ - द. उ.	द. रोहिता, उ. हरिकान्ता
३	तिगिंछिद्रह	निषध पर्वत	४००० यो.	२००० यो.	१० यो.	धीदेवी	२ - द. उ.	द. हरिसलिला, उ. सीतोदा
४	केशरीद्रह	नीलवंत पर्वत	४००० यो.	२००० यो.	१० यो.	कीर्तिदेवी	२ - द. उ.	द. सीता उ. नारीकान्ता
५	महापुंडरिकद्रह	रुक्मि पर्वत	२००० यो.	१००० यो.	१० यो.	बुद्धिदेवी	२ - द. उ.	द. नरकान्ता, उ. रुप्यकुला
६	पुंडरिकद्रह	शिखरी पर्वत	१००० यो.	५०० यो.	१० यो.	लक्ष्मीदेवी	३ - पू.प.द.	द. सुवर्णकुला,पू. रक्ता, प. रक्तवती

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-२४, (B) ठाणांग सूत्र, अध्य.-६, सूत्र-५२२, (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-२७ (३) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-१६८ से १७२

जैनधर्म अतीव उच्च श्रेणी का है। उसके मुख्य तत्त्व विज्ञान के आधार पर रचित है। जैसे-जैसे पदार्थ विज्ञान प्रगति करता जा रहा है, वैसे-वैसे वह जैनधर्म के सिद्धांतो को सिद्ध कर रहा है।

Italy - पाश्चात्य विद्वान
= Dr.L.P. टेस्सीटोरी।

जैनधर्म एक ऐसा अद्वितीय विश्वधर्म है कि जो प्राणी मात्र की रक्षा करने के लिए सक्रिय प्रेरणा प्रदान करता है, मैंने अन्य किसी धर्म में ऐसा दयाभाव नही देखा।

- अमेरिकी विदुषी
ओर्डी कार्जेरी

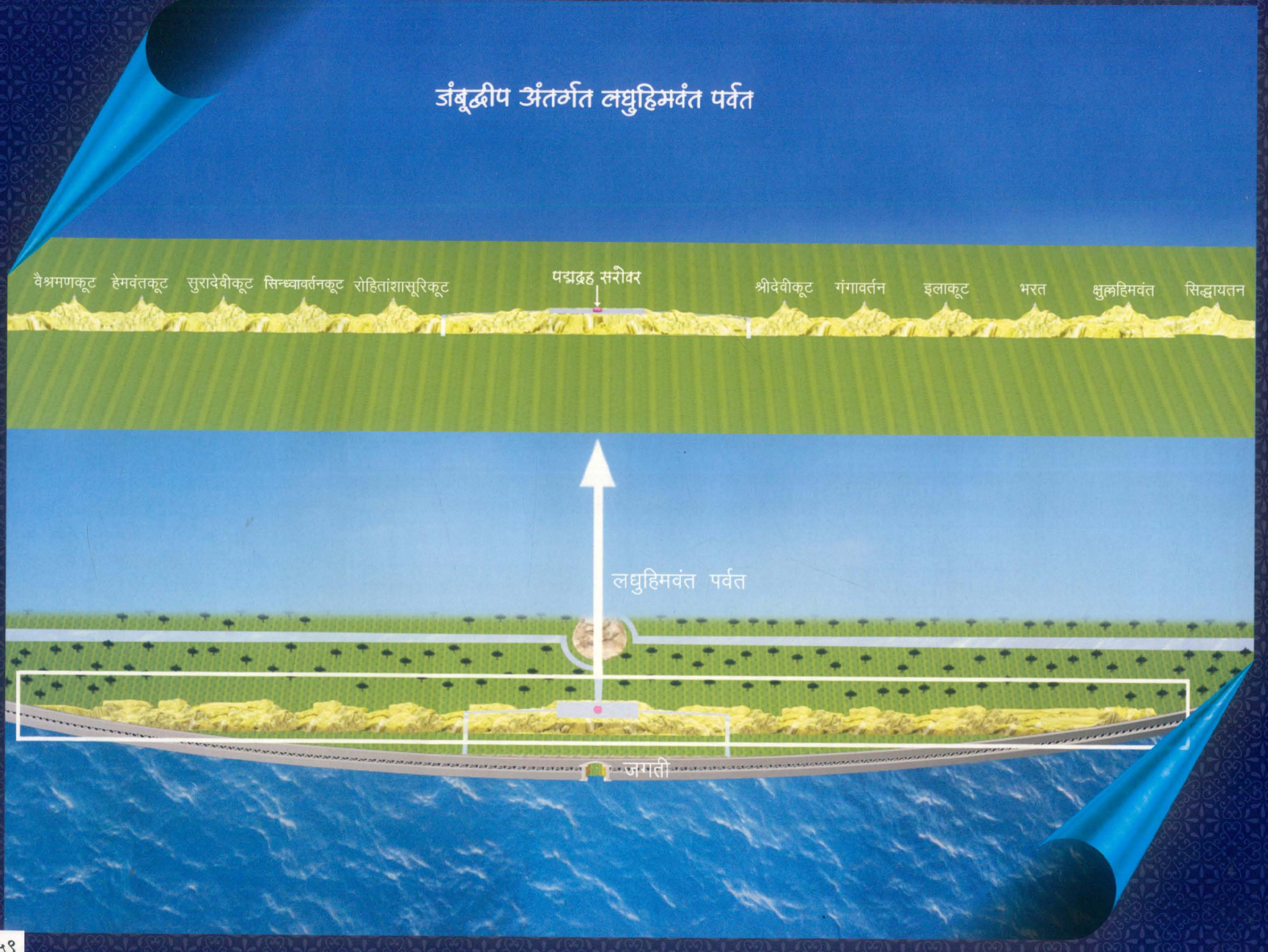

जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत पर्वत
वैश्रमणकूट
हेमवंतकूट
सुरादेवीकूट
सिन्ध्वावर्तनकूट
रोहितांशासूरिकूट
पद्मद्रह सरोवर
श्रीदेवीकूट
गंगावर्तन
इलाकूट
भरत
क्षुल्लहिमवंत
सिद्धायतन
लघुहिमवंत पर्वत
जगती

जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत पर्वत का वर्णन.....

भरत क्षेत्र की पूर्णाहुति के बाद उत्तर दिशा में जातिवंत सुवर्णमय लघुहिमवंत पर्वत शोभायमान हो रहा हैं। इसके किनारे पूर्व समुद्र तक और दूसरे विभाग पश्चिम समुद्र तक लम्बे हैं। यह १०० योजन ऊँचा है और २५ योजन पृथ्वी में अवगाढ है। इसकी चौड़ाई १,०५२ योजन तथा १२ कला कही हुई हैं।

इस पर्वत पर वैताढ्यपर्वत के समान ही पूर्व दिशा से आरंभ होकर सिद्धायतनादि देदिप्यमान ११ शिखर हैं। जो कुछ इस प्रकार हैं। (१) सिद्धायतन (२) क्षुल्लहिमवंत (३) भरत (४) इला कूट (५) गंगावर्तन (६) श्री देवी कूट (७) रोहितांशासूरि कूट (८) सिन्ध्वावर्तन कूट (९) सुरादेवी कूट (१०) हैमवंत कूट और (११) वैश्रमण कूट। ये सारे शिखर रत्नमय होते हैं, जो गोपृच्छ के समान आकारवाले ५०० योजन ऊँचे, मूल में लंबे-चौड़े ५०० योजन, मध्य में ३७५ योजन और ऊपर २५० योजन हैं। प्रत्येक शिखर का घेरावा मूल के पास में १,५८१ योजन से कुछ अधिक है, मध्य भाग में १,१८७ योजन से कुछ कम है और ऊपर ७९१ योजन से कुछ कम हैं।

सिद्धायतन नाम के प्रथम शिखर पर देदिप्यमान एक सिद्ध मंदिर (शाश्वत मंदिर) है, जो ५० योजन लम्बा, २५ योजन चौड़ा और ३६ योजन ऊँचा है, और इसके तीन प्रकाशमय द्वार दक्षिण दिशा रहित ऐसी तीनों दिशाओं में तीन द्वार आए हुए हैं, इन प्रत्येक द्वार की ऊँचाई ८ योजन और चौडाई ४ योजन की है। इसलिए मंदिर में एक मणिपीठिका है जो ८ योजन लम्बी और चौड़ी है तथा ४ योजन ऊँची है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक देवछंदक है, जो ८ योजन से विशेष ऊँचा है और ८ योजन ही लम्बा चौड़ा है। उसमें भी १०८-१०८ शाश्वती सिद्ध भगवंतों की प्रतिमाएं आई हुई हैं।

शेष १० शिखर पर भी १-१ मंदिर आया हुआ हैं। वह प्रत्येक ६२ १/२ योजन लम्बा-चौड़ा तथा ३१ १/४ योजन ऊँचा है, प्रत्येक शिखर के नामानुसार ही उनके स्वामी देव से अधिष्ठित हैं। दूसरे, तीसरे, दसवें और ग्यारहवें इन चार शिखरों पर देवों का और शेष ६ शिखरों पर देवियों का आधिपत्य होता है। ये ६ देवियाँ इस तरह होती है - प्रथम दो "इलादेवी" और "सुरादेवी" नामक दिक्कुमारीका हैं। दुसरी तीन नदियों की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं और छट्ठी लक्ष्मीदेवी नामक देवी हैं। यह सब देवी- देवताओं का आयुष्य एक पल्योपम का होता है, जो विजयदेव की तरह भोगों को भोगते हैं। इनमें जो देवियाँ हैं वे भवनपति जाती की होती हैं। क्योंकि व्यंतर देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य तो आधा पल्योयम ही होता हैं। अब से जो भी आगे देवियों की बातें आयेगी, वे देवियाँ भी भवनपति जाति की ही समझना।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष. - ४ (B) स्थानांगसूत्र-९, उद्देशा-३, (C) स्थानांगसूत्र-२, उद्देश-३ (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-१८१ से २१२

29

The Earth Appears Flat in the Railway Construction....

Whenever any long railway line is laid or a road is constructed or a canal is dug, the engi-neers never consider the convex shape of the earth in preparing the design, but the take flat paper and design the even surface of the land because they know that the earth is flat and not convex.

The Maps are flat

The maps being prepared for the sea voyages, do not consider the earth to be round like a ball, while depicting the longitudes, the latitudes, the cities etc. This proves that the earth is flat.

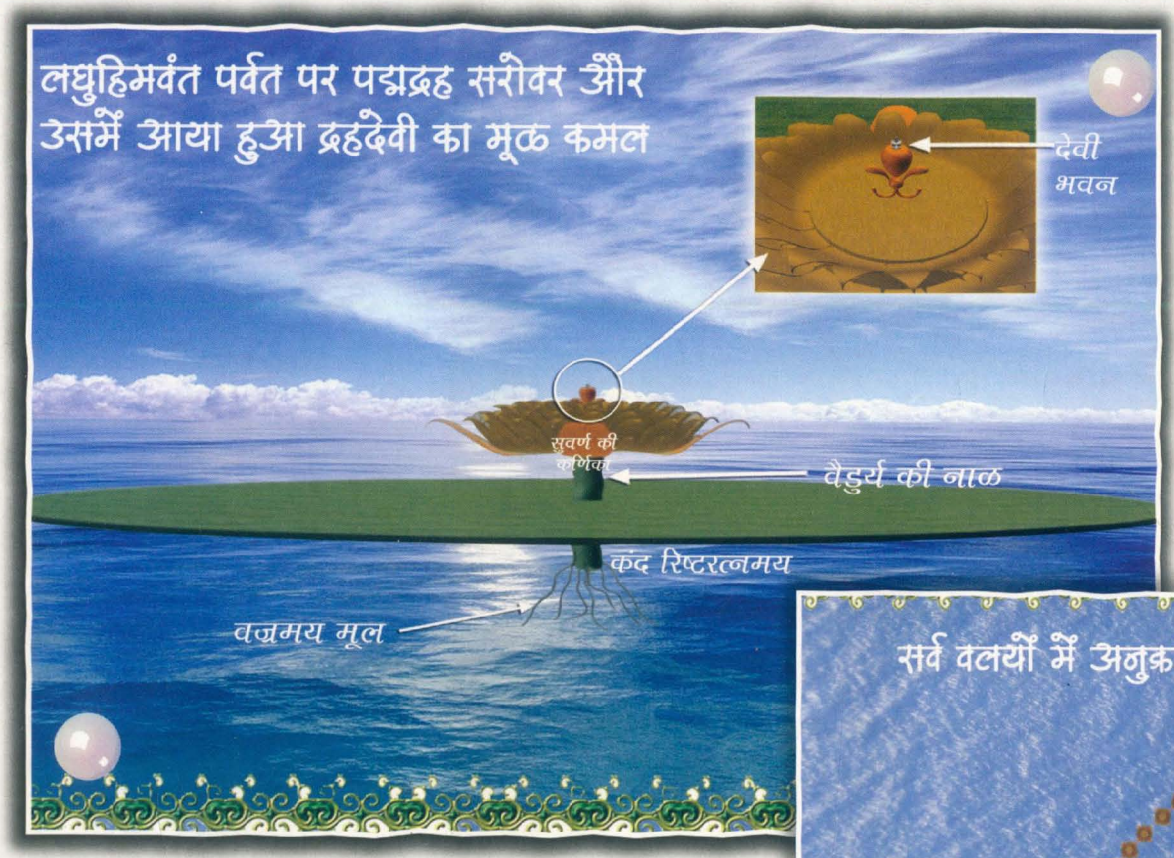
लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह सरोवर और
उसमें आया हुआ द्रहदेवी का मूळ कमल
देवी
भवन
सुवर्ण की
कर्णिका
वैडुर्य की नाळ
कंद रिष्टरत्नमय
वज्रमय मूल

सर्व वलयों में अनुक्रम से आधे आधे प्रमाणवाले कमलों की व्यवस्था
षष्ठम् वलय में ४८००००० कमल
पंचम वलय में ४०००००० कमल
चतुर्थ वलय में ३२००००० कमल
तृतीय वलय में १६००० कमल
द्वितीय वलय में २४०११ कमल
प्रथम वलय में १०८ कमल
वृह देवी का मुख्य कमल

लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह सरोवर.....

इस लघुहिमवंत पर्वत पर मध्य भाग में पद्मद्रह नाम का सरोवर आया है जो १० योजन गहरा, १००० योजन लम्बा और ५०० योजन चौड़ा है। तथा वह सरोवर पद्मवेदिका और सुन्दर वन से शोभायमान है। चारों दिशाओं में तोरणवाले तीन-तीन मनोहर सोपान हैं। यह पद्मसरोवर तथा आगे कहनेवाले महापद्मद्रहादि सभी महाद्रहो पूर्व-पश्चिम लम्बे और उत्तर-दक्षिण में चौड़े है। इस पद्मसरोवर में एक मुख्य कमल हैं जो एक योजन लम्बा-चौड़ा आधा योजन ऊँचा और उतना ही जल से ऊपर है। यह कमल १० योजन जल के अन्दर डूबा हुआ हैं और इसके आसपास एक जगती किला है, वह जंबूद्वीप की जगती-किले से समान[1] झरोखों से युक्त होने से अत्यंत रमणीय लगता है। यह जगती-किला १० योजन जल में डूबा है और ८ योजन जल के ऊपर होने से कुल १८ योजन ऊँचा है।

इस कमल का मूल वज्रमय है, इसका कंद रिष्टरत्नमय है, इसकी नालिका वैडुर्यरत्न की तथा इसके बाहर के पत्र वैडुर्यरत्नमय और अभ्यंतर पत्र सुवर्णमय होते हैं।[2] इसके केसर के वृत्त लाल सुवर्णमय हैं और कर्णिका पीले सुनहरे वर्ण की हैं। जो ये कर्णिका दो कोस लम्बी-चौड़ी और एक कोस ऊँची है और इसके अंदर श्री देवी का भवन आया हुआ है। यह भवन एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और लगभग १ कोस ऊँचा है। इसमें दक्षिण-उत्तर और पूर्व इन तीनों दिशाओं में ५०० धनुष्य ऊँचा और आधा अर्थात् २५० कोस चौड़ा १-१ द्वार-दरवाजा है और इन भवनों के मध्यभाग में एक मणिपीठिका हैं यह मणिपीठिका ५०० धनुष्य के विस्तारवाली तथा २५० धनुष्य की ऊँचाईवाली है, और इसी के उपर श्रीदेवी के योग्य उत्तम शय्या है।

ऊपर जो मुख्य कमल कहा है उस मूल कमल के आसपास इससे आधे आधे माप के ६ तरह के कमलों के ६ समान वलय हैं। प्रथमवलय में (मंडल में) १०८ कमल हैं, वे मूल कमल से आधे माप के हैं, जिसमें श्रीदेवी के आभूषण भरे हुए रहते हैं। दूसरे वलय में वायव्य, उत्तर और ईशान दिशाओं में ४००० सामानिक देवों के ४००० कमल हैं। पूर्व दिशा में महत्तरा देवियों के ४ कमल हैं तथा अग्निकोण में अभ्यंतर सभा में बैठने वाले देवों के ८००० कमल हैं। दक्षिण दिशा में मध्यसभा में बैठनेवाले देवों के १०,००० कमल हैं और नैऋत्य कोने में बाह्य पर्षदा के देवों के १२,००० कमल है, और पश्चिम दिशा में ७ सेनापति के ७ कमल हैं। इस तरह दूसरे वलय का स्वरूप जाने। तीसरे वलय में प्रत्येक दिशा में ४०००,४०००,४०००,४०००=१६,००० कमल है और वे १६,००० आत्मरक्षक देवों के हैं। चौथे, पांचवें और छट्ठे इन तीन वलयों में आभियोगिक देवों के कमल है, वह इस तरह-चौथे वलय में अभ्यंतर पर्षदा के आभियोगिक देवों के ३२,००,००० कमल हैं, पांचवे वलय में मध्यम पर्षदा के आभियोगिक देवों के ४०,००,००० कमल है और छट्ठे वलय में बाह्य पर्षदा के आभियोगिक देवों के ४८,००,००० कमल हैं। इस तरह सर्व मिलाकर कुल १,२०,५०,१२० कमल होते हैं।[3]

(१) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति (मूल) सूत्र, (२) अत्रायं विशेषोऽस्ति-बृहत्क्षेत्रविचारवृत्यादौ बाह्यानि चत्वारि पत्राणि वैडुर्यमयानि शेषाणि रक्तसुवर्णमयान्युक्तानि ।। किं च जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्रे जाम्बूनदमीषद्रक्तस्वर्ण तन्मयान्यभ्यन्तरपत्राणि इत्युक्तम् ।। सिरिनिलयमितिक्षेत्रविचारवृत्तौ तु पीतस्वर्णमयान्युक्तानि इति ।। (३) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-१९६ से २१३, (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-२१४ से २३५

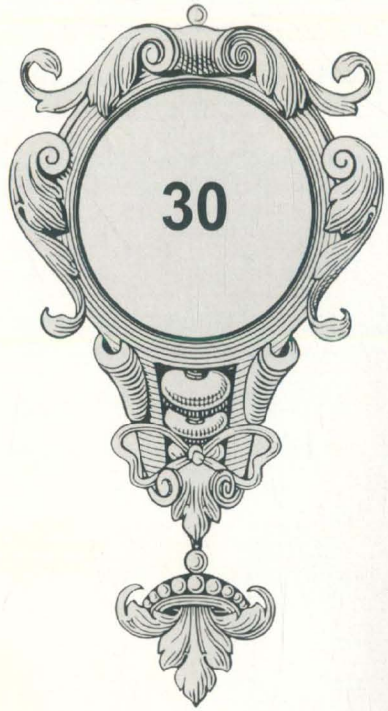

दिनांक ३०/०८/१९०५ के सूर्यग्रहण का अमेरिका की एस्ट्रोलो-जिकल ब्यूरो के एफेमरीज में निर्देश है। उसमें यह बताया गया है कि, "पश्चिमी उत्तरी आफ्रिका, उत्तरी अन्य महासागर, ग्रीनलैण्ड, आईसलैण्ड, उत्तरी एशिया, साइबेरिया और ब्रिटिश अमेरिका के संपूर्ण भागों में यह सूर्यग्रहण दिखाई देगा।" अब प्रश्न यह खडा होता है कि अमेरिका और एशिया में यह ग्रहण एक साथ कैसे दिख सकता है ? जबकी अमेरिका और एशिया तो आधुनिक मान्यतानुसार विभिन्न गोलार्द्ध में है।

अमेरिकन इन्फर्मेशन सर्विस द्वारा बाहर आते पाक्षिक बुलेटिन तारीख : ४/११/१९६३ के अंक में "पृथ्वी अनेक" है। ऐसी बात बताई गई है।

जंबूद्वीप अंतर्गत हिमवंत क्षेत्र....

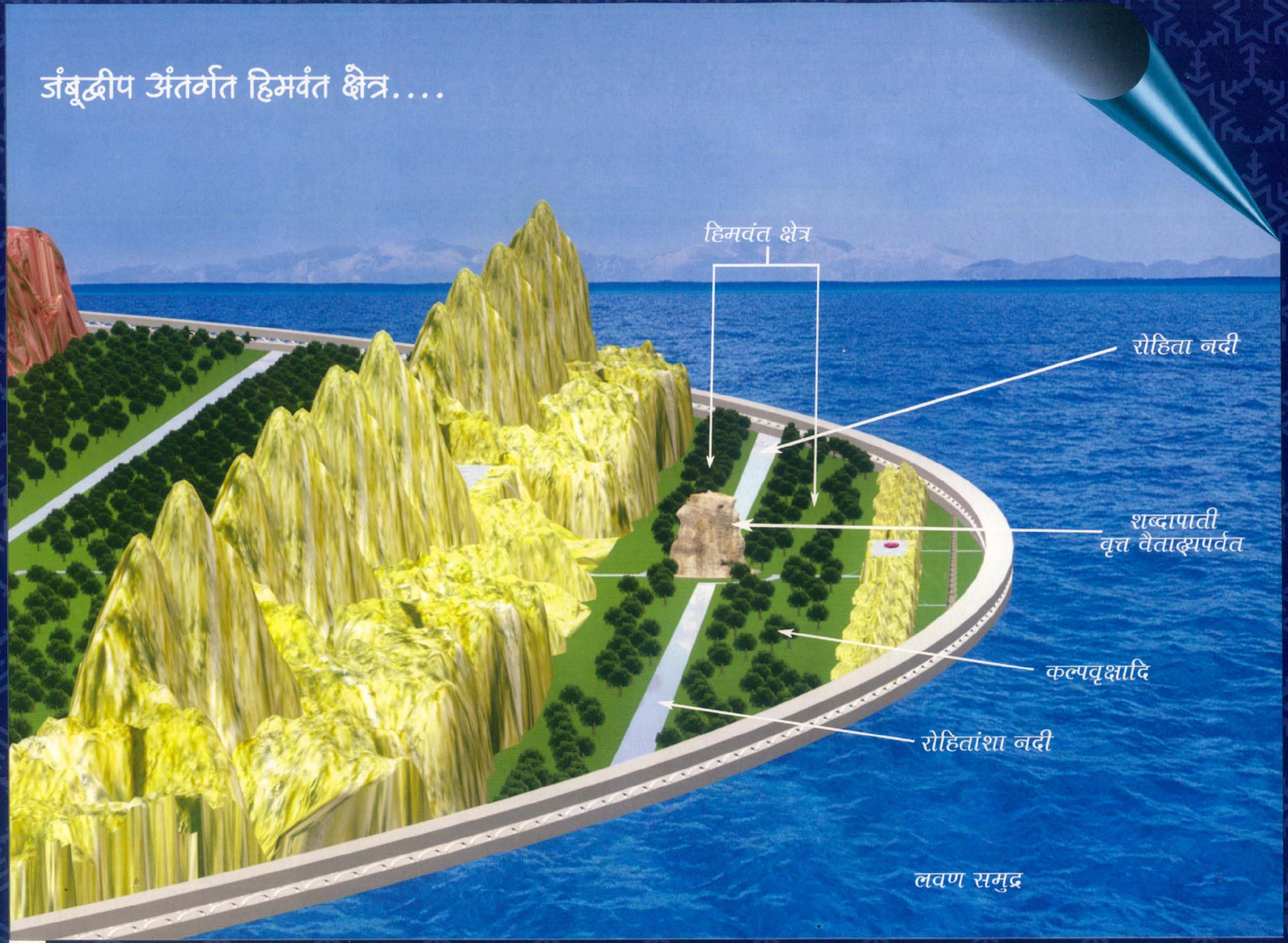

जंबूद्वीप अंतर्गत हिमवंत क्षेत्र.....

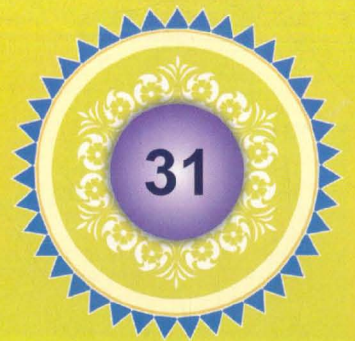

लघुहिमवंत और महाहिमवंत पर्वत के बीच सुरक्षित पर्यंकासन में रहा हुआ श्रेष्ठ और सुन्दर हिमवंत नाम का क्षेत्र हैं। जिसके पूर्व और पश्चिम विभाग लवणसमुद्र को स्पर्श करते हैं। युगलिक मनुष्यों को आसनादि के लिए हेम (सुवर्ण) देने का होने के कारण अथवा इनके हैमवंत नाम के देव अधिपति होने के कारण इस क्षेत्र का नाम ''हिमवंत'' कहलाता हैं। इस क्षेत्र की चौड़ाई २,१०५ योजन और ५ कला हैं। योजन योजन प्रमाण खण्डों से बना हुआ इसका क्षेत्रफल ६,७२,५३,१४५ योजन, ५ कला और उपर ८ विकला प्रमाण है।

इस क्षेत्र के मध्यभाग में सर्वरत्नमय तथा प्याला (कटोरा) समान गोलाकार वृत्त वैताढ्यपर्वत शोभायमान हो रहा हैं। ''शब्दापाती'' नाम का यह पर्वत १,००० योजन ऊँचा, २५० योजन पृथ्वी में निमग्न और १,००० योजन लम्बा-चौड़ा है, तथा इसका घेरावा ३,१६२ योजन हैं। इसके भी आसपास सुन्दर पद्मवरवेदिका और वनखंड शोभायमान है। इसके ऊपर एक प्रासाद है, जिसमें ''स्वाति'' नाम का देव है जो १ पल्योपम का आयुष्य धारण करता हैं। इसकी राजधानी आदि सब विजयदेव के समान जाननी चाहिए।

इस वृत्त वैताढ्यपर्वतने हिमवंतक्षेत्र को दो विभागों में बाट दिया है। एक भाग पूर्व हिमवंतक्षेत्र दूसरा पश्चिम हिमवंत क्षेत्र। जिस तरह दो पुत्रवधू आकर घर का बटवारा करने के लिए दो विभाग कर लेती है वैसे ही ''रोहिता'' और ''रोहितांशा'' नाम की दो नदियोंने इस प्रत्येक भाग के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध इस तरह से दो-दो विभाग कर दिये हैं, अतः इस तरह से हैमवंत क्षेत्र के चार विभाग बने हैं तथा इस क्षेत्र के अन्दर ५६,००२ नदियाँ हैं।

इस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव है कि इसकी धरती शक्कर से भी मीठी है। इसके कल्पवृक्ष के पुष्प-फल व पत्र भी चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक स्वादिष्ट हैं। वहाँ के युगलिया लोगों को संतापकारक जूँ-खटमल-मक्खी-मच्छर आदि जीवों का दुःख नहीं है। तथा भूत-प्रेत-यक्ष या रोगादि का किसी भी तरह उपद्रव नहीं है। यहाँ के वाघ-सिंहादि हिंसक पशु भी अहिंसक होते हैं और वे भी युगलिक होने से स्वर्गवासी (देवलोकवासी) बनते हैं। अनाज भी वहाँ बहुत उत्पन्न होता है, परन्तु मनुष्य इसका उपयोग नहीं करता है।

यहाँ के मनुष्य एक कोश ऊँचाईवाले, उत्कृष्ट आयुष्य १ पल्योपम तथा जघन्य पल्योपम में कुछ कम आयुष्य को धरनेवाले, देह की सुंदर आकृति धरनेवाले, ६४ पसलीवाले, अपनी संतान की ७९ दिन पालन-पोषण करके बड़ा करनेवाले, एकांतर अर्थात् एक दिन छोड़कर एक दिन आंवला के जितना आहार लेनेवाले, सुंदरवस्त्रधारी, सेव्य-सेवक भाव से रहित, बड़े विलक्षण (बुद्धिजीवी), प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयणी, पृथ्वी रूप माटी और कल्पवृक्ष के पुष्प-पत्र-फल को खानेवाले, और तो और स्वभाव से अल्प राग-द्वेष करनेवाले, वहाँ के सुवर्ण-मणि-रत्नादि पर ममत्वाभाववाले, हाथी-घोडे आदि सवारी योग्य पशु-प्राणि होने पर भी उनका उपयोग नहीं करने वाले व हमेशा पादचारी अर्थात् पैदल चलनेवाले और अंत में मरकर नियमा देवलोकगमन करनेवाले युगलिया रहते हैं।[१]

(१) (A) जीवाजीवाभिगम-पडि.-३, अधि-४, उद्देशा-१ (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-वक्ष.-४ (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६ श्लोक-३२६ से ३५२

धुरंधर वैज्ञानिक के शब्दों में पृथ्वी कैसी ?

आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि से पृथ्वी के बारे में अनेक कल्पनाए है, कुछ लोग इसे नारंगी की भांति गोल मानते है। तो कुछ लोग इसे लौकी की भांति गोल मानते है। सर जेम्स जीन के शब्दों में संक्षेप और सरल परिचित अभिधानों के प्रयोग द्वारा सापेक्षवाद सिद्धांत द्वारा द्योतित ब्रह्मांड के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है -"वह एक साबुन के बुलबुले सदृश है, जिसके तल पर उतार- चढाव तथा वैषम्य है।"

हिन्दी जैन भारती-
१४ अक्टुम्बर, १९६२

जंबूद्वीप अंतर्गत महाहिमवंत पर्वत....

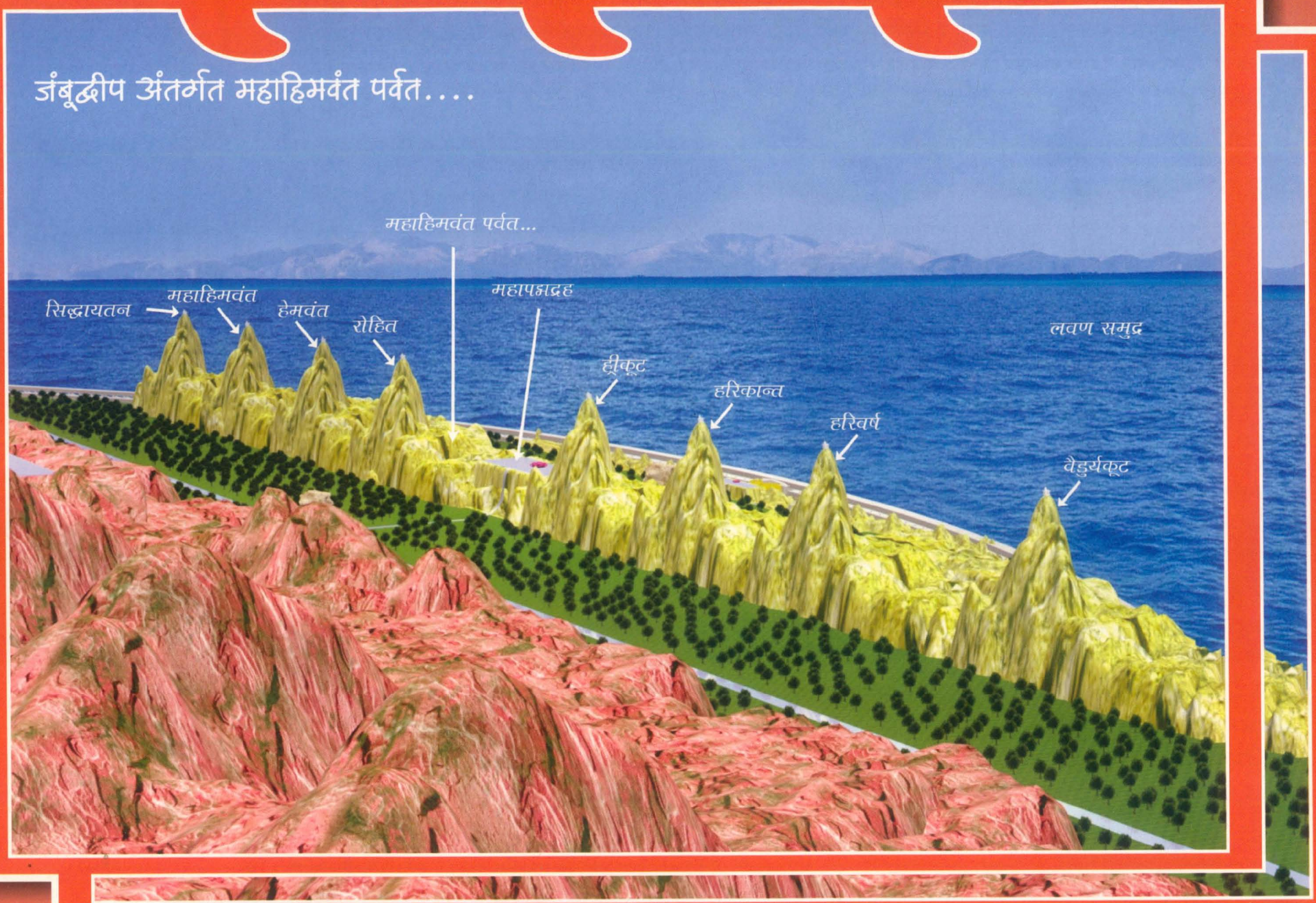

जंबूद्वीप अंतर्गत महाहिमवंत पर्वत.....

पूर्व में बताए गए हिमवंत क्षेत्र के उत्तर दिशा में आगे बढने के बाद सर्वरत्नमय और २०० योजन ऊँचा "महाहिमवंत" नामक विशाल पर्वत आया हुआ है। यह पर्वत ५० योजन पृथ्वी के अंदर हैं, तथा मानो यह पूर्व और पश्चिम समुद्र के अंतर को नापता हो, इस तरह दोनों समुद्रों को स्पर्श कर रहा है, इसकी चौड़ाई ४,२१० योजन और १० कला है।

इस पर्वत पर ८ कूट हैं, उनमें पहला सिद्धायतन, दूसरा महाहिमवंत, तीसरा हेमवंत, चौथा रोहित, पाँचवा ह्रीकूट, छठवाँ हरिकान्त, सातवाँ हरिवर्ष और आठवा वैडूर्यकूट। (इस पर्वत की पूर्व-पश्चिम लम्बी श्रेणी की स्थिति मान, प्रमाण, तथा कूट के शाश्वत मंदिर और प्रासाद का स्वरूप, कूट पर देव-देवियों के प्रासाद-उनकी राजधानी और स्वामीयों का स्वरूप पूर्व के जैसे ही समझना चाहिए।)

इस पर्वत के मध्यभाग में "महापद्म" नामक सरोवर (द्रह) है। यह २,००० योजन लम्बा, १,००० योजन चौड़ा और १० योजन गहरा है, इसके बीच एक सुन्दर कमल है, उस कमल के आसपास अन्य कमलों के छः वलय हैं। इन सर्व कमलों की संख्या पद्मसरोवर के कमलों के समान है, परन्तु उनकी लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई से द्विगुण-द्विगुण (दो गुणा) है। विशेष - दोनों सरोवर समान गहरे होने से दोनों के कमलों की ऊँचाई में समानता है। (आगे के सरोवरों में भी यह बात समझ लेना) मूल कमल में पूर्वोक्त श्रीदेवी के भवन समान भवन हैं और उसमें पल्योपम के आयुष्यवाली ह्रीदेवी रहती है। उस महापद्म सरोवर के दक्षिण दिशा के तोरण में होकर रोहिता नामक नदी निकलकर दक्षिण दिशा में बहती है और वह नदी १,६०५ योजन ५ कला समान पर्वत पर बहकर फिर कुए में रस्सा गिरता है वैसे विशाल धारा रूप में रोहिता प्रपात कुंड में जा गिरती है। पर्वत से कुंड में गिरने के बाद वहाँ से दक्षिण तरफ के तोरण में होकर बाहर निकलकर पूर्वार्द्ध हेमवंतक्षेत्र को दो विभाग में बांटकर शब्दापाती पर्वत (वृत वैताढय) से दो कोस दूर हटकर वह रोहिता नदी मानों रोहितांशा नदी की सखी हो इस तरह हर्षपूर्वक इसके सन्मुख आई, वहाँ से २८,००० नदियाँ आ मिली, उन्हें भी साथ में लेकर जगती (किले) के नीचे से भेदन कर पूर्व लवणसमुद्र को मिलती है।

इसी तरह महापद्म सरोवर के उत्तर तरफ के तोरण में हरिकान्ता नामक नदी निकलती है और वह उत्तर की तरफ बहती है। पूर्व कथनानुसार पर्वत पर उत्तर की और बहती वह नदी हरिकान्ता प्रपात नामक कुंड में विशालधारा रूप में गिरती है। वहाँ भी उस कुंड के उत्तर तोरण में से पुनः निकलकर उत्तर की और बहती है, वहाँ मार्ग में २८,००० नदियाँ मिलती हैं उन नदियों का परिवार लेकर गंधापाती (वृत्त वैताढ्य) पर्वत से १ योजन दुर रहकर मानों कुछ याद आया हो, इस तरह पश्चिम की तरफ घूमकर पुनः दूसरी २८,००० नदियाँ मिलती हैं। उनसे घीरी हुई अर्थात् ५६,००० नदियों से संयुक्त होकर पश्चिमार्द्ध हरिवर्ष के दो विभाग में बढ़ती, जगती के किले के नीचे भाग को भेदन कर वह नदी पश्चिम लवणसमुद्र को जा मिलती हैं।[१]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-३५३, से ३८६

32

"If humanity is to be saved from destruction and we have to tread on the path of prosperity, then there is no other way except to adopt the message com-municated and the path shown by Lord Mahavira. When all seek and strive for happiness but find it nowhere the path shown by Lord Mahavira Proves a beaconlight. He believed in freedom of the human spirit, gave the highest place to truth, attached great importance to renunciation and conside-red it necessary to be kind to every living-being. Indian thought during the last age laid great stress upon the depth of human soul which is immortal. Lord Mahavira devoted a lot of his attention in this direction and made religion the means of attaining to this great truth."

- Dr. Radha Krishnan

जंबूद्वीप अंतर्गत हरिवर्ष क्षेत्र.....

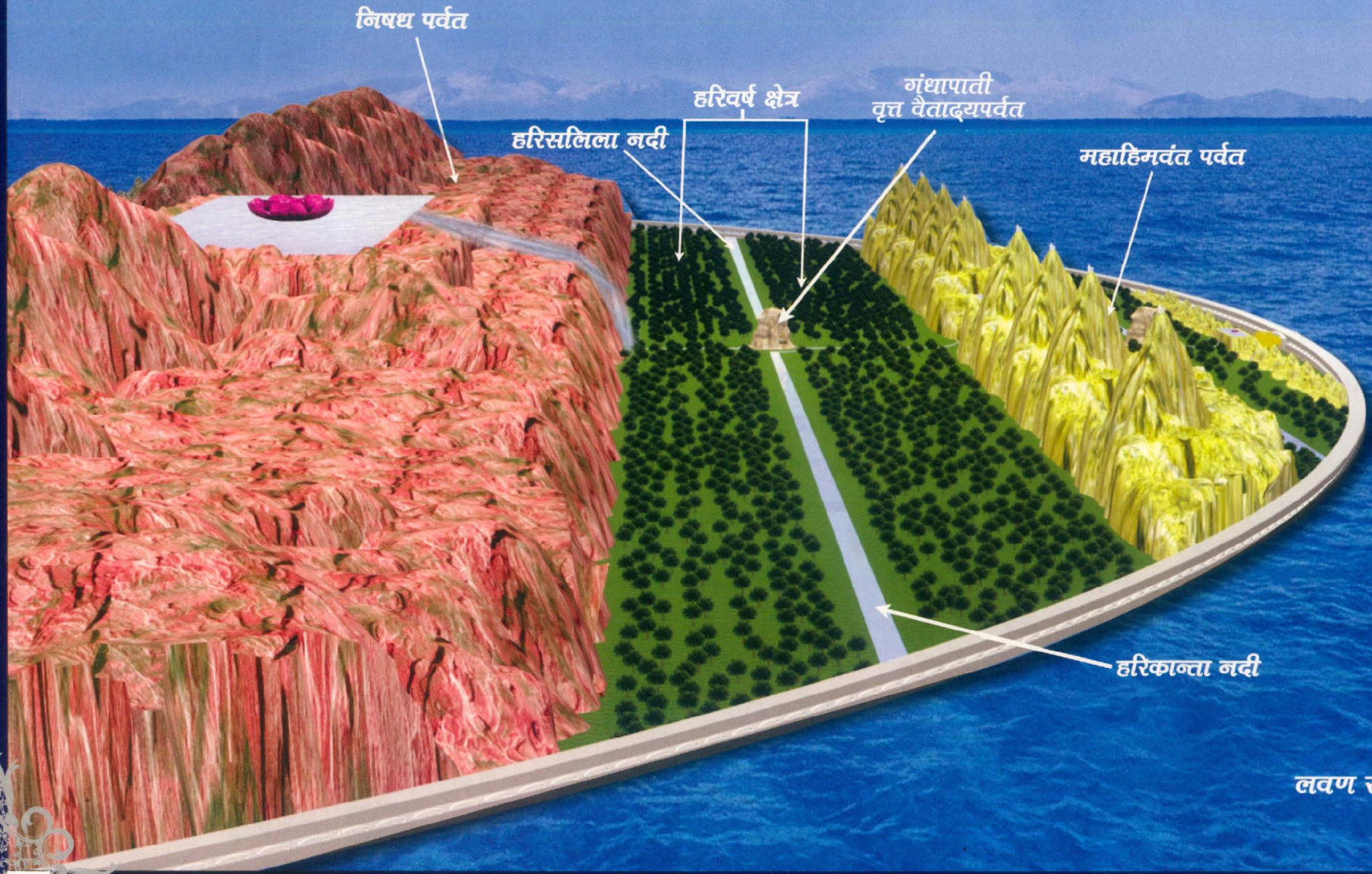

जंबूद्वीप अंतर्गत हरिवर्ष क्षेत्र.....

पीछे के प्रकरण में हमने महाहिमवंत पर्वत का वर्णन देखा, इसी पर्वत के उत्तर दिशा में आगे जाने से हरिवर्ष नाम का क्षेत्र आता है, जिसका आकार पर्यंक (पलंग) के समान है तथा इसके भी दोनों किनारे लवणसमुद्र तक पहुँचते हैं। इस क्षेत्र का विष्कम्भ चौड़ाई में ८,४२१ योजन १ कला हैं। इसका "शर" १६,३१५ योजन उपर १५ कला प्रमाण हैं। इसकी "ज्या" ७३,९०१ योजन १७ $^{१}/_{२}$ कला होती हैं। इसका "धनुपृष्ठ" ८४,०१६ योजन ४ कला कहा गया हैं तथा इसकी प्रत्येक "बाहा" १३,३६१ योजन ६ $^{१}/_{२}$ कला की होती है तथा इसका प्रतरात्मक गणित सर्व मिलाकर ५४,३७,७३,८१७ योजन ७ कला प्रमाण होती हैं।

इस हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य भाग में "गंधापाती" नामक वृत्त वैताढ्यपर्वत आया हुआ है जिसका संपूर्ण स्वरूप पूर्व में कहे हुए "शब्दापाती" नामक पर्वत के समान ही हैं। पद्म नाम का एक पल्योपम के आयुष्यवाला देव इसका स्वामी होता है, इसका भी स्वरूप विजयदेव के जैसे ही जानना।

इस हरिवर्ष क्षेत्र में १ लाख, १२ हजार, २ (अर्थात् - १,१२,००२) नदियाँ बहती हैं।

इस क्षेत्र में पुत्र-पुत्री रूप साथ में जन्म लेनेवाले ऐसे विलक्षण-विद्वान-चतुर युगलिक मनुष्य निवास करते हैं, जिनकी देह (काया) दो कोस ऊँची होती है और इनमें उत्तमोत्तम लक्षण भी होते हैं। तथा इनका आयुष्य उत्कृष्ट से दो पल्योपम का होता हैं और जघन्य से भी पल्योपम के असंख्यातवाँ भाग कम ऐसे दो पल्योपम का होता है। वे युगलिक मनुष्य हमेशा छट्ठ-छट्ठ (द्व्यांतरित अर्थात् दो दिन के बाद) के पारणे में केवल बेर (बोर) के जितना आहार लेते हैं। उनके शरीर में १२८ पसली (छाती की हड्डियाँ) होती हैं। ये युगलिये मनुष्य ६४ दिन तक अपने संतति का पालन-पोषण करके (मतांतर से संतति जन्म पश्चात् छः महिने के बाद) मृत्यु प्राप्त कर देवलोक में जाते हैं। तथा इस हरिवर्ष क्षेत्र में हमेशा सुषमा काल ही रहता हैं। इस क्षेत्र का प्रभाव, यहाँ के जीवों का बल, संघयणादि सर्व वस्तु हेमवंत क्षेत्र की वस्तु से अनंतगुण अधिक पर्यायवाली होती हैं।[१] इस तरह हरिवर्ष क्षेत्र का स्वरूप कहा।

जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत (पार्ट -१).....

इस हरिवर्ष क्षेत्र की उत्तर दिशा में अन्तिम भाग में निषध नाम का लाल सुवर्णमय पर्वत हैं। यह निषध पर्वत ४०० योजन ऊँचा और पृथ्वी में १०० योजन निमग्न रहा हुआ है और इसके दोनों अन्तिम किनारे पूर्व-पश्चिम लवणसमुद्र को स्पर्श कर रहे हैं। जिससे वह मानों महाविदेह क्षेत्र रूपी घर की दक्षिण की और दीवार न हो इस तरह लग रहा है। इस पर्वत का विष्कम्भ-चौड़ाई १६,८४२ योजन और ऊपर २ कला अधिक है।

इस निषध पर्वत पर (१) सिद्धायतन कूट (२) निषध कूट (३) हरिवर्ष कूट (४) पूर्वविदेह कूट (५) हरि कूट (६) धृति कूट (७) शीतोदा कूट (८) अपरविदेह कूट और (९) रुचक कूट रूप ९ शिखर हैं और वे पूर्व के समान श्रेणिबद्ध रहे हुए हैं। इसमें प्रथम शिखर पर एक चैत्य और शेष आठ शिखरों पर शिखरों के ही नामवाले देव-देवियों का निवास स्थान हैं। (क्रमशः)

(१) (A) स्थानांग सूत्र-१०, उद्देशा-३ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-३९३ से ४०

वर्धमान अपने को उन्ही सिद्धांतो के प्रवर्तक बतलाते थे, जो पूर्ववर्ती उन २३ महर्षियों अथवा तीर्थंकरो की परम्परा द्वारा जिनका इतिहास अधिकतर आख्यानो के रूप में मिलता था, उन्हें ही प्रकाश में लाये थे। वे किसी नये मत के संस्थापक नही थे। ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दि में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की उपासना करनेवाले मौजुद थे, जिनके पर्याप्त प्रमाण हैं। स्वयं यजुर्वेद में तीर्थंकरों के प्रमाण मौजुद हैं। भागवत् पुराण भी इसी बात की पुष्टि करता हैं। जैनियों का धर्ममार्ग पहले के अगणित युगों से चला आ रहा हैं।

सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन
- उपराष्ट्रपति भारतवर्ष
(इंडियन फिलोसोफी)

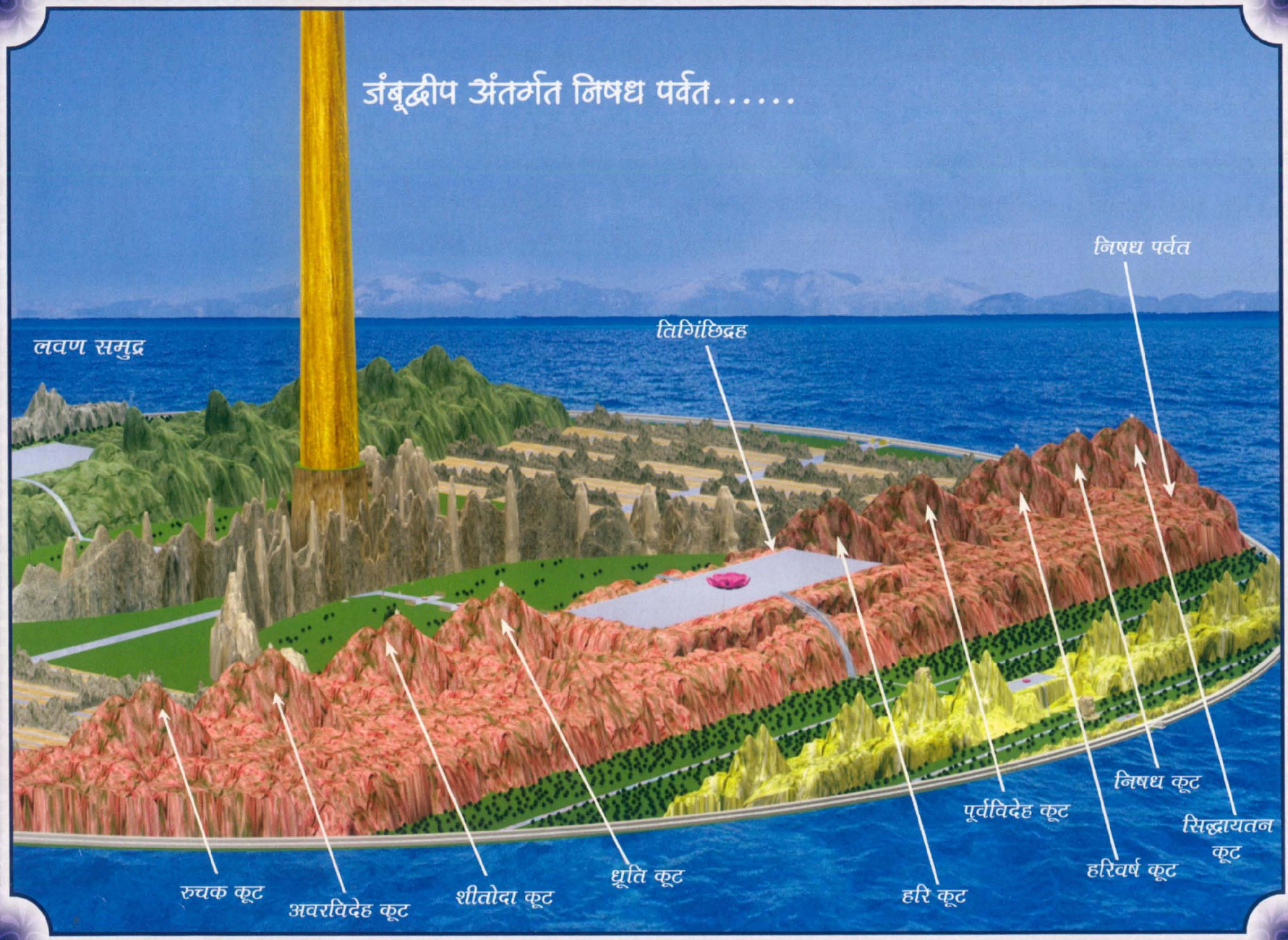
जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत.....
निषध पर्वत
लवण समुद्र
तिगिंछिद्रह
निषध कूट
पूर्वविदेह कूट
सिद्धायतन कूट
हरिवर्ष कूट
रुचक कूट
अवरविदेह कूट
शीतोदा कूट
धृति कूट
हरि कूट

जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत (पार्ट - २).....

इस निषध पर्वत पर तिगिंछि नामक एक द्रह(सरोवर) यहाँ आया हुआ हैं। वह ४,००० योजन लम्बा तथा २,००० योजन चौड़ा हैं और १० योजन गहरा है। इस सरोवर में चारों तरफ पद्मद्रह(सरोवर) के अनुसार की संख्या में सुन्दर कमल शोभायमान हो रहे हैं। इन कमलों की चौड़ाई आदि पद्मसरोवर के कमलों से ४ गुणा है। दृष्टांत रूप में इस सरोवर का मूल कमल हैं वह उससे ४ गुणा अर्थात् ४ योजन का है। इस सरोवर के मूल कमल में भी श्रीदेवी के भवन सदृश एक भवन हैं। वह एक पल्योपम की आयुष्यवाली ''धी देवी'' नाम की देवी का निवासस्थल है।

इस तिगिंछि द्रह के दक्षिण तरफ के तोरण में से हरिसलिला नामक नदी निकलती है। वहाँ से निकलकर दक्षिण की ओर ७,४२१ योजन १ कला पर्वत पर बहती है। वहाँ से हरिसलिला नामक कुंड में गिरती हैं, इसमें से वापिस दक्षिण ओर के तोरण में से निकलकर बहती हुई पूर्व हरिवर्ष क्षेत्र के दो विभाग- बँटवारा करती गंधापाती पर्वत से १ योजन प्रमाण से ही पूर्व की ओर बहती है। वहाँ मार्ग में ५६,००० नदियाँ मिलती है, उस परिवार को साथ में लेकर पूर्व लवणसमुद्र में मिलती हैं।

इसी तरह तिगिंछि द्रह के उत्तर दिशा के तोरण में से सीतोदा नाम की नदी निकलती हैं और वहाँ वो उत्तर की और बहती हैं। जो उत्तर में ७,४२१ योजन १ कला बहकर सीतोदा कुंड में गिरती हैं, वहाँ से भी उत्तर की तरफ के तोरण में से निकलकर उत्तर की और बहती है। वहाँ प्रत्यंची धनुष्य के समान उत्तरकुरु क्षेत्र के पांच सरोवरों को दो विभाग में भेदन करती मार्ग में आनेवाली ८४,००० नदियों को मिलाकर साथ में लेकर अनुक्रम से देवकुरु क्षेत्र के आखिर में भद्रशालवन में पहुँचती है। वहाँ सुमेरु पर्वत से दो योजन दूर रहकर कामातुर स्त्री के समान उसके सन्मुख जाकर विद्युत्प्रभ नाम के गजदंजगिरि के नीचे के भाग से लज्जित, अभिसारिका (अर्थात् वह स्त्री जो अपने प्रिय से मिलने जाती है अथवा उसके द्वारा नियत संकेत का पालन करती है।) के समान वापिस मुडकर अपर विदेह को दो भागों में बटवारा करती एक-एक विजय की २८-२८ हजार नदियों को लेकर, इस तरह प्रारंभ से लेकर समुद्र में मिलने तक कुल ५,३२,००० नदियों के परिवार सहित बहती हुई, जयन्त द्वार के नीचे जगती को भेदन करती आखिर यह महानदी पश्चिम लवणसमुद्र में जा मिलती हैं।

इसी तरह से नीलवंत पर्वत के उपर केसरी द्रह(सरोवर) में से सीता नाम की नदी निकलती हैं। वहाँ से निकलकर सीताकुंड में गिरती हैं, वहाँ से वापिस निकलकर दक्षिण सन्मुख बहती पूर्व के समान पांच उत्तरकुरु सरोवरों के दो-दो विभाग में बटवारा करती, उत्तरकुरु की ८४,००० नदियों को साथ लेकर भद्रशाल वन में जाकर मेरुपर्वत से दो योजन दूर रहकर, माल्यवंत नाम के गजदंतगिरि के नीचे पूर्व सन्मुख चलती है। वहाँ पूर्व विदेह को दो विभाग में बटवारा करती, मार्ग में प्रत्येक विजय में से निकलती २८-२८ हजार नदियों को साथ में लेकर इसी तरह कुल ५,३२,००० नदियों के परिवार सहित विजयद्वार के नीचे जगती के तट को भेदन कर पूर्व

(१)(A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, (B) स्थानांग सूत्र-२, उद्देशा-३, (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१६, श्लोक-४०९ से ४५२

सर्वज्ञ महावीर के सिद्धांत में बताए गए स्याद्वाद को कुछ लोग संशयवाद कहते है, इसे मैं नही मानता। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है, किंतु वह एक दृष्टिबिंदु हमको उपलब्ध करा देती है। विश्व (ब्रह्मांड) का किस प्रकार से अवलोकन करना चाहिए यह हमें सीखाता है। यह निश्चय हैं कि विविध दृष्टि बिंदुओं द्वारा निरीक्षण किए बिना कोई भी वस्तु संपूर्ण स्वरूप में आ नहीं सकती। इसलिए स्याद्वाद पर आक्षेप करना सर्वथा अनुचित हैं।

प्रो. आनंद शंकर बापुभाई ध्रुव

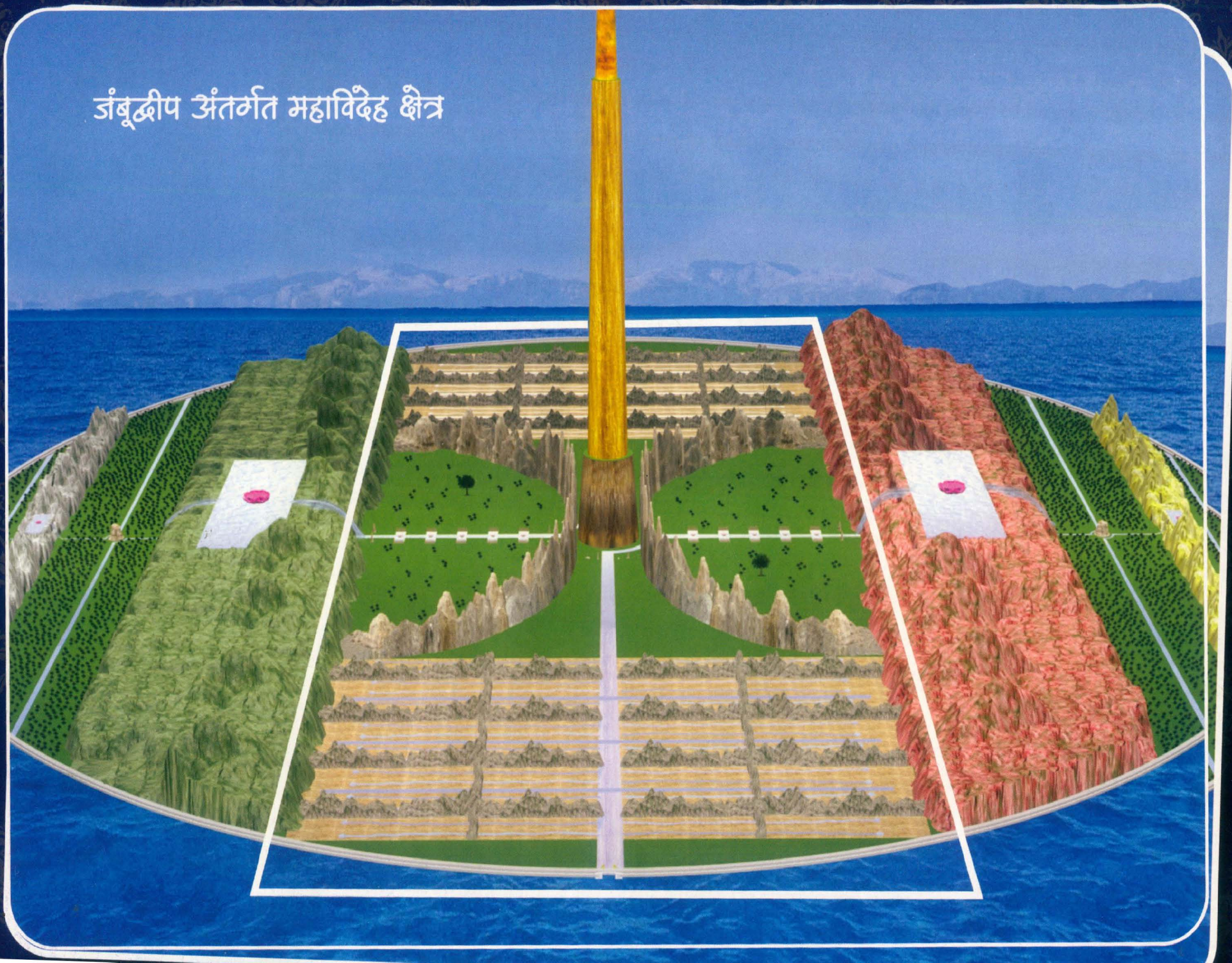
जंबूद्वीप अंतर्गत महाविदेह क्षेत्र

महाविदेह क्षेत्र.....

- नीलवंत और निषध वर्षधर पर्वतों के मध्य में ''महाविदेह क्षेत्र'' नाम का लंबचौरस क्षेत्र आया हैं।
- सर्व क्षेत्रों में बड़ा-महान् होने से अथवा ''महाविदेह'' नाम का अधिष्ठायक देव होने से, अथवा महान शरीरवाले मनुष्यों का वहाँ निवास होने से, इसका ''महाविदेह'' ऐसा योग्य नाम पड़ा हैं।
- इस महाविदेह क्षेत्र की विष्कम्भ-चौड़ाई ३३,६८४ योजन और ऊपर ४ कला अधिक है।
- इस महाविदेह क्षेत्र का जिनेश्वर सर्वज्ञ भगवन्त ने ४ विभाग में वर्णन किया हैं, जो इस प्रकार हैं.. (१) पूर्व महाविदेह (२) पश्चिम महाविदेह (३) उत्तरकुरु और (४) देवकुरु...।
- मेरुपर्वत के उत्तर दिशा के विभाग में ''उत्तरकुरु'' है, वह गंधमादन और माल्यवंत गजदंतगिरि के मध्य में है तथा मेरुपर्वत के दक्षिण दिशा के विभाग में ''देवकुरु'' है जो विद्युत्प्रभ और सौमनस गजदंतगिरि के मध्य में है।
- मेरुपर्वत की पूर्व दिशा में पूर्व महाविदेह और पश्चिम दिशा में पश्चिम महाविदेह क्षेत्र आया हुआ हैं।
- पूर्व महाविदेह के सीता नदी के द्वारा तथा पश्चिम महाविदेह के सीतोदा नदी के द्वारा इस महाविदेह क्षेत्र के दो-दो विभाग होते हैं।
- पूर्व महाविदेह में सीता नदी के उत्तर किनारे में चक्रवर्ती के जीतने योग्य ६ खण्डों से युक्त ८ विजय हैं। इन आठ विजयों की सीमा अनुक्रम से ३ अन्तर नदी और ४ वक्षस्कार पर्वतों के द्वारा बनती हैं। सीता नदी के दक्षिण किनारे पर भी इसी तरह ८ विजय हैं, उसी तरह सीतोदा नदी के भी दोनों किनारे पर ८-८ विजय हैं। इस तरह कुल मिलाकर ३२ विजय हैं।
- पूर्व दिशा की और आधे महाविदेह में जमीन हथेली के समान सपाट हैं, इसलिए वहाँ नदियां, पर्वत और विजय सम (समान) श्रेणी में रहे हुए हैं। परन्तु पश्चिम दिशा के महाविदेह में तो जमीन वियोगी (विरही) स्त्री के समान क्षीण होती जाती है। अर्थात् मेरुपर्वत के पास की सपाट भूमि से लेकर पश्चिम दिशा की और जाते आखिर नलिनावती तथा वप्र नामक विजय के अन्तिम किनारे पर आते कितनेक गाँव तो १,००० योजन नीचे विभाग में जाते हैं और इससे वे ''अधोग्राम'' के नाम से प्रसिद्ध है। इन गाँवों के आखिर का भाग मानो समुद्र को रोकने के लिए दीवार के समान जमीन है। वही जयन्त नाम के दरवाजे से सुशोभित जगति का किला मानो ''अधोगाँव'' के कौतुक को देखने के लिए खड़ा हो इस तरह लगता है। सीतोदा नदी भी स्त्री स्वभाव के अनुसार अधोगमन करती १,००० योजन नीचे विभाग में जगति के अधोभाग को भेदन करके समुद्र में जा मिलती हैं। इस प्रकार से पश्चिम विदेह की भूमि, कुएँ से कोस खिंचनेवाले बैल के चलने की भूमि के समान, क्रमशः नीचे होती जाती है, वैसे ही वहाँ के विजय, नदियाँ और पर्वत..... भूतल से उत्तरोत्तर नीचे से नीचे होते हैं।[१]
- यह महाविदेह क्षेत्र की ३२ विजयो में कायम अवसर्पिणी के चोथे आरा जैसा ही काल (समय) रहा हुआ होता है, इसलिए इस क्षेत्र में उत्पन्न हुए जीवगण ''दुषमा-सुषमा'' रूप चोथे आरे का अनुभव करते हैं।[२]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७ (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३९४

The modern scientists believe that the earth rotates on its axis at the speed of 1000 mph. It is called the "axis motion." At the same time the earth also orbits the sun on the oblong path. It is called the "orbital motion." In order to prove that the earth is not moving and is static Mr. parallax hed experimented in the 19th century and even the modern scientists could not refute these evidences. These experiments, their calculati-ons and the rational behind them will remove all doubts from our minds against the earth being static.

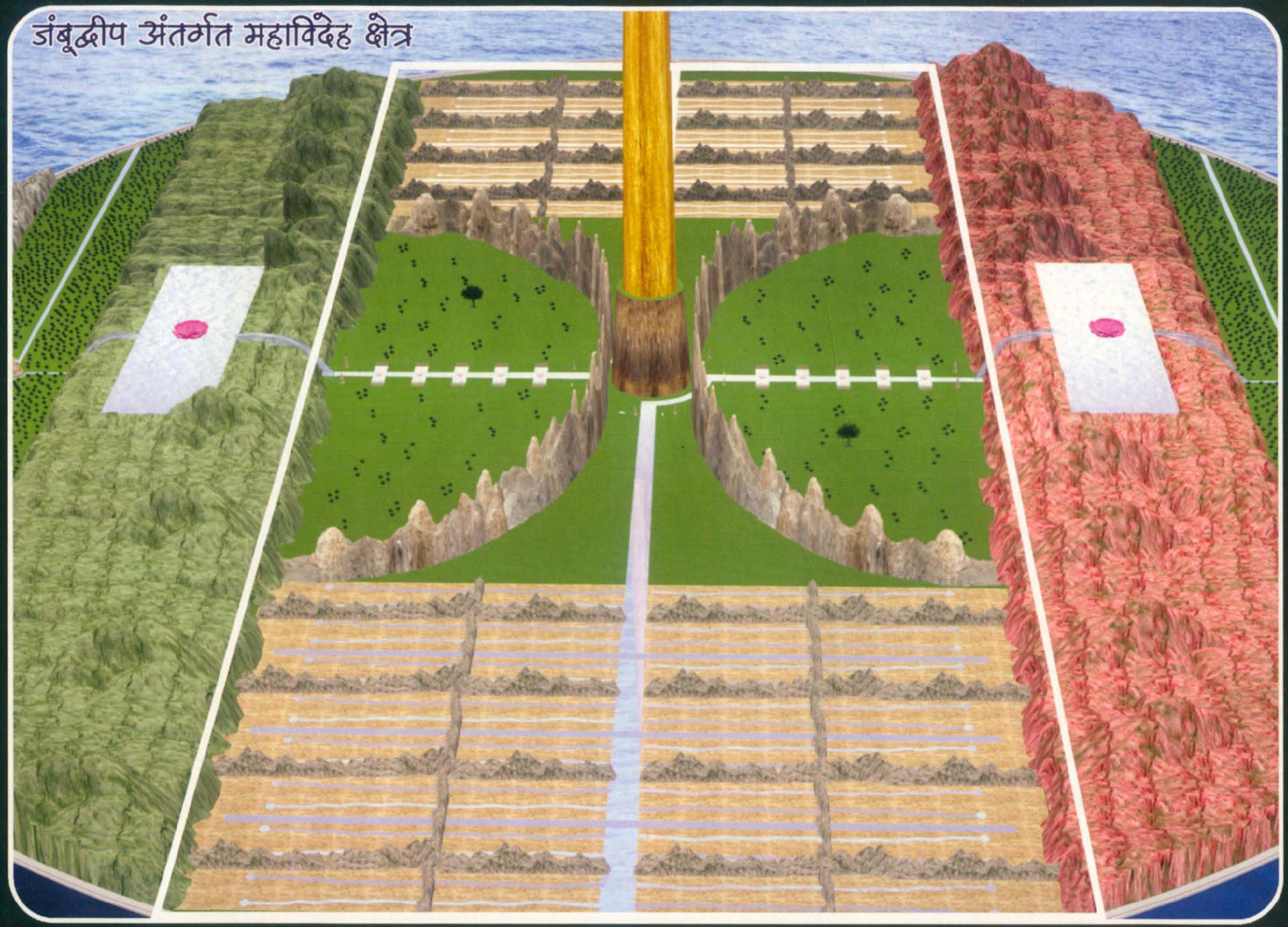
जंबूद्वीप अंतर्गत महाविदेह क्षेत्र

महाविदेह क्षेत्र.....

- हरेक महाविदेह क्षेत्र के अंदर ३२-३२ विजय होती हैं।
- हरेक विजय क्षेत्र वह भरतक्षेत्र से भी बहुत बड़ा होता है। तथा हरेक विजय के वैताढ्यपर्वत और गंगा-सिंधु नदी तथा रक्ता-रक्तवती नदी के कारण ६-६ खंड होते हैं।
- हरेक विजय में ३-३ शाश्वता ऐसे "प्रभास-वरदाम" और "मागध" नाम के तीर्थ हैं।
- हरेक विजय में दीर्घ वैताढ्यपर्वत में "तमिस्रा" तथा "खंडप्रपाता" नाम की दो-दो गुफाएँ आई हुई हैं।
- हरेक विजय के चोथे खंड में "ऋषभकूट" नाम का पर्वत आया है।(जहाँ चक्रवर्ती स्वयं का नाम अंकित करता हैं।)
- इस महाविदेह क्षेत्र में अनुक्रम से ३२ विजय, १६ वक्षस्कार पर्वत, १२ अंतर नदियाँ, ४ गजदंत पर्वत, १ मेरुपर्वत, देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र, १० लघुद्रह, २०० कंचनगिरि पर्वत, यमकादि ४ पर्वत, १ जंबूवृक्ष, १ शाल्मलीवृक्ष, ४ वनखण्ड((१) भद्रशालवन (२) नंदनवन (३) सौमनसवन (४) पांडुकवन...) वगैरह आये हुए हैं।
- इस महाविदेह क्षेत्र में जघन्य से ४ तीर्थंकर - ४ चक्रवर्ती - ४ बलदेव और ४ वासुदेव तो होते ही है और उत्कृष्ट से ३२-तीर्थंकर,-२८ चक्रवर्ती-२८ बलदेव-२८ वासुदेव होते हैं। अर्थात् तब जंबूद्वीप में (भरत क्षेत्र-ऐरावत क्षेत्र के १-१ जोडते) उत्कृष्ट से ३४-तीर्थंकर, ३० चक्रवर्ती, ३० बलदेव और ३० वासुदेव होते हैं।
- वर्तमान में ८मी पुष्कलावती विजय में श्री सीमंधरस्वामी नाम के तीर्थंकर, ९मी वत्स नाम की विजय में श्री युगमंधरस्वामी नाम के तीर्थंकर, २४मी नलीनावती नाम की विजय में श्री बाहुस्वामी नाम के तीर्थंकर और २५मी वप्र नाम की विजय में श्री सुबाहुस्वामी नाम के तीर्थंकर आज भी सदेह भव्यजीवों के उपकारार्थे विचर रहे हैं।
- इन सब ३२ विजयों में जो मनुष्य निवास करते हैं, वे ऊंचाई में ५०० धनुष्य (२००० हाथ प्रमाण) के होते हैं।[१] और इनका उत्कृष्ट आयुष्य पूर्वक्रोड वर्ष = ७,०५,६०,००,००,००,०००[२] वर्ष होता हैं। इन मनुष्यों का संघयण और संस्थान विविध प्रकार का (अर्थात् ६ में से कोई भी) हो सकता हैं और इनके आशय (लेश्या) भी विविध प्रकार के होते है। मृत्यु के बाद वे अपने-अपने कर्मों के अनुसार से विविध प्रकार की गति में जन्म धारण करते हैं। वहाँ हमेशा दुषम-सुषम नाम का चतुर्थ आरे जैसा काल ही रहता है, और वहाँ गर्भधारण, अपत्य (पुत्र) पालन आदि सर्व वर्तमान भरत क्षेत्र के समान, तथा वे कितने अन्तर में आहार लेते हैं तथा कितने प्रमाण में लेते है? इत्यादि बातों का कोई नियमन होता नहीं है तथा इनके गृहादि का प्रमाण भरत क्षेत्र के गृहादि से ४०० गुणा होता है।

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३९४ (२) बृहत्संग्रहणी-३१६

भौतिक शास्त्रों के निष्णांत प्रो. मेकडोनाल्ड ने ओस्ट्रेलिया में उड़ती उडन तश्तरी देखकर बड़ा आश्चर्य पाया... परंतु वे कहाँ से आई व कहाँ गई ? इसका कोई खुलासा आज के कोई भी वैज्ञानिकों के पास नहीं है, परंतु जैनागमों में कही हुई एक बात समझने जैसी है कि, १४ पूर्व-धारी महापुरुष लाखों माईल दूर आहारक शरीर के द्वारा कुछ ही पलों मे (अंतमुहूर्त) में भगवान सीमंधर-स्वामी के पास जाकर भी आ जाते है। इससे एक बात सिद्ध होती है कि अमेरिका के **X-43 A / X-15** मार्कवाले / **X-B 70** मार्कवाले विमान तो १ घंटे के ७००० / ४,२६० माईल ही जा सकते है... जबकि आहारक शरीरधारी तो पलभर में ही लाखो माईलों की मुसाफरी करके आ जाते है।

१ लाख योजन प्रमाण महाविदेह क्षेत्र कैसे होता है ?...

क्रम	स्थान नाम	योजन संख्या
१.	जगती सहित सीता वनमुख	२,९२२ योजन
२.	८-९ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
३.	वक्षस्कार पर्वत	५०० योजन
४.	७-१० विजय	२,२१२ ७/८ योजन
५.	अंतर नदी	१२५ योजन
६.	६-११ विजय	२,२१२ ७/८योजन
७.	वक्षस्कार पर्वत	५००योजन
८.	५-१२ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
९.	अंतर नदी	१२५योजन
१०.	४-१३ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
११.	वक्षस्कार पर्वत	५००योजन
१२.	३-१४ विजय	२,२१२ ७/८योजन
१३.	अंतर नदी	१२५योजन
१४.	२-१५ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
१५.	वक्षस्कार पर्वत	५००योजन
१६.	१-१६ विजय	२,२१२ ७/८योजन
१७.	पूर्व दिशा में भद्रशालवन	२२,००० योजन
१८.	मेरुपर्वत की चौड़ाई	१०,००० योजन
१९.	पश्चिम दिशा में भद्रशालवन...	२२,००० योजन
२०.	३२-१७ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
२१.	वक्षस्कार पर्वत	५०० योजन
२२.	३१-१८ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
२३.	अंतर नदी	१२५ योजन
२४.	३०-१९ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
२५.	वक्षस्कार पर्वत	५०० योजन
२६.	२९-२० विजय	२,२१२ ७/८ योजन
२७.	अंतर नदी	१२५ योजन
२८.	२८-२१ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
२९.	वक्षस्कार पर्वत	५०० योजन
३०.	२७-२२ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
३१.	अंतर नदी	१२५ योजन
३२.	२६-२३ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
३३.	वक्षस्कार पर्वत	५०० योजन
३४.	२५-२४ विजय	२,२१२ ७/८ योजन
३५.	जगती सहित सीतोदा वनमुख	२,९२२ योजन
३६.	कुल =	१,००,००० योजन

महाविदेह क्षेत्र संबंधी ३२ विजय और उसकी नगरी (राजधानी) के नामादि..

क्रम	विजय नाम[1]	मुख्य नगरी[2]
१.	कच्छ विजय	क्षेमा नगरी
२.	सुकच्छ विजय	क्षेमपुरी नगरी
३.	महाकच्छ विजय	अरिष्ठा नगरी
४.	कच्छावती विजय	रिष्ठावती नगरी
५.	आवर्त विजय	खड्गी नगरी
६.	मंगलावर्त विजय	मंजुषा नगरी
७.	पुष्कल विजय	औषधिपुरी नगरी
८.	पुष्कलावती विजय	पुंडरिकीणी नगरी
९.	वत्स विजय	सुसीमा नगरी
१०.	सुवत्स विजय	कुंडला नगरी
११.	महावत्स विजय	अमरावती नगरी
१२.	वत्सावती विजय	प्रभंकरानगरी
१३.	रम्य विजय	अंकावती नगरी
१४.	रम्यक् विजय	पक्ष्मावती नगरी
१५.	रमणीय विजय	शुभा नगरी
१६.	मंगलावती विजय	रत्नसंचया नगरी
१७.	पक्ष्म विजय	अश्वपुरी नगरी
१८.	सुपक्ष्म विजय	सिंहपुरी नगरी
१९.	महापक्ष्म विजय	महापुरी नगरी
२०	पक्ष्मावती विजय	विजयपुरी नगरी
२१.	शंख विजय	अपराजिता नगर
२२.	नलीन विजय	अपरा नगरी
२३	कुमुद विजय	अशोका नगरी
२४.	नलीनावती विजय[3]	वीतशोका नगरी
२५.	वप्र विजय	विजया नगरी
२६.	सुवप्र विजय	वैजयन्ती नगरी
२७.	महावप्रविजय	जयन्ति नगरी
२८.	वप्रावती विजय	अपराजिता नगरी
२९	वल्गु विजय	चक्रपुरी नगरी
३०.	सुवल्गु विजय	खड्गपुरी नगरी
३१.	गंधील विजय	अवध्यपुरी नगरी
३२.	गंधीलावती विजय	अयोध्या नगरी

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३७७ से ३८१, (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३८२ से ३८५ (३) ज्ञाताधर्मकथाग्रंथानुसार अध्य. ८ में नलीनावती विजय का दुसरा नाम सलीलावती विजय हैं।

37

गौतमस्वामीजी सूर्य की किरणों को पकड़कर अष्टापदजी महातीर्थ पर चढ़ गये, इस बात को न माननेवाले को वैज्ञानिकों ने अब यह बात साक्षात्कार कर दिखाई है । जैसे कि ब्रिटिश वैज्ञानिक सर आइझेक न्युटन के द्वारा सूर्य के सात रंगो का विभागी-करण किया गया है और उसके द्वारा एक लेझर किरण बनाया गया है । - न्युयोर्क वगेरे सेंकड़ों शहरों में आज भी सोलर से गाड़ीया दौड रही है । डॉ. जेक्शन **(M.D.)** कहते है - मानव जितना ज्यादा सूर्य की धूप में रहता है उतना ज्यादा मानसिक बल और बुद्धि का विकास करता है... इत्यादि ।

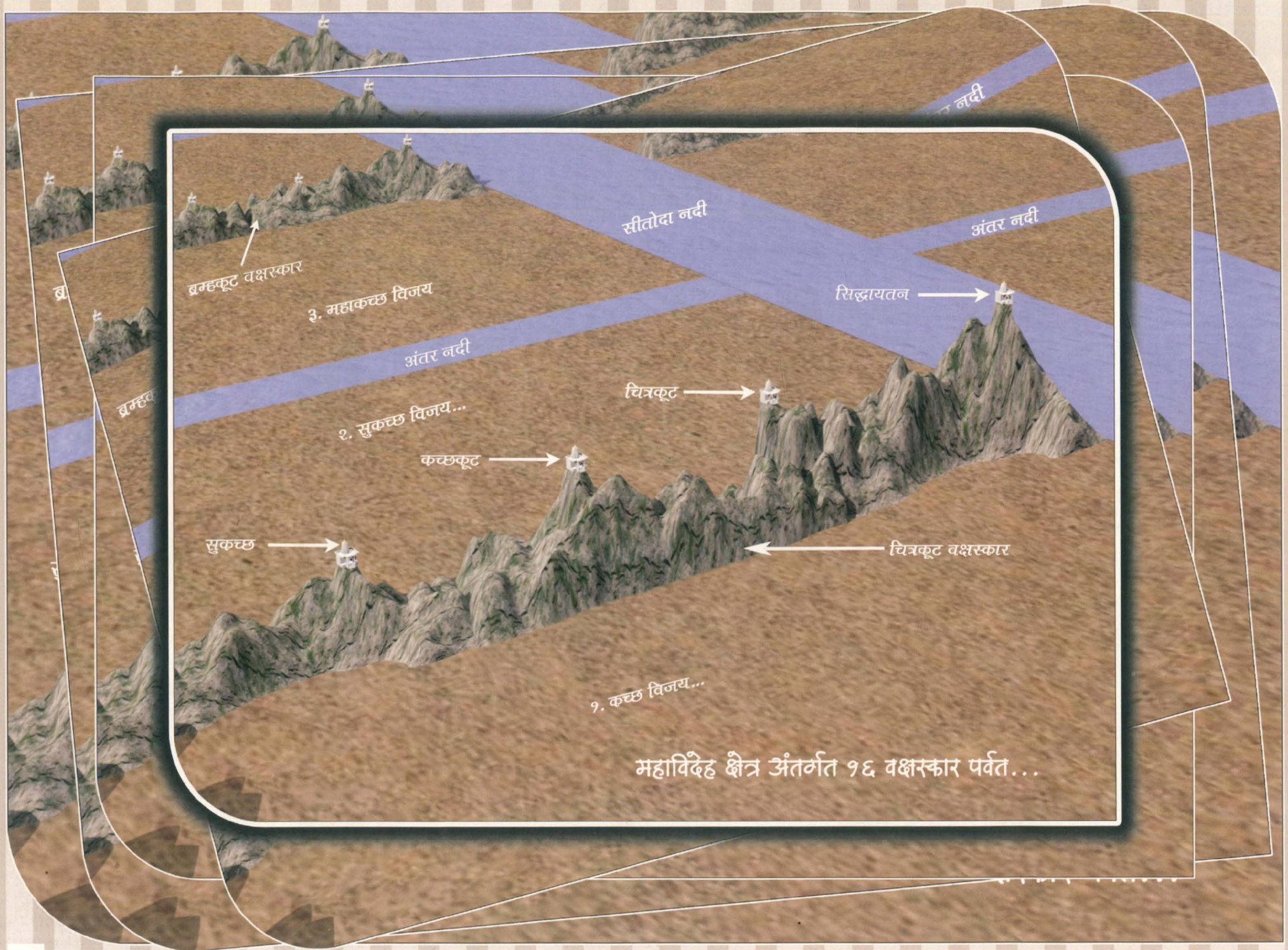
सीतोदा नदी
अंतर नदी
ब्रम्हकूट वक्षस्कार
३. महाकच्छ विजय
अंतर नदी
सिद्धायतन
चित्रकूट
२. सुकच्छ विजय...
कच्छकूट
सुकच्छ
चित्रकूट वक्षस्कार
१. कच्छ विजय...
महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६ वक्षस्कार पर्वत...

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६ वक्षस्कार पर्वत.....

सीता और सीतोदा के दोनों किनारे पर चित्र से लेकर देवगिरि तक ४-४ वक्षस्कार पर्वत होते हैं। वह इस तरह चित्रकूट, ब्रह्मकूट, नलिनीकूट और एकशैल, ये चारों सीता नदी के उत्तरतट पर आए है। तथा इसके दक्षिणतट पर त्रिकूट, वैश्रमण, अंजन और मातंजन नाम के ४ वक्षस्कार पर्वत आए हुए हैं। अंकापाती, पक्ष्मपाती, आशीविष और सुखावह इन नाम के ४ वक्षस्कार पर्वत सीतोदा नदी के दक्षिणतट पर आए हैं, और इसके उत्तरतट पर चन्द्र, सूर्य, नाग और देव नाम के ४ वक्षस्कार पर्वत ऐसे कुल मिलाकर सब १६ वक्षस्कार पर्वत होते हैं[१]। इन पर्वतों की एक और नीलवंत अथवा निषध पर्वत का स्पर्श होता है, जबकी दूसरी और से सीतोदा अथवा सीता नदी से स्पर्श होता है।

इन पर्वतों की चौड़ाई ५०० योजन की है, और वे सर्वत्र समान तथा सर्वरत्नमय हैं। नीलवंत और निषध पर्वतों के समीप में उनकी ऊँचाई ४०० योजन की है। वहाँ पृथ्वी के अन्दर १०० योजन की गहराई है। उसके बाद धीरे धीरे क्रमशः बढ़ते बढ़ते सीता और सीतोदा नदी के पास पहुँचने तक उनकी ५०० योजन की ऊँचाई हो जाती हैं, वहाँ पर वे पृथ्वी के अन्दर १२५ योजन गहरे हैं, उनका आकार घोडे के स्कंध समान कहलाता है।(इसी कारण से यह वक्षस्कार पर्वत कहलाते हैं।)

ये प्रत्येक पर्वत अपने समान नामवाले देव से अधिष्ठित हैं, जैसे कि चित्र नाम के पर्वत पर चित्र नाम का ही अधिष्ठायक है। अन्य पर्वत के सम्बन्ध में भी इसी तरह समझ लेना। इन १६ पर्वतों के ४-४ शिखर होते हैं, इस तरह सब मिलाकर ६४ शिखर होते हैं।

प्रथम गिरि के पूर्व में विजय नाम का शिखर आया है, वह नीलवंत और निषध इन दोनों में से एक पर्वत में समीप में रहा हुआ है, दूसरा गिरि के पश्चिम विजय नाम का आया है, तीसरा गिरि के ही नाम का हैं और चौथा सिद्धायतन नाम का है, और अन्तिम गगनतल का स्पर्श करता ध्वजवाला सिद्ध मंदिर से अत्यन्त मनोहर सीता और सीतोदा में से एक के समीप में आया है। अर्थात् जैसे की कच्छ और सुकच्छ विजय के मध्य में रहा, चित्रगिरि का प्रथम शिखर सुकच्छ हैं, दुसरा कच्छकूट है, तीसरा चित्रकूट और चौथा अन्तिम सिद्धायतन हैं। सीता और सीतोदा के उत्तर किनारे पर आए हुए सर्व पर्वतों के विषय में इसी तरह समझ लेना।

"त्रिकूट" पर्वत पर चार शिखर इस प्रकार होते हैं - प्रथम निषध के पास का वत्स, दूसरा सुवत्स, तीसरा त्रिकूट और चौथा सिद्धायतन है, इसी तरह सीता और सीतोदा के दक्षिण तट पर आए सर्व पर्वतो के विषय में समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार सिद्धायतनों से मनोहर ४-४ शिखरों की पंक्तियाँ सीता और सीतोदा के किनारे पर हैं। ये शिखर मानो श्री जिनेश्वर भगवान के अभिषेक के लिए जल भरकर रखे दिव्य कलशों की श्रेणी के समान शोभायमान हो रहे हैं। ६४ शिखरों में से १६ "सिद्धायतन" नाम के शिखरों को छोड़ लेने पर शेष रहे ४८ शिखर अपने अपने नाम के समान नामवाले देवों से अधिष्ठित हैं। ये देव विजयदेव के समान महाऋद्धिवाले होते हैं। सीता और सीतोदा की दक्षिण और उत्तर में रहे इन देवों की राजधानियाँ अनुक्रम से मेरु के दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं।[२]

(१) (A) ठाणांग सूत्र-८, सूत्र-६३७, (B) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३७३/३७४ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-१२७ से १४९

38

आधुनिक वैज्ञानिक मानते है कि शब्द शक्ति **(energy)** रूप है, और यह प्रतिघंटा ११०० मील की गति से आगे बढता है। परंतु विज्ञान के नये आविष्कारोंने शक्ति को पदार्थ का ही सूक्ष्म रूप स्वीकार लिया है। अतः शक्ति अब पदार्थ से भिन्न प्रकार की कोई वस्तु नहीं रह गई है। इसीलिए प्रो. मेक्सबोन लिखते हैं कि - Energy and mass are Just different names for the same thing अर्थात् शक्ति और पदार्थ एक ही वस्तु के दो अलग - अलग नाम है। यही नहीं, आईन्सटाईन के सापेक्षवाद के अनुसार शक्ति भार सहित प्रमाणित हो चुकी है साथ ही पदार्थत्व **(Mass)** वाली भी...।

न्युयोर्क की हावर्ड वैद्यशाला के खगोल वैज्ञानिक डॉ. हालो शेपली के मान्यतानुसार १० क्रोड़ से भी ज्यादा ग्रहों पर घास, वृक्ष और जीव रहते होंगे, उसमें भी बहुत से स्थानों मे तो सुविकसित ऐसे बुद्धिशाली प्राणी भी रहते होंगे।

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत
१२ अन्तर नदियां...

पूर्व महाविदेह क्षेत्र

इसी तरह पूर्व महाविदेह क्षेत्र
में भी ६ अन्तर नदियां जाने.....

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १२ अन्तर नदियाँ.....

- अब हम आपको महाविदेह के क्षेत्र में आई हुई १२ अन्तर नदियों का स्वरूप बता रहे हैं... जैसे की सीता नदी के उत्तर किनारे पर गाहावती, हृदयवती और वेगवती अन्तर नदिया आयी हैं। सीता नदी के दक्षिण किनारे पर तप्ता, मत्ता और उन्मत्ता नाम की अन्तर नदियाँ हैं। सीतोदा नदी के दक्षिण किनारे पर क्षीरोदा, शीतस्तोत्रा और अन्तर्वाहिनी अन्तर नदियाँ हैं तथा सीतोदा नदी के उत्तर किनारे पर उर्मिमालिनी, गम्भीरमालिनी और फेनमालिनी नाम की अन्तर नदियाँ आई हुई हैं।[१]
- इन बारह नदियों को निकालने का अपने अपने नाम का एक-एक स्वतंत्र कुंड होता हैं, और ये नीलवंत अथवा निषध पर्वत के पास में होते हैं। उन प्रत्येक कुंड की लम्बाई-चौड़ाई १२५ योजन है और गहराई (ऊंडाई) १० योजन तथा घेराव ३८० योजन है। प्रत्येक कुंड के मध्य में नदी तथा कुंड के नामवाला १-१ द्वीप आता हैं।
- जैसे की गाहावती नाम की नदी का गाहावती नाम का कुंड है और इसमें रहे द्वीप का नाम भी गाहावती ही हैं। इसी तरह सर्वत्र १२ नदियों के बारे में समझ लेना।
- इस तरह ये १२ द्वीप हुए, जो १६ योजन लम्बे-चौड़े हैं, और इनका घेराव ४० योजन से कुछ अधिक हैं, और वे सर्व द्वीप जल से २ कोस ऊँचे हैं, इन सबमें भी पद्मवरवेदिका और बगीचे शोभ रहे हैं।
- प्रत्येक द्वीप के मध्यविभाग में, उस नदी के नाम के समान ही नामवाली वहाँ रहनेवाली देवी के योग्य १-१ उत्तम भवन हैं तथा प्रत्येक भवन में आधी कोस चौड़ी, एक कोस लम्बी और लगभग उतनी ही ऊँची देवी के योग्य मनोहर शय्या होती हैं।
- गाहावती आदि ये सर्व नदियाँ १२५ योजन चौड़ी हैं, और सरोवर में से निकलकर सीता-सीतोदा में मिलने तक इन सब की गहराई सर्वत्र समान ही २ १/२ योजन की है।[२]

स्टीमरों और वायुयानों को निगलता बरमूडा ट्रायंगल (त्रिकोण)

यहाँ सामने नीचे दिये गये चित्र बरमूडा ट्रायंगल के हैं। बरमूडा ट्रायंगल उत्तरी अमेरिका से लगभग २५०० K.M. दूर एटलांटिक महासागर में हैं। यह त्रिकोण विश्व के वैज्ञानिकों के लिए एक सरदर्द-समस्या हैं। १८ वीं सदी से आज तक इस त्रिकोणने इसके क्षेत्र में आनेवाले १००० मनुष्य एवं १०० विमान तथा सैंकडों जहाजों को गायब कर दिया हैं। ५४१ फूट लम्बी और १३००० टन वजनवाली "नोर्झेवरी-अण्ट स्टीमर" तथा "अवेन्झर" जैसे विशाल विमानों को अपना ग्रास बना चूका हैं। पुराने जहाजी लोग इस स्थल को भूतिया सागर भी कहते हैं। इस बरमूडा त्रिकोण का रहस्य अभी तक नहीं मिला हैं। अत्यंत आधुनिक यंत्रो से सुसज्जित विमानों तथा जहाजों के इस क्षेत्र में पहुँचते ही यंत्र अचानक बंध हो जाते हैं एवं संपर्क टुट जाता हैं। इन जहाजों एवं विमानों का कोई भी भाग अथवा तेलादि की एक बुंद का पता भी अथाग प्रयास के बाद में भी नहीं मिला हैं। यात्रिकों की लाशे या सामग्री भी नहीं मिली हैं। इस पर अमेरिका में बड़ी बड़ी पुस्तकें भी छपी हुई हैं। किन्तु विद्वानों एवं वैज्ञानिकों को भी अभी तक इस त्रिकोण का रहस्य रहस्य ही हैं।

जबकि अमेरिकन वैज्ञानिक बरमुडा त्रिकोण को भी पार न कर सके, तो पृथ्वी गोल हैं तथा उसकी चारों और प्रदक्षिणा की जा चुकी हैं... इस बात को कैसे स्वीकार की जा सकती हैं ? जहाँ कोई अदृश्य शक्ति सबको खींच लेती हैं। जहाँ जाकर कोई वापस नहीं आया हों, वहाँ पृथ्वी के संबंधी दिया गया जजमेण्ट कितना उचित हैं ? ये तो इस बात को पढ़नेवाले खुद ही समझ सकते हैं...

("आओ लोक की सैर करे" में से साभार)

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३७५/३७६ (B) स्थानांग सूत्र, स्थान-६, (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-१५२ से १६२

39

दिल्ली में सन् १९४१ में वैज्ञानिक श्री कृष्णलाल शास्त्रीजी के द्वारा १ तोला पारा में से १ तोला सोना बनाया गया था... ऐसा उन्होंने २०० बार २०० तोला पारा का २०० तोला सोना बनाया था। श्री कृष्णलाल शास्त्रीजी कहा करते थे कि मैंने (इस-इस) साहित्यों (ग्रंथों) को पढकर ही पारे में से सोना बनाने की सिद्धि हांसिल की है। परंतु इसमें मेरी कोई महत्ता नहीं है। यह तो ऐसे प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही देन - प्रभाव हैं।

महाविदेह क्षेत्र में आये हुए
वनमुख का दृश्य.....
.
वनमुख
लंबाई १६,५९२ योजन, २ कला
चौडाई
२,९२२
योजन
चौडाई
२,९२२
योजन
वनमुख
लंबाई १६,५९२ योजन, २ कला
पूर्व
लवण समुद्र

महाविदेह क्षेत्र में आये हुए वनमुख का दृश्य.....

इस महाविदेह क्षेत्र के पूर्व-पश्चिम के अंत भाग में जगती के पास सीता और सीतोदा नदी के दोनो किनारों पर १-१ वनमुख आया हुआ है, तो इस तरह कुल मिलाकर चार वनमुख हैं। वह इस तरह - प्रथम सीता और नीलवंत पर्वत के मध्य में हैं। दूसरा सीता और निषध पर्वत के बीच में हैं। तीसरा सीतोदा और निषध पर्वत के बीच में है तथा चौथा सीतोदा और नीलवंत पर्वत के बीच रहा हुआ है।

ये सब वनमुख उत्तर-दक्षिण में लम्बे हैं, और पूर्व-पश्चिम में चौड़े हैं। इनकी लम्बाई तो विजय की लम्बाई समान ही हैं, और चौड़ाई नीलवंत और निषध पर्वत के पास में एक कला के समान हैं, परन्तु फिर जगती की गोलाई के कारण से जगती की दिशा बढ़ती है, उस क्रमानुसार बढ़ती जाती है और सीता तथा सीतोदा के पास में पहुँचते तो वह चौड़ाई २,९२२ योजन हो जाती है।

यहां उसकी इस तरह आम्नाय है - सोलह विजय की चौड़ाई ३५,४०६ योजन हैं, आठ वक्षस्कार पर्वत की चौड़ाई ४,००० योजन है, छः अन्तर नदियों की चौड़ाई ७५० योजन हैं, देवकुरु-उत्तरकुरु की चौड़ाई ५३,००० योजन हैं, विद्युत्प्रभ-सौमनस गजदंत पर्वत की १,००० योजन ऐसे कुल मिलाकर ९४,१५६ योजन होता हैं, उसमें दोनों वनमुख की चौडाई ५,८४४ योजन मिलादो तो कुल १ लाख योजन होता हैं। चौड़ाई मध्यभाग में होती हैं, नीलवंत और निषध पर्वत की जया और जीवा में से निकाल देने से शेष २ कला रहती हैं, अर्थात् उसमें से १-१ कला के समान दोनों वन की चौड़ाई समझना।

इस प्रकार लम्बाई जानने के बाद वहाँ की चौड़ाई जाननी हो तो उस लम्बाई को २,९२२ से गुणा करना, और फिर कला करने के लिए १९ से गुणा करना, उसमें जो संख्या आए उसे ३,१५,२५० (जो वनमुख की लम्बाईवाला है) उस संख्या से भाग देना, उसका परिमाण जो आए उतनी कला के इच्छित स्थल की चौड़ाई आ जाती है। यहाँ भाज्य और भाजक की संख्या उत्पत्ति में स्पष्ट कहा जाता है। उत्कृष्ट चौड़ाई यहाँ सर्वत्र ध्रुव गुणक होता हैं, उससे गुणा करने के बाद में कला करने के लिए १९ से गुणा करना। यहाँ तो उत्कृष्ट लम्बाई ही ध्रुवभाजक होता हैं।[१]

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-३८७ से ३९२ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-१६३ से १७५

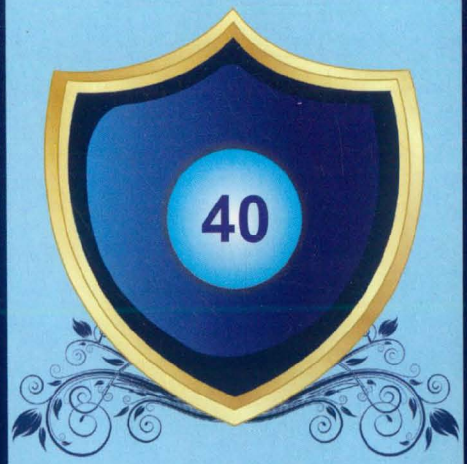

The Speed experience..

Even if we are sitting in a train running at the speed of 100 km/hr, we feel it's speed but we do not feel the 1100 miles per minute speed of the earth because it does not rotate.

The most convincing evidence of the earth not being round is the ice clad Antarctica at the end of the southern seas. No human beings have crossed it so far either by a steamer or an aeroplane. All the explorers who visit the Antarctica travel its periphery and return, but could not reach to its centre. This proves that the unknown world is very vast and it starts from the Antarctica. There is no south pole and that proves that the earth is not round.

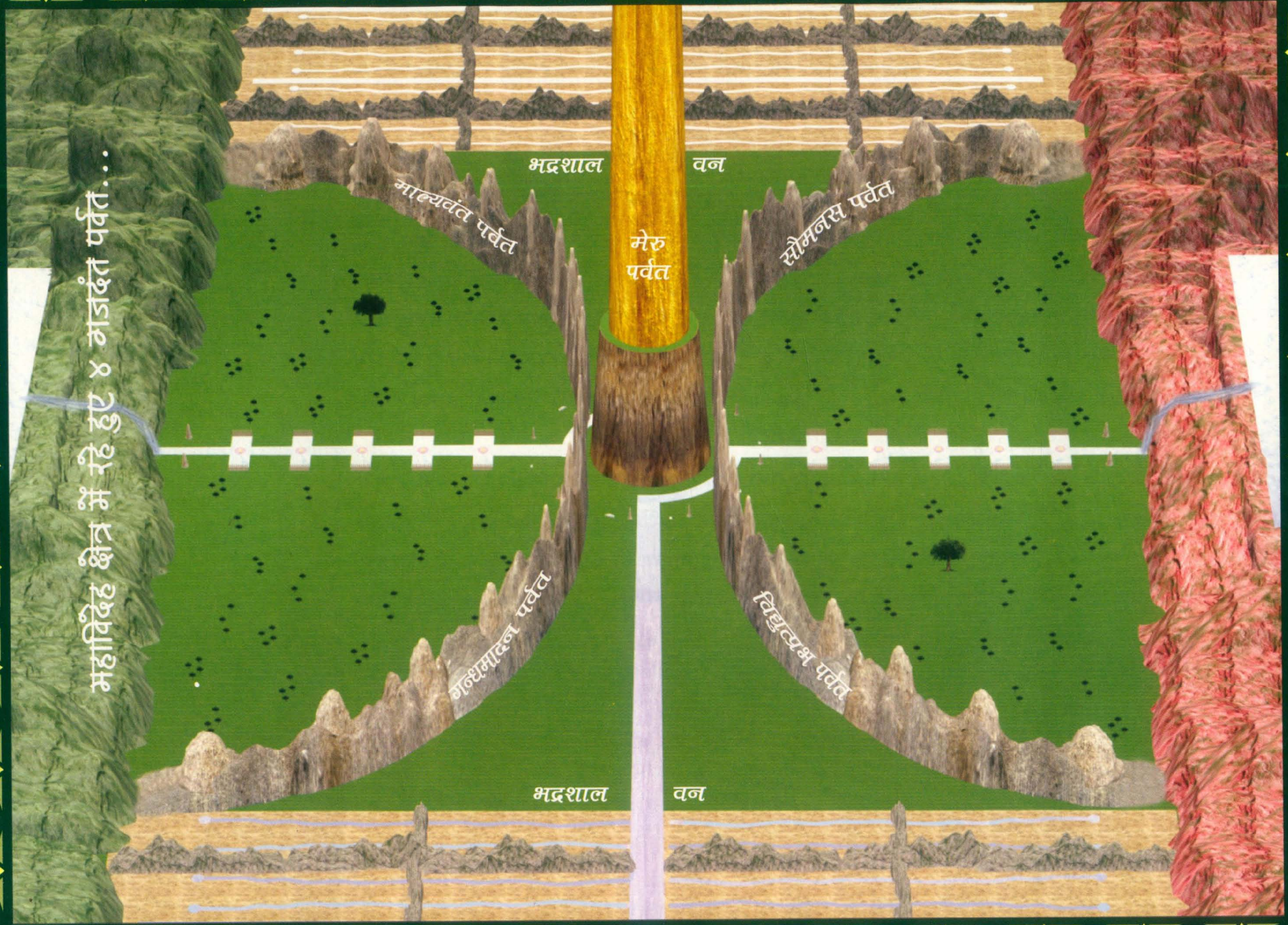
महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत...
भद्रशाल वन
माल्यवंत पर्वत
मेरु पर्वत
सौमनस पर्वत
गन्धमादन पर्वत
विद्युत्प्रभ पर्वत
भद्रशाल वन

महाविदेह क्षेत्र में रहे ४ गजदंत पर्वत.....

महाविदेह क्षेत्र में आए हुए उत्तरकुरु क्षेत्र की सीमा निश्चित करनेवाले ''गन्धमादन'' और ''माल्यवंत'' नाम के दो पर्वत कहे गये हैं तथा देवकुरु क्षेत्र की सीमा को निश्चित करनेवाले ''सौमनस'' और ''विद्युत्प्रभ'' नाम के दो पर्वत कहे गये हैं । चलिए अब हम सर्वप्रथम ''गन्धमादन'' पर्वत का स्वरूप देखते हैं।

इस पर्वत पर किसी ऐसे क्षेत्र स्वभाव के कारण से कोष्टपुट सदृश सुगन्ध द्रव्य से भी विशेष सुगन्ध हैं । इस कारण से यह पर्वत गन्धमादन कहलाता है अथवा पल्योपम आयुष्यवाला कोई गन्धमादन देव इसका स्वामी है, इसलिए यह गन्धमादन कहलाता है अथवा तो यह नाम शाश्वत ही समझना । यह पर्वत पीले रत्नमय अथवा सुवर्णमय है और वह विविध रत्नों से देदिप्यमान ७ शिखरों से शोभायमान है।

इन ७ शिखरों के नाम अनुक्रम से (१) सिद्धायतन (२) गंधमादन (३) गन्धिलावती (४) उत्तरकुरु (५) स्फटिक (६) लोहिताक्ष और (७) आनंद शिखर...! । इन ७ शिखरों में से प्रथम सिद्धायतन शिखर पर ऊँचा एक जिन-मंदिर है तथा पाँचवे-छट्ठे शिखर पर भोगंकरा और भोगवती नामवाली दो दिक्कुमारियाँ रहती हैं, और शेष ४ शिखरों पर शिखर के नाम सदृश नामवाले देव निवास करते हैं । इन शिखरों के नाम वाले देव-देवियों की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत से वायव्यकोण में होती हैं।[१]

अब हम द्वितीय गजदंत पर्वत ऐसे माल्यवंत का स्वरूप विचारेंगे... जो उत्तरकुरु से पूर्व में नीलवंत पर्वत की दक्षिण दिशा में मेरुपर्वत से ईशानकोण में तथा कच्छ नाम के विजय से पश्चिम दिशा में माल्यवंत नामक पर्वत हैं । पवन-हवा से उड़े हुए विविध जाति के माल्य अर्थात् पुष्पों के गुच्छे पर्वत पर बिखरे पड़े हैं, इसके कारण से इसका नाम माल्यवंत पड़ा हैं, अथवा दूसरे विकल्प उपर के जैसे ही जान ले।

यह माल्यवंत पर्वत वैडुर्यरत्नमय है, तथा इसके नौ (९) शिखर हैं । उसमें जो प्रथम ''सिद्धायतन'' नाम का शिखर है वह मेरुपर्वत के समीप में आया हैं तथा दूसरादि अनुक्रम से शिखरों के नाम इस प्रकार जानें (२) माल्यवंत (३) उत्तरकुरु (४) कच्छ (५) सागर (६) रजत (७) शीताकूट (८) पूर्णभद्र तथा (९) हरिस्सह...। यह नवमां हरिस्सह शिखर ''सहस्त्रांक'' नाम से भी प्रसिद्ध है तथा यह शिखर नीलवंत वर्षधर पर्वत के समीप में आया हुआ है, और यह सुवर्णमय (पीले रंग का) है । यह शिखर १,००० योजन ऊँचा हैं, इसकी आकृति गोल है और २५० योजन यह जमीन में निमग्न हैं; तथा इस शिखर के मूल १,००० योजन, मध्य में ७५० योजन तथा ऊपर के भाग में ५०० योजन का विस्तार हैं और तो और इस शिखर के मूल भाग में घेराव ३,१६२ योजन, मध्य भाग में घेराव २,२७२ योजन और ऊपर के विभाग का घेराव १,५८१ योजन का है।

प्रथम शिखर पर जिनेश्वर भगवान का एक चैत्य है, और पाँचवे तथा छट्ठे शिखर पर अनुक्रम से सुभोगा और भोगमालिनी नाम की दो दिक्कुमारियों का निवास स्थान है तथा शेष- छः शिखरों पर १ पल्योपम के आयुष्यवाले, शिखर सदृश नाम वाले देवादिगण निवास करते हैं।

हरिस्सह के बिना के शिखर पर रहनेवाले देवदेवियों की राजधानी मेरुपर्वत से ईशान कोण में अन्य जंबूद्वीप में है, तथा हरिस्सह शिखर का हरिस्सह नाम के देव की हरिस्सहा नामक राजधानी अन्य जंबूद्वीप में हैं, और वह मेरुपर्वत से उत्तर दिशा में है । इस तरह इन दोनों पर्वतों पर पद्मवरवेदिका और बगीचा शोभायमान है । तथा इनका परस्पर योग होने से इनकी आकृति रस्सी चढ़े धनुष्य के समान होती हैं।

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र, वक्ष.-४, (B) स्थानांग सूत्र-२, उद्देशा-३, (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-१७६ से २०७

41

ऐसा कहा जाता है कि श्री शत्रुंजय गिरिराज रोज १ चावल के दाने जितना घट रहा है... परंतु इस बात को नहीं मानने वाले को जब आज का विज्ञान कहता है कि पेसेफिक महासागर हररोज कुछ अंश में घटता जा रहा है और अटलांटिक महासागर हररोज बढ़ता जा रहा है जो यह बात विज्ञान की सही मान ले तो शत्रुंजय महातीर्थ के लिए भी उपरोक्त की गई बात गले उतर जायेगी । इसलिए कहा गया है की शत्रुंजय महातीर्थ की प्रथम तलेटी वडनगर, द्वितीय वल्लभीपुर थी और वर्तमान में पालीताणा हैं ।

महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत...
उत्तर कुरु
मेरु पर्वत
गन्धमादन
माल्यवंत
भद्रशालवन
भद्रशालवन
भद्रशालवन
भद्रशालवन
विद्युत्प्रभ
सौमनस
देव कुरु

महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत.....

अब ! देवकुरु की सीमा में रहे हुए सौमनस और विद्युत्प्रभ नाम के दो पर्वत आए हुए है उसके विषय में कुछ कहता हुँ। इसमें जो ''सौमनस'' नामक पर्वत है वह निषध पर्वत से उत्तर में मेरु से अग्निकोण में और मंगलावती विजय के पश्चिम में आया है। यहाँ सुमन अर्थात् शान्त मनवाले देव-देवियाँ निवास करते हैं, इसी कारण से अथवा तो इनका सौमनस नामक अधिष्ठायक देव होने से यह सौमनस गजदंत पर्वत कहलाता हैं। इसका अश्व के स्कंध के समान आकार है, तथा गजदंत समान मनोहर दिखता है और यह चांदीमय है और इसके उपर ७ शिखर हैं।

इन ७ शिखरों के नाम कुछ इस प्रकार हैं (१) सिद्धायतन (२) सौमनस (३) मंगलावती (४) देवकुरु (५) विमल (६) कांचन और (७) वसिष्ट...! इनका प्रमाण हिमवंत पर्वत के शिखर के समान जानना चाहिए। प्रथम शिखर पर शाश्वत जिनचैत्य, पांचवे तथा छट्ठे शिखर पर सुमित्रा और वत्समित्रा नाम की दिक्कुमारियाँ रहती हैं और शेष शिखर पर उस-उस शिखर के नामवाले देवगण निवास करते हैं।

चलिए मित्रो ! अब हम आपको ''विद्युत्प्रभ'' नामक पर्वत की कुछ जानकारी बता रहे हैं...। यह ''विद्युत्प्रभ'' नामक पर्वत निषध पर्वत से उत्तर में कनकाचल के नैऋत्यकोण में ''पक्ष्म'' विजय से पूर्व दिशा में आया हैं। यह सुवर्णमय होने से विद्युत् बिजली समान चमकता है, इसलिए अथवा विद्युत्प्रभ नाम का इसका अधिष्ठायक देव होने से इसका नाम विद्युत्प्रभ पड़ा हैं।

इस विद्युत्प्रभ पर्वत के नौ (९) शिखर हैं वह इस तरह से (१) सिद्धायतन (२) विद्युत्प्रभ (३) देवकुरु (४) ब्रह्मकूट (५) कनक (६) सौवस्तिक (७) सीतोदा (८) शतज्वल और (९) हरिकूट । पद्मवरवेदिका और बगीचों से यह पर्वत अतीव शोभायमान होते हैं।

इन ९ शिखरों में से ८ शिखरों का मान-प्रमाण हिमवंत पर्वत के शिखर समान हैं तथा नववाँ शिखर का माप माल्यवंत पर्वत के हरिस्सह शिखर के अनुसार अर्थात् १,००० योजनादि समान समझना। इस नवमें शिखर का स्वामी हरिदेव की राजधानी, चमरचंचा नगरी के समान दूसरे जम्बूद्वीप के अन्दर मेरुपर्वत के दक्षिण दिशा में हैं। शेष शिखरों के स्वामीयों की राजधानी विजयदेव की राजधानी के समान दूसरे जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में कही हैं। इन शिखरों में पांचवे और छट्ठे शिखर पर ''पुष्पमाला'' और ''अनिन्दिता'' नाम की दिक्कुमारियाँ रहती है और शेष सात शिखरों पर तो पूर्व के समान उसके नामवाले देवगण निवास करते हैं।

गन्धमादनादि के शिखर पर भोगंकरादि ८ दिक्कुमारियों का निवास कहा है, वह इस सम्बन्ध में इस तरह समझना कि वे वहाँ क्रीडा करने जाती रहती हैं, शेष देवगण वहां वास्तविक रहते हैं। तथा गजदन्त के अधोभवन में प्रत्येक गजदन्त के नीचे उनके दो-दो भवन हैं, और वे तिर्च्छालोक को छोड़कर असुरादि के भवन आते हैं, वहां रहती हैं। इनको शास्त्रों में अधोलोक की रहनेवाली कही है वह इसी कारण से कहा हैं, इनका काम श्री जिनेश्वर परमात्मा के जन्म समय में भूमिशुद्धि करने संबंधी तथा सूतिका गृह संबंधी है।

42

एरिस्टोटल के अनुसार विश्व दो प्रकार के गोलों से निर्मित है - एक गोला मनुष्य ने बनाया है और दूसरा दैवीय है । मानव निर्मित गोला परिवर्तनशील है और उसमें बदलाव किए जा सकते हैं जबकि आकाशीय गोले पवित्र है और उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है । जब एरिस्टोटल से पूछा जाता था कि इन आकाशीय गोलों को कौन चलाता है, तब उसके जवाब में वे कहते थे कि उन्हें अदृश्य आत्माएँ चलाती हैं । एरिस्टोटल की यह मान्यता सृष्टि के सत्य से अत्यन्त ही नजदीक है। ईसा की अठारहवीं सदी तक यह मान्यता अस्तित्व में रही । एरिस्टोटल के समकालीन एरिस्टार्चस नामक एक गणितज्ञ थे। पहली बार उन्होंने इस मान्यता का प्रचार किया कि सूर्य सृष्टि के केन्द्र में है और अन्य ग्रह उसके चारों और प्रदक्षिणा करते है । एरिस्टार्चस की इन मान्यताओं को उस समय किसी ने भी स्वीकार नहीं किया था।

युगलिक
उत्तरकुरु
उत्तरकुरु
देवकुरु
देवकुरु

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत उत्तरकुरु क्षेत्र.....

हे वाचक मित्रो ! अब हम चलते हैं उत्तरकुरु क्षेत्र की ओर..., जो मेरुपर्वत की उत्तर में और नीलवंत की दक्षिण में है, जैसे भरतार के दो भुजाओं के बीच स्त्री रही होती है। ठीक उसी समान गन्धमादन और माल्यवंत पर्वतों के बीच यह क्षेत्र आया हुआ है। यह उत्तरकुरु क्षेत्र उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है और पूर्व-पश्चिम में लम्बा है, इसका आकार अर्धचन्द्र समान होने से यह पृथ्वी के ललाट समान दिखता हैं। यहाँ पल्योपम के आयुष्यवाला उत्तरकुरु नाम का देव रहता है, इससे वह उत्तरकुरु कहलाता है, अथवा इसका नाम यह शाश्वत ही समझना। इसका उत्तर-दक्षिण का विस्तार ११,८४२ योजन २ कला है...।

इस उत्तरकुरु क्षेत्र की धरती अत्यन्त रमणीय है, और वहाँ किसी भी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं होता, वहाँ १० प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं, और वे युगलियों का सर्व मनवांछित पूर्ण करते हैं।

वहाँ निरंतर युगलधर्मी (युगलिया) सुंदर आकृतिवाले और तीन कोस ऊँचे तथा स्त्री-पुरुष स्व-स्व कला कौशल में पारंगत होते हुए निवास करते हैं।

इनका उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम का होता है और जघन्य से भी एक पल्योपम का असंख्य भाग कम तीन पल्योपम का होता हैं। इनके शरीर में २५६ पसलियाँ होती हैं तथा इन्हे क्रोध-मान-माया-लोभादि बहुत ही अल्प कक्षा में होता हैं।

इन युगलियों की यहाँ पर छः प्रकार की जातियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं... (१) पद्मगंधा (२) मृगगंध (३) सम (४) सह (५) तेजस्तलिन और (६) शनैश्चर...।

वे हमेशा तीन दिन के बाद एक ही बार पृथ्वी (मिट्टी) और कल्पवृक्ष के फल, फूल, पत्ते आदि का तुवर (अरहर) के दाने जितना आहार करते हैं। ४९ दिन तक संतान का पालन-पोषण करके फिर खांसी अथवा उबासी (जंभाई) आकर उनकी मृत्यु हो जाती हैं और मृत्यु के बाद वे स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।

यहाँ की पृथ्वी (मिट्टी), पुष्प, फलादि की मिठास-मधुरता हरिवर्ष क्षेत्र की अपेक्षा से अनंतगुण हैं।

यहाँ के तिर्यंच भी हिंसा-उपद्रव से रहित हैं, और वे भी वहाँ के मनुष्यों के समान अपना युगलधर्म का पालन कर, मृत्यु के बाद स्वर्ग में ही जाते हैं। ये तिर्यंच युगल दो दिन के बाद आहार लेते हैं, इस तरह अन्य युग्मि तिर्यंचो का भी आहार का अन्तर आगम में कहा है...

इस सम्बन्ध में कहा है कि - वहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य अनुक्रम से दो दिन के अन्तर में और तीन दिन के अन्तर में आहार लेते हैं।

क्षेत्र परावर्तन से परांगमुख वृद्ध साधु के समान यहाँ हंमेशा ''सुषम-सुषम'' नाम का आरा रहता है।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष. ४, (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-२१६ से २३८

प्रिय सज्जनो !

आप जानते है कि मैं केवल वैष्णव संप्रदाय का आचार्य ही नहीं हूँ परंतु इस संप्रदाय का सब प्रकार से रक्षक हुँ और इस संप्रदाय की और टेढी नजर करनेवाले को सीधा करनेवाला भी हूँ फिर भी इस जाहेर सभा में सत्य के खातिर मुझे यह कहना पड़ता है कि जैनो के ग्रंथ समुह सारस्वत महासागर हैं।

स्वामी राममिश्र शास्त्री, काशी

जैन धार्मिक ग्रंथों के निर्माण कर्ता विद्वान आचार्य, मुनिश्री वगेरे बड़े व्यवस्थित विचारक रहे हैं। वे यह बात जानते हैं, कि इस विश्व में कितने प्रकार के विभिन्न पदार्थ रहे हुए है, इनकी उन्होंने गणना करके उसके नक्शे भी बनाये हैं। इसमें वे प्रत्येक बात को यथास्थान बता सकते है।

प्रो. बूलर

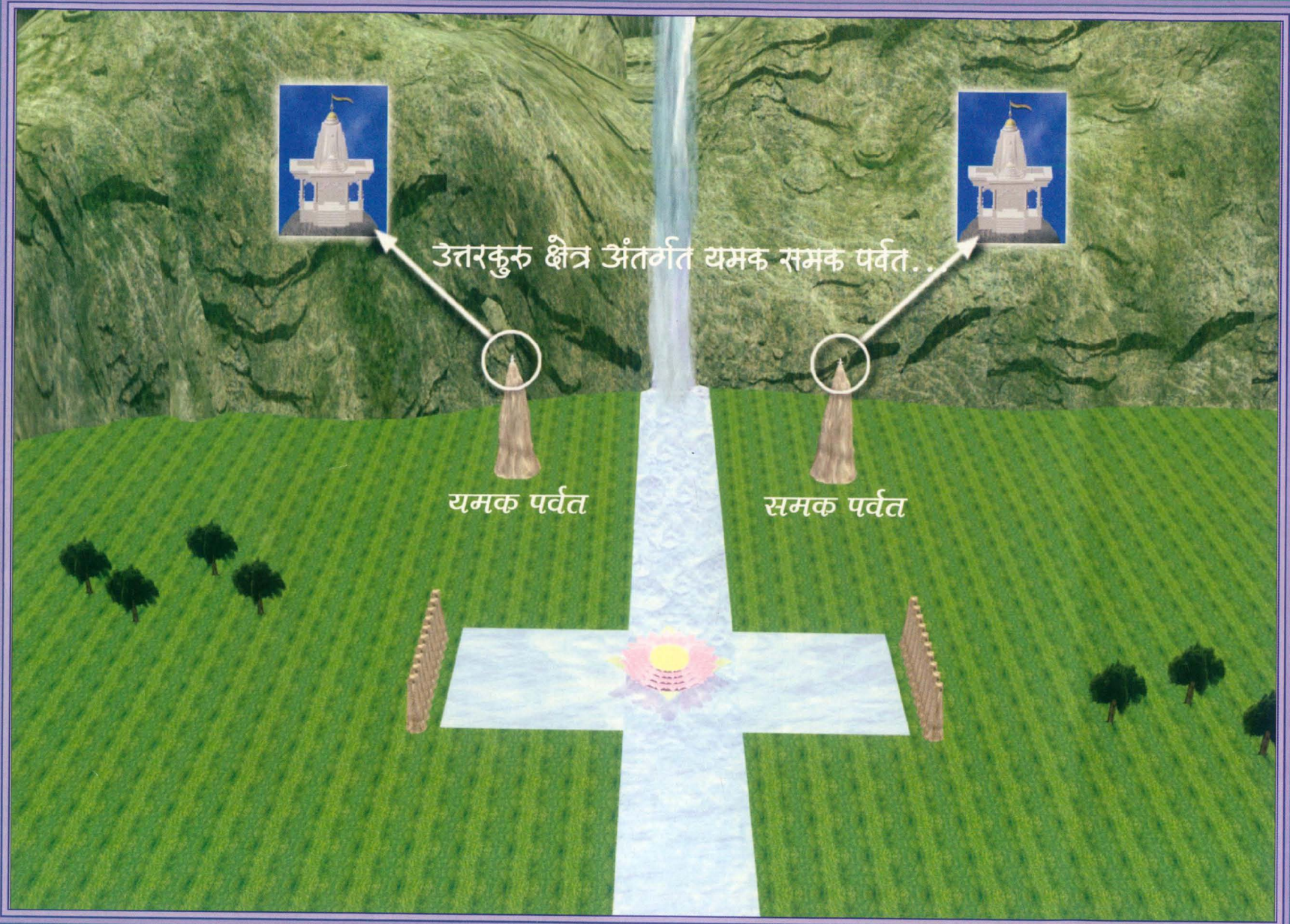
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक समक पर्वत...
यमक पर्वत
समक पर्वत

उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक-समक पर्वत.....

- उत्तरकुरु क्षेत्र में नीलवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में ८३४ ४/७ योजन जाने के बाद सीता नदी के पूर्व और पश्चिम किनारे पर दो यमक-समक नामक पर्वत आए हुए हैं।
- इनको ''यमक-समक'' नाम से कहने का कारण यह है कि - जुडवाँ भाईयों के समान उनका स्वरूप परस्पर एक समान ही जिनेश्वर सर्वज्ञ भगवंतोंने कहा हैं, अथवा तो इनकी 'यमक-समक' नाम के पक्षी समान आकृति हैं।[१]
- ये ''यमक-समक'' पर्वत संपूर्ण स्वर्णमय तथा गोपृच्छाकृति के आकार से युक्त हैं।
- ये जुडवाँ पर्वत (यमक-समक) १,००० योजन ऊँचे होते हैं, तथा गोल आकृति को धरते हैं। एवं २५० योजन जमीन में निमग्न रहे हुए हैं। तथा इस पर्वतो का मूल १,००० योजन का, मध्य में ७५० योजन और ऊपर के भाग में ५०० योजन का विस्तार होता हैं। इन पर्वतों के मूल भाग का घेराव ३,१६२ योजन, मध्यभाग का घेराव २,२७२ योजन तथा ऊपर के विभाग का घेराव १,५८१ योजन का होता है।[२]
- ये यमक-समक पर्वत पद्मवरवेदिका और बगीचों के कारण बहुत ही सुंदर लगते हैं, तथा इनके ऊपर भूमि का भाग अत्यंत मनोहर है और वहाँ १-१ महान प्रासाद हैं।
- ये प्रासाद ६२ १/२ योजन ऊँचे, और ३१ १/४ योजन लम्बे-चौड़े हैं। उसके (प्रासाद के) अंदर यमक-समक देव के नाम के योग्य बड़े परिवारवाले सिंहासन आए हुए है और शेष स्वरूप विजयदेव के समान ही जानना चाहिए।[३]
- यहाँ से असंख्य द्वीप समुद्रों के जाने के बाद आनेवाले द्वितीय जंबूद्वीप के अंदर मेरुपर्वत के उत्तर में विजयदेव की राजधानी के समान ही ''यमक-समक'' देवों की राजधानियां आई हैं।
- नीलवंत पर्वत और यमक-समक पर्वत के बीच में जितना अन्तर कहा हैं, उतना ही अन्तर यमक-समक पर्वत और इसके दोनों सरोवरों के बीच में कहा हैं।
- इन चारों सरोवरों का अन्तर भी परस्पर उतना ही कहा है, और इस क्षेत्र की पर्यन्त भूमि भी अंतिम कुंड के समान ही हैं।
- और वह इस प्रकार यमक-समक पर्वत तथा ५ लघुद्रह (जलाशयों) की लम्बाई और ७ अन्तरा इन सबको जोड करने से उत्तरकुरु का यथोक्त व्यास आ जाता है।
- अन्य स्थान पर कहा है कि यमक-समक पर्वत और नीलवंत पर्वत के बीच में जितना अन्तर हैं, उतना ही अन्तर यमक-समक पर्वत और इसके प्रथम जलाशयों के बीच में तथा परस्पर कुंड के बीच में हैं।[४]

(१) जीवाजीवाभिगम, पडि.-३ (२) समवायांग-११३, सूत्र-२ (३) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, सूत्र-८८(४) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-२३९ से २५१

The Scientific Jargon

Richard proctor, the great British astronomer writes in his books, "There is no objection in preasu-ming the earth orbiting the sun." This indicates that the earth orbiting the sun is a preasumption not a proved fact.

The modern scientists claim to have acquired knowledge of all regions of the known world, but this is not true. There are several regions on the earth of which the scientists do not have full information. The North pole and the south pole are typical examples.

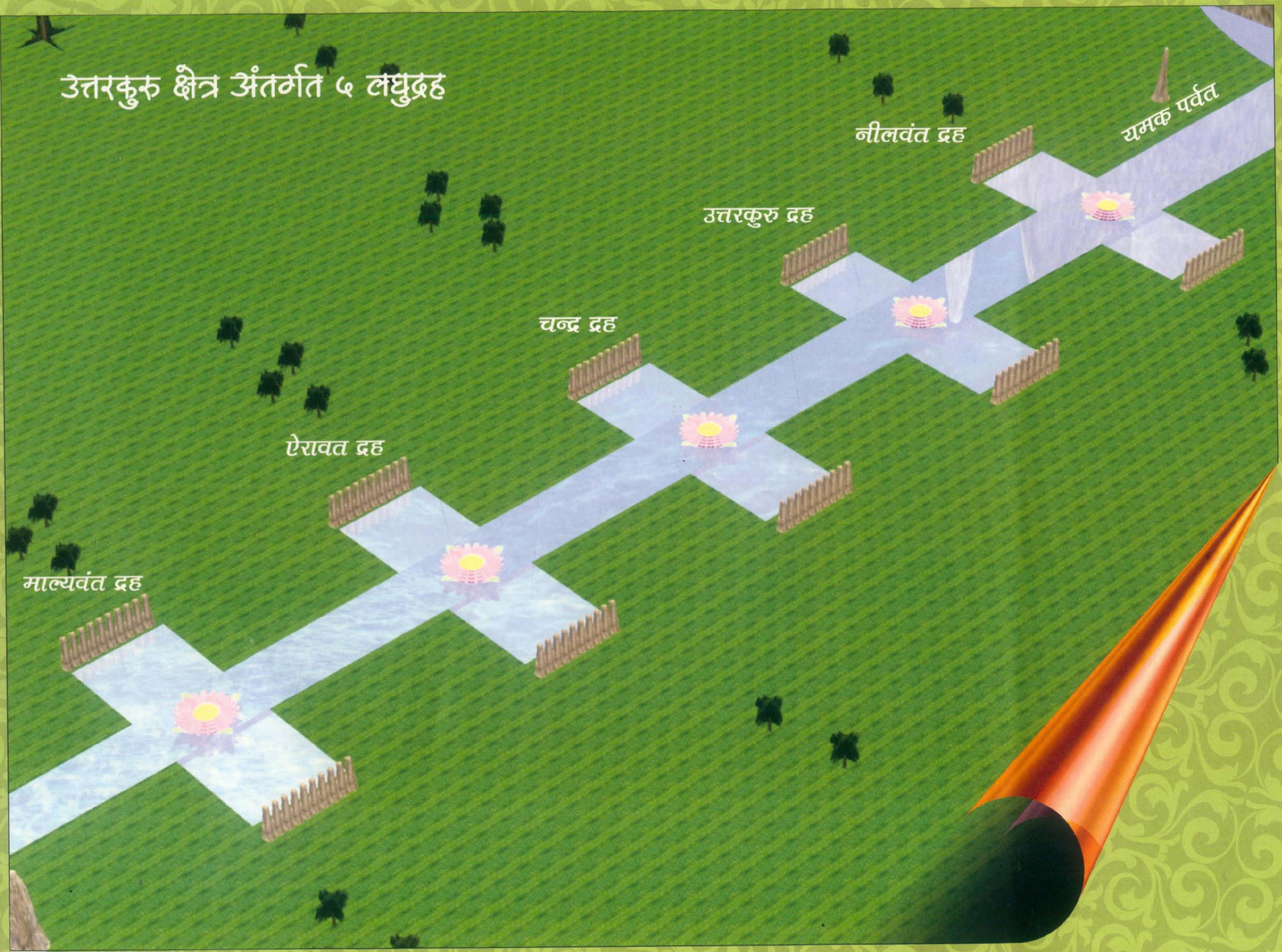
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह
नीलवंत द्रह
यमक पर्वत
उत्तरकुरु द्रह
चन्द्र द्रह
ऐरावत द्रह
माल्यवंत द्रह

उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह.....

- अब हम इस उत्तरकुरु क्षेत्र के अंतर्गत आए हुए ५ लघुद्रहों का वर्णन आपको बताएगे। पूर्व के प्रकरण में हमने देखा की नीलवंत पर्वत से ८३४ ४/७ योजन जाने के बाद यमकादि पर्वत आते हैं ठीक उसी तरह ८३४ ४/७ योजन फिर यमक पर्वत से दक्षिण दिशा में सीता नदी के अंदर एक समान अन्तर से (अर्थात्-८३४ ४/७ योजन से) अनुक्रम से ५ सरोवर आते हैं। वह इस तरह से जाने...
- प्रथम सरोवर ''नीलवंत'' नाम का है। नीलवंत पर्वत के समान शतपत्रकमलादि से वह शोभायमान हो रहा है, अतः वह इस नाम से प्रसिद्ध है, अथवा नीलवंत नामक नागकुमारों के इन्द्र देव का वहां साम्राज्य है, बस इसी कारण वह इस नाम से पहचाना जाता हैं।
- दूसरा ''उत्तरकुरु'' नाम का सरोवर हैं, उसमें उत्तरकुरु समान कमल पुष्प होने से अथवा उत्तरकुरु नामक व्यंतर का निवास होने से इसका यह नाम अथवा यह शाश्वत नाम ही जाने...।
- तीसरा ''चन्द्र'' नाम का सरोवर है, उसमें चन्द्रमाँ समान आभा (कान्ति) वाले कमलादि होने से अथवा चंद्रदेव नाम का व्यंतरेन्द्र स्वामी होने से वह इस नाम से प्रसिद्ध है।
- चौथा ''ऐरावत'' नाम का जलाशय हैं, इसमें ऐरावत के आकार के मनोहर कमल होने से अथवा इसके स्वामी व्यंतरेन्द्र का ऐरावत नाम होने से यह नाम पड़ गया हैं।
- पांचवा ''माल्यवंत'' नाम का सरोवर है, इसमें माल्यवंत पर्वत के आकार के कमलादि होने से अथवा इसमें माल्यवंत नाम के व्यंतर देव का निवास होने से यह माल्यवंत सरोवर कहलाता है।[१]
- ये सर्व ५ लघुद्रह(सरोवर) पद्मद्रह के समान ही हैं, और सारे सहोदरभाई सदृश एक समान हैं तथा कमल के छः वलय से अलंकृत हैं। फर्क मात्र इतना ही है कि पद्म सरोवर के आस-पास एक पद्मवरवेदिका और बगीचा हैं, तब इस सरोवर के आस-पास अन्दर करके फिर बाहर निकलते सीता नदी से विभक्त दो पद्मवरवेदिका और दो बगीचे हैं।
- यह लघुद्रह(सरोवर) १,००० योजन उत्तर-दक्षिण लम्बे हैं, और ५०० योजन पूर्व-पश्चिम में चौड़े हैं।
- अन्यत्र भी कहा गया है की सीता और सीतोदा नदियों के बीचोबीच पांच (५) सरोवर हैं। वे उत्तर-दक्षिण में लम्बे और पूर्व-पश्चिम में चौड़े हैं।
- पद्मद्रहादि जो अन्य वर्षधर पर्वत के ऊपर सरोवर है, वह तो उत्तर-दक्षिण में चौड़े और पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं।
- इन पांचों लघुद्रहों (सरोवरों) के पांच अधिष्ठायक देवों की राजधानियां दूसरे जंबूद्वीप में मेरुपर्वत की उत्तर दिशा में रही हैं।[२]
- इसी तरह देवकुरु क्षेत्र में भी ५ लघुद्रहों का वर्णन आता है - जिनके नाम (१) निषध (२) देवकुरु (३) सूर (४) सुलस और (५) विद्युत्प्रभ...। इन १० लघुद्रहों के मुख्य कमल के चारों तरफ कमल वलय, उनकी संख्या, उनके भवनादि सर्व पद्मद्रह के समान समझ लेना चाहिए।[३]

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-२७२ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-२५२ से (३) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-२७३

कुछ जानने जैसा...

तीखा, मीठा, कडवा, खट्टा आदि रस तो कई प्रकार के होते है। प्रत्येक रस का स्वाद भी अपने आप में स्वतंत्र होता है। परंतु नमक नाम के रस मे कुछ ऐसी अनेक विशेषताएं है, जिनके कारण वह "सर्वरस" कहलाता है। वैसे ही दान, शील, तप, भकि आदि अनेक धर्मक्रिया है। प्रत्येक धर्मक्रिया का अपने आप में अलग (स्वतंत्र) स्वभाव है, परंतु भाव एक ऐसा धर्म है, उसमें कुछ ऐसी विशेषताएं है, जिनके कारण इसे "सर्वधर्म" कहा जा सकता है।

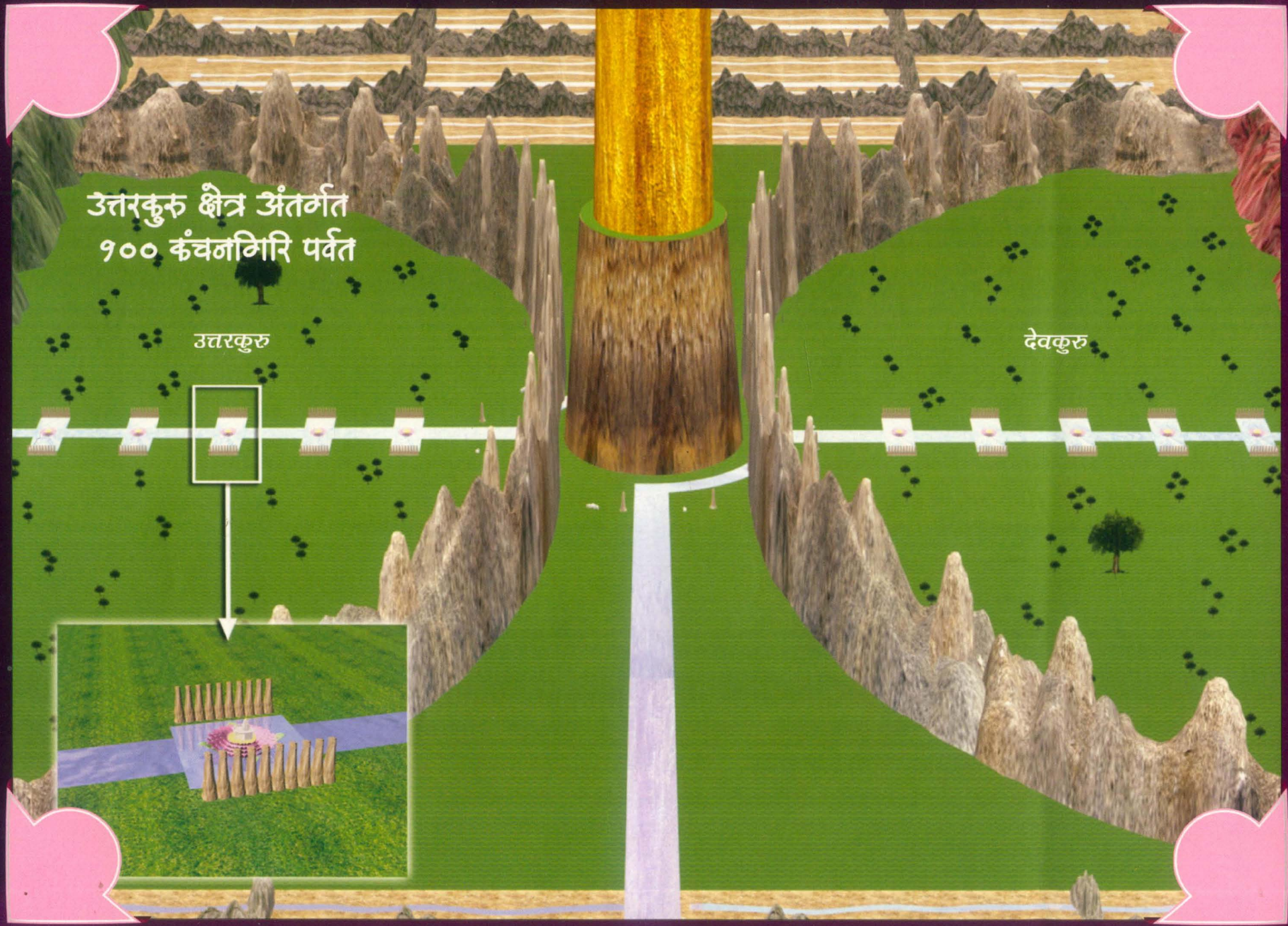
उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत
१०० कंचनगिरि पर्वत
उत्तरकुरु
देवकुरु

उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत १०० कंचनगिरि पर्वत.....

- उत्तरकुरु क्षेत्रों में रहे ५ लघुद्रहों के (सरोवरों के) पूर्व और पश्चिम दिशा के किनारे पर १०-१० योजन छोड़कर मूल में परस्पर संलग्न कंचन नाम के पर्वत आए हैं, प्रत्येक सरोवर के दोनों तरफ से १०-१० होने से वे सब मिलाकर इस क्षेत्र में १०० कंचनगिरि पर्वत होते हैं।
- ये सभी पर्वत १०० योजन ऊँचे और स्वर्णमय हैं। इसका मूल में विस्तार १०० योजन का है, मध्य में ७५ योजन है तथा ऊपर का विस्तार ५० योजन का हैं।
- इनकी परिधि अर्थात् घेराव मूल में ३१६ योजन से कुछ अधिक, मध्य में २३० $^{१}/_{२}$ योजन से अधिक और ऊपर १५८ योजन से कुछ अधिक कही हैं।
- पृथ्वी रूपी वधु को खेलने-क्रीडा करने के लिए सुवर्ण के चौपड़ समान ये पर्वत पद्मवरवेदिका और बगीचों द्वारा शोभते हुए उत्तर-दक्षिण श्रेणिबद्ध रहे हुए हैं।
- इसके ऊपर कंचन समान कान्तिवाले कमलों से युक्त जलाशयों की प्रचुर मात्रा होने से अथवा कंचन नाम के इसके अधिष्ठायक देव होने से इसका कंचन नाम कहा जाता है।
- इस कंचन पर्वत के शिखर पर १-१ सुंदर प्रासाद हैं, वे सर्व प्रासाद यमक-समक पर्वत के प्रासाद के समान ही जानना। सभी प्रासादों में बडे परिकरवाले सिंहासन शोभायमान होते हैं, तथा इनका कंचन नाम का देव ऐश्वर्य पूर्वक उपभोग करते हैं।
- इन कंचनदेव की समृद्धि विजयदेव के समान है, इनका आयुष्य १ पल्योपम का कहा गया हैं और इसकी राजधानी दूसरे जंबूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर में कही गई हैं।
- उपरोक्त बताए अनुसार ही १०० कंचनगिरि देवकुरु क्षेत्र के ५ लघुद्रहों पर भी दोनों साईड १०-१० के अनुसार १०० होते हैं, और इनके अधिष्ठायकों की राजधानियाँ मेरुपर्वत से असंख्य द्वीप-समुद्र के बाद आए हुए जंबूद्वीप के दक्षिण दिशा में हैं। अर्थात् कुल मिलाकर उत्तरकुरु और देवकुरु के १०० + १०० = २०० कंचनगिरि पर्वत होते हैं।[१]

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास भाग-१, सूत्र-२७४ से २७८ (B) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि. ३, उद्देशा-२, सूत्र-१५०, (C) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष-६, सूत्र-१२५ (D) समवायांग सूत्र-१०० (E) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, श्लोक-२६६ से २७६

46

The Jain are a vertiable oasis in the desert of human strife and warldy ambition. It were a better world indeed if the world were Jain.

भौतिक वासना और मानवीय यातनाओं के इस रेतीली भूमि में जैन हरेभरे प्रदेश जैसा है। अगर संपूर्ण विश्व जैन होता तो सचमुच यह विश्व अतिसुंदर बन जाता।

डॉ. मोराइस ब्लूमफिल्ड
जोहन्स होपकिन्स
युनिवर्सिटी,
बाल्टीमोर (U.S.A.)

जंबूवृक्ष

उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट -१).....

महाविदेह क्षेत्र में आए हुए उत्तरकुरु क्षेत्र में "सुदर्शन" नाम का जम्बूवृक्ष आया हुआ हैं, जिसके जिनेश्वरोंने १२ नाम कहे हैं (१) सुदर्शना (२) अमोघा (३) सुप्रबुद्धा (४) यशोधरा (५) भद्रा (६) विशाला (७) सुजाता (८) सुमना (९) विदेहजंबू (१०) सौमनसा (११) नियता और (१२) नित्यमंडिता[१]।

यह जम्बूवृक्ष संपूर्ण रत्नमय होने से इन्हें सर्व वृक्षों में शिरोमणि कहा गया हैं। इस जंबूवृक्ष में जंबूद्वीप का स्वामी "अनादृत" नामक अधिष्ठायक देव रहता हैं[२], वह पूर्वजन्म में जम्बूस्वामीजी भगवंत के संसारी चाचा भी थे और अभी यहाँ "अनादृत" देव के स्वरूप रहे हुए है।[३] इस अनादृत देव की सेवा के लिए ४,००० सामानिक देव और उपभोग के लिए ४ स्नेहमयी पट्टरानियाँ हमेशा उपस्थित रहती हैं, इनकी तीन सभा, सात सेना और सात सेनापति हैं तथा संरक्षण के लिए १६,००० देव शस्त्रसज्जित होकर तैयार खड़े रहते हैं।

सर्वप्रथम इस जंबूवृक्ष की पीठ ५०० योजन लंबाई-चौड़ाई और घेराव में १,५८१ योजन से कुछ अधिक हैं, तथा इसके मध्यभाग में १ मणिपीठिका है जो ४ योजन ऊँची ओर ८ योजन लम्बी-चौड़ी हैं, उस पीठिका पर ही जंबूवृक्ष आया है। इस जंबूवृक्ष का मूल वज्रमय है, इसके मूल जड से ऊपर पृथ्वी के मध्य में कंद हैं, वह रिष्टरत्नमय है, और कंद में से निकला हुआ स्कन्ध वैडुर्यरत्नमय है, इनकी शाखा सुवर्णमय है और प्रशाखाएं भी रक्तसुवर्णमय है। चारों तरफ से फैली हुई विशाल शाखाओं के मध्य में स्कन्ध में से निकली हुई "विडिम" नामक एक ऊँची शाखा है, वह चांदिमय है, इसके पत्ते वैडुर्य रत्नमय है, गुच्छे सुवर्णमय और डोंड़ी भी सुवर्णमय है, इसके प्रवाल के अंकूर चांदिमय और पुष्प विविध रत्नमय हैं। इसके शिखर के मध्य भाग में एक उत्तम "सिद्धायतन" है। इस सिद्धायतन की लम्बाई-चौड़ाई पूर्व दिशा के शाखा के भवनानुसार है, और ऊँचाई कुछ कम है, और इसके तीन दरवाजे हैं इसके मध्यभाग में एक बड़ी मणिपीठिका है जो ५०० धनुष्य लम्बी-चौड़ी और इससे आधी ऊँचाईवाली हैं।

उस मणिपीठिका के उपर एक बड़ा सर्वरत्नमय देवछन्दक है जो ५०० धनुष्य लम्बा-चौड़ा और इससे कुछ विशेष ऊँचा हैं, इसमें वैताढ्य के चैत्य के समान १०८ जिनप्रतिमायें बिराजमान हैं। पूर्वोक्त स्वरूपवाले इस जंबूवृक्ष से आधा है, मूल जंबूवृक्ष के आसपास जिस तरह १२ पद्मवरवैदिका है, उसी तरह इन सर्व के परिवेष्टन-मण्डलाकार ६ वेदिकाएँ हैं। इन १०८ जंबूवृक्ष में अनादृत देव के सर्व प्रकार के "आभूषण" रहा करते हैं।

दूसरे वलय में इस जम्बूवृक्ष के वायव्य, उत्तर, और ईशान इस तरह तीन दिशाओं में सामानिक देवों के ४,००० जंबूवृक्ष हैं और पूर्व दिशा में ४ अग्रमहिषियों के ४ जंबूवृक्ष, अग्निकोण में अभ्यंतरपर्षदा के ८,००० जंबूवृक्ष, दक्षिण दिशा में मध्यम पर्षदा के १०,००० जंबूवृक्ष, नैऋत्य कोण में बाह्यपर्षदा के १२,००० जंबूवृक्ष तथा पश्चिम दिशा में ७ सेनापति के ७ जंबूवृक्ष कहे गये हैं।

(क्रमशः)

(१) (A) देवेन्द्रस्तव पयन्ना-१८१ (B) जीवाजीवाभिगम सूत्र-२७ (C) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, सूत्र-५२, (D) बृहत्क्षेत्र समास (प्रक्षेपगाथा) (२) उत्तराध्ययन सूत्र/बहुश्रुताध्ययन, (३) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, सूत्र-३६५

47

पृथ्वी भ्रमण के खंडन में ध्रुव का तारा प्रमाण रूप है। यदि पृथ्वी वस्तुतः भ्रमण करती हो, तो २१ मार्च को पृथ्वी से सीधी रेखा पर उत्तरध्रुव का तारा जिस रूप में दिखाई देता है, उसकी अपेक्षा २२ दिसंबर अथवा २१ जून को उत्तरध्रुव के तारे की स्थिती तिरछी हो जाने से वह हमारे दाएं अथवा बाएं हाथ की ओर दिखाई देना चाहिए। किन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। इससे स्पष्ट होता है कि 'पृथ्वी घूमती नहीं है।'

जिन-जिन खलासीयोंने अंटार्कटिक सर्कल की प्रदक्षिणा करने का प्रयास किया, उनके कुछ कथनों का उपयोग पृथ्वी गोल है इस बात को सिद्ध करने के लिए किया जाता है, लेकिन यदि उन कथनों का बारिकी से निरीक्षण करें तो कुछ अलग ही वास्तविकता जानने को मिलती है।

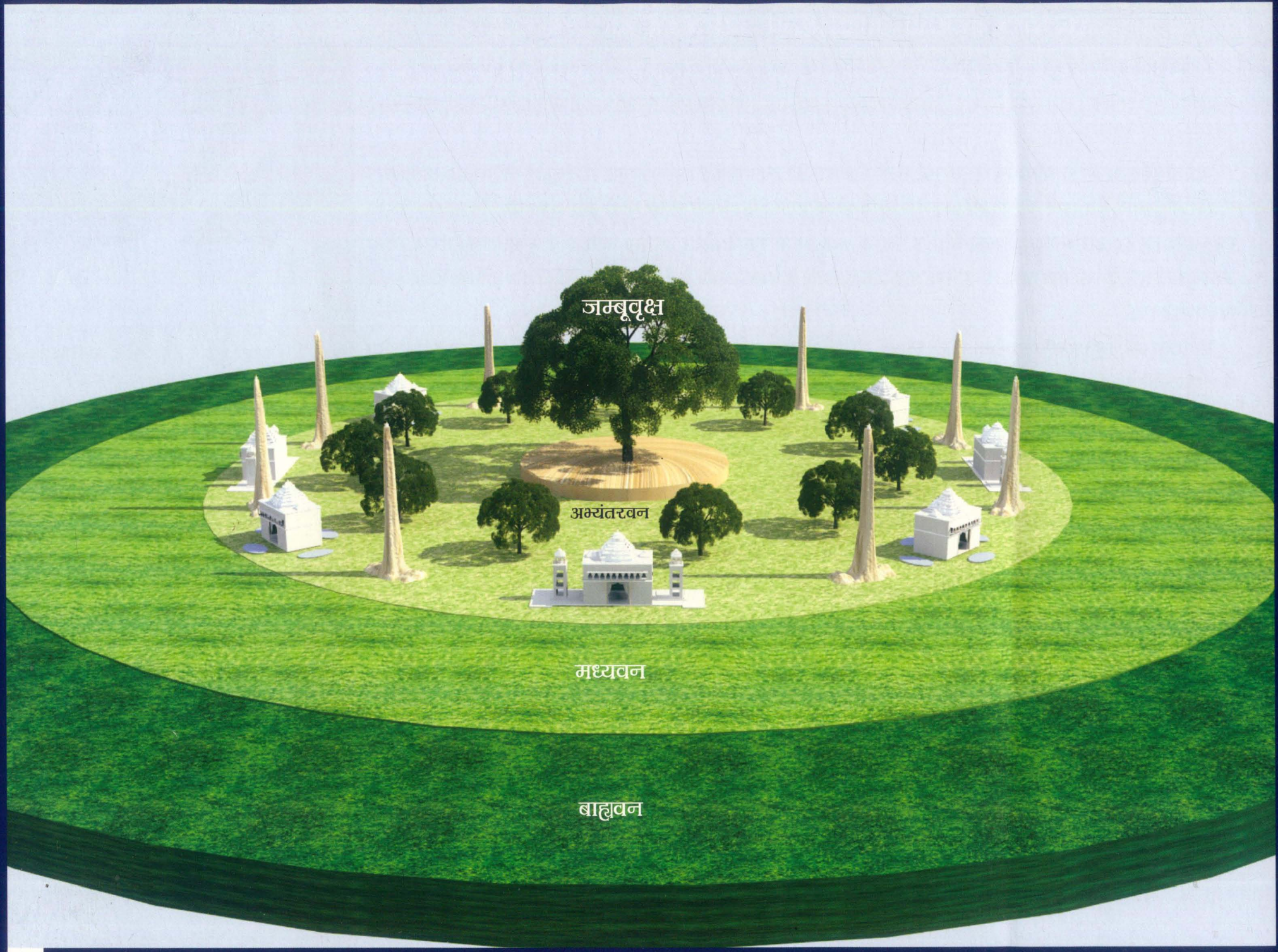
जम्बूवृक्ष
अभ्यंतरवन
मध्यवन
बाह्यवन

उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - २).....

तीसरे वलय में आत्मरक्षक देवों के प्रत्येक दिशा में ४,०००-४,००० अतः कुल १६,००० जम्बूवृक्ष हैं। जो की इस दूसरे और तीसरे वलय में रहे इन वृक्षों की ऊँचाई आदि का मान पूर्वाचार्यों ने कुछ कहा नहीं हैं, इसलिए विद्वानोंने पद्मसरोवर के श्रीदेवी के कमल के दृष्टांतानुसार अनुक्रम से जो परिवार बताया है, उसी तरह यह दूसरे-तीसरे वलय का मान पूर्व के वलय से आधा आधा है, यह समझना।

उपरोक्त परिवारवाले इस जंबूवृक्ष के आस-पास १००-१०० योजन मानवाले तीन (३) वन आए हैं, प्रथम अभ्यंतरवन में पूर्वादि ४ दिशाओं में ५०-५० योजन छोड़ने के बाद जंबूवृक्ष के शाखा के भवन समान १-१ बड़ा भवन है। इन प्रत्येक भवन में मणिपीठिका हैं, और इस मणिपीठिका के उपर अनादृत देव को आराम करने योग्य शय्या है।

इस अति सुशोभित वनखण्ड में ईशानकोण में ५० योजन जाने के बाद चारों दिशाओं में ४ बावड़ी आई हैं (१) पूर्व दिशा में पद्मा, (२) दक्षिण दिशा में पद्मप्रभा (३) पश्चिम दिशा में कुमुदा और (४) उत्तर दिशा में कुमुदप्रभा। ये सभी $^{१}/_{२}$ कोस चौड़ी, १ कोस लम्बी तथा ५०० धनुष्य गहरी हैं। प्रत्येक के चार दरवाजे हैं और तोरण हैं, इनके चारों तरफ पद्मवरवेदिका तथा बगीचा है। इन चारों बावड़ियों के मध्यभाग में १-१ प्रासाद है, जो इस मूल जंबूवृक्ष की शाखा में रहे प्रासाद के समान ही है।

इसी तरह यहाँ वायव्यकोण में भी ५०-५० योजन जाने के बाद चारों दिशा में बावड़ियां आई हुई हैं जिनके नाम (१) पूर्व में - उत्पलगुल्मा (२) दक्षिण में - नलिना (३) पश्चिम में - उत्पला और (४) उत्तर दिशा में - उत्पलोज्ज्वला इन बावड़ियों का प्रमाण भी उपरोक्त बावड़ियों के समान है, और इनमें भी जंबूवृक्ष के प्रासाद समान प्रासाद है।

इस वन के नैऋत्यकोण में भी ५०-५० योजन जाने के बाद चारों दिशा में ४ बावड़ियां हैं जिनके नाम- (१) पूर्वादि क्रम से - (१) भृंगा (२) भृंगनिभा (३) अंजना और (४) कज्जलप्रभा। प्रासाद और प्रमाण पूर्ववत् समझना।

उसी वन के अंदर अग्निकोण में भी ५० योजन छोड़ने के बाद चारों दिशा में पूर्वादि क्रम से ४ बावड़ियां हैं (१) श्री कान्ता (२) श्री महिला (३) श्री चन्द्रा तथा (४) श्री निलया। इस सब अर्थात् १६ बावड़ियों में प्रासादादि पूर्व की जैसे समझ लेना तथा प्रत्येक प्रासाद में अनादृत देव के क्रीडा करने के योग्य परिवार सहित बड़ा सिंहासन हैं।[१]

ठीक उपर बताए अनुसार ही पश्चिमार्ध देवकुरु क्षेत्र के मध्यभाग में एक शाल्मली नाम का वृक्ष है। वह हर प्रकार से (सर्वथा) जम्बूवृक्ष के समान ही हैं। मात्र फेरफार में इस शाल्मली वृक्ष का पीठ चान्दीमय है, उसके प्रासाद, भवन और अन्तःस्थ शिखर भी चान्दीमय (रुप्य) हैं। इसका आकार एक शिखर के समान होने से यह कूट "शाल्मली" के नाम से सुप्रसिद्ध है, तथा सुपर्णकुमार जातिय (भवनवासी देवों की एक जाती) के वेणुदेव नामक देव इसका स्वामी हैं।[२]

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-२७९ से ३०० (२) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, सूत्र-४१६/१७/१८, (B) ठाणांग सूत्र, द्वितीय स्थानकम्, सूत्र-८२, (C) सूयगडांगचूर्णि (D) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि.-४

48

श्री आदिनाथ प्रभु की स्तवना से युक्त भरत चक्रवर्ती के द्वारा ४ वेदों की रचना कि गई। यह ४ वेद... स्तवना, प्रतिष्ठा, पूजा, श्रावकधर्म का संपूर्ण स्वरूप, ८ कर्म, ७ नय, ४ निक्षेपा, ९ तत्त्व, क्षेत्र-प्रमाणादि से गर्भित थे, इन ४ वेदों के नाम

१) संसार दर्शन वेद,
२) संस्थापना परामर्शन वेद
३) तत्त्वावबोधन वेद और
४) विद्याप्रबोध वेद थें।

भरत चक्रवर्ती की ८ पाट परंपरा तक प्रजा भरत के जैसे ही इन वेदों को पढने वालों की भक्ति करती थी, फिर समय जाते लोग ब्राह्मण पूजनीक है इस तरह मानने लगे और जब सुविधिनाथ के तीर्थ में तीर्थ का विच्छेद हुआ तब ये ४ मूलवेद नष्ट हुए और फिर नये ४ वेद बनाए गये।

(आचार रत्नाकर दीपिका /रत्नसागर / भाग - २)

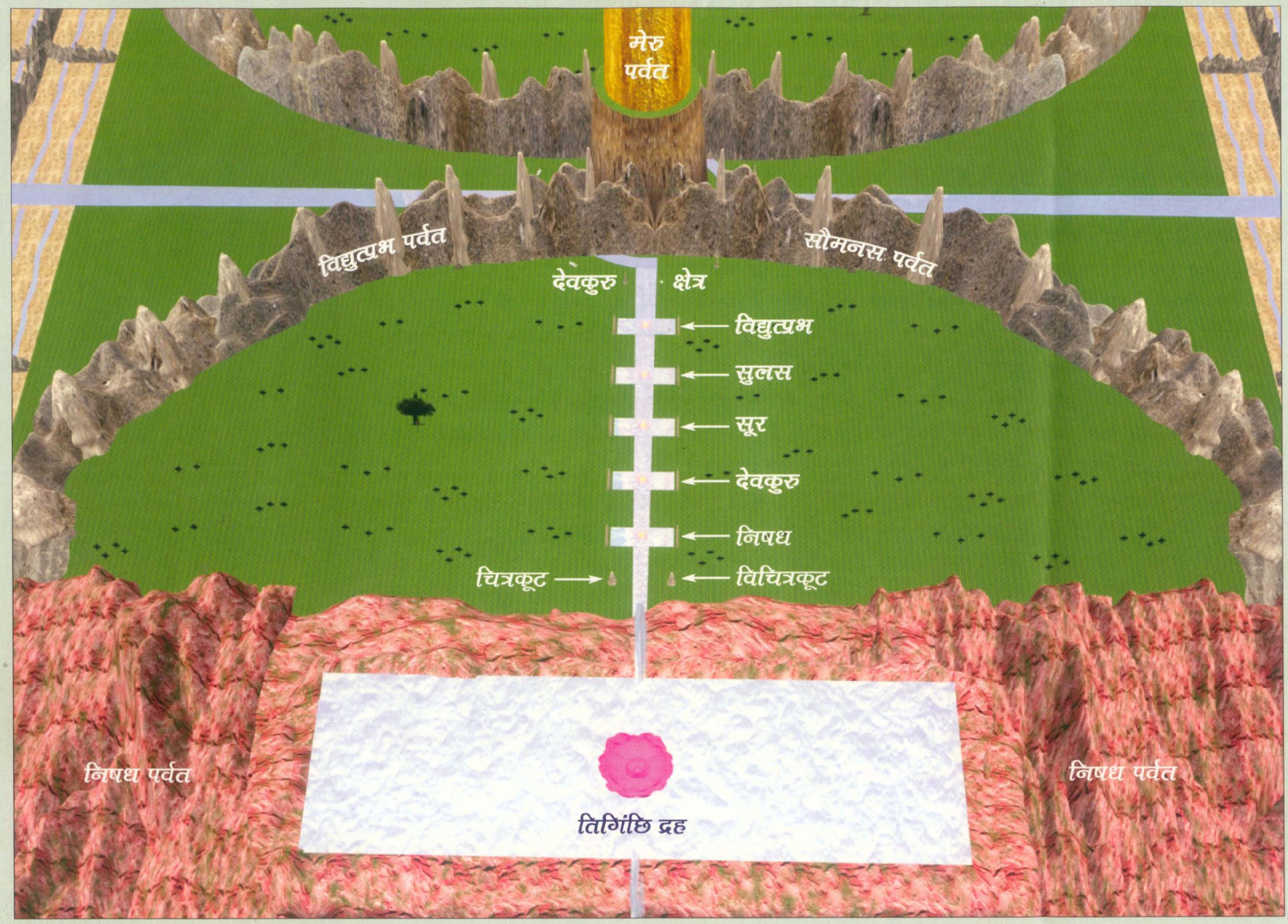
मेरु पर्वत
विद्युत्प्रभ पर्वत
सौमनस पर्वत
देवकुरु
क्षेत्र
विद्युत्प्रभ
सुलस
सूर
देवकुरु
निषध
चित्रकूट
विचित्रकूट
निषध पर्वत
निषध पर्वत
तिगिंछि द्रह

महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत देवकुरु क्षेत्र.....

- अब हम महाविदेह के चोथे विभाग स्वरूप ऐसे देवकुरु क्षेत्र के विषय में कुछ जानकारी देंगे... जो ''सौमनस'' और ''विद्युत्प्रभ'' नाम के गजदंतगिरि पर्वतों की गोद में रहे हों इस तरह ''देवकुरु क्षेत्र'' मेरुपर्वत से दक्षिण में और निषधाचल से उत्तर दिशा में हैं।
- यहाँ देवकुरु नाम का १ पल्योपम के आयुष्यवाला देव रहता है, इसलिए इसका नाम ''देवकुरु'' पड़ा हैं, अथवा यह नाम एक शाश्वत ही नाम है, इस तरह समझना।
- निषध पर्वत से ८३४ $^{४}/_{७}$ योजन जाने के बाद सीतोदा नदी के पूर्व तट पर ''विचित्रकूट'' नाम से पर्वत हैं, और पश्चिम तट पर ''चित्रकूट'' नामक पर्वत आया हैं, इन दोनों का समग्र स्वरूप उत्तरकुरु क्षेत्र में रहे हुए 'यमक-समक' पर्वत के समान समझ लेना चाहिए। परन्तु इनके स्वामी चित्रदेव और विचित्रदेव की राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत की दक्षिण में कही है।
- इस देवकुरु क्षेत्र में ५ लघुद्रह (सरोवर है) जिसके नाम अनुक्रम से (१) निषध (२) देवकुरु (३) सूर (४) सुलस और (५) विद्युत्प्रभ हैं।[१] तथा इनके दोनों तरफ १०० कंचनगिरि पर्वत भी हैं।
- इस देवकुरु क्षेत्र को भी सीतोदा नदी ने मानो सीता नदी की स्पर्धा के कारण पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध, इस तरह दो विभाग में बांट दिया हैं। जो भाग सीतोदा नदी के पूर्व में है, वह पूर्वार्द्ध देवकुरु है और जो भाग पश्चिम में हैं उसे पश्चिमार्द्ध देवकुरु कहते हैं।
- उत्तरकुरु क्षेत्र में रहे हुए जंबूवृक्ष के जैसे ही देवकुरु क्षेत्र के मध्यभाग में ''शाल्मली वृक्ष'' आया हुआ हैं, इसका स्वामी (मालिक) सुवर्णकुमार जातिय ऐसा ''वेणुदेव'' नामक देव हैं।[२]
- इस देवकुरु के मनुष्य और तिर्यंचों का आयुष्य, शरीरमानादि स्वरूप, उत्तरकुरु के मनुष्य आदि का जो कह गये हैं, ठीक उसी तरह इसी में भी समझ लेना।
- कुरुक्षेत्र के दोनों विभाग में ''सुषम सुषमा'' नाम का (प्रथम आरे जैसा) आरा चल रहा है, अर्थात् परस्पर समानता होने के कारण दोनों मानो कलह झगड़ा करने के लिए आमने सामने मिले हों और मध्यस्थरूप मेरु ने मध्यस्थ बनकर इनको अलग कर दिए हों, इस तरह लगता है।

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-२७३ (२) (A) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७, सूत्र-४१६/१७/१८ (B) ठाणांग सूत्र, द्वितीय स्थानकम्, सूत्र-८२ (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१७ सूत्र-४१३

49

The earth is flat even in christianity....

The bible scripture of the christianity too confisms at several places belief that the earth is flat and static "And then he said, Let us makes a town which has a tower to reach to the heaven. Genesis 11:1-9 (4) belief that the earth is round but the roundness the Bible indicates that roundness is the roundness of the plate." "when I lavd foundation of the earth, where were you ?" Job 37:33. Thus the christianity too believes that the Earth is flat and static.

जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत...

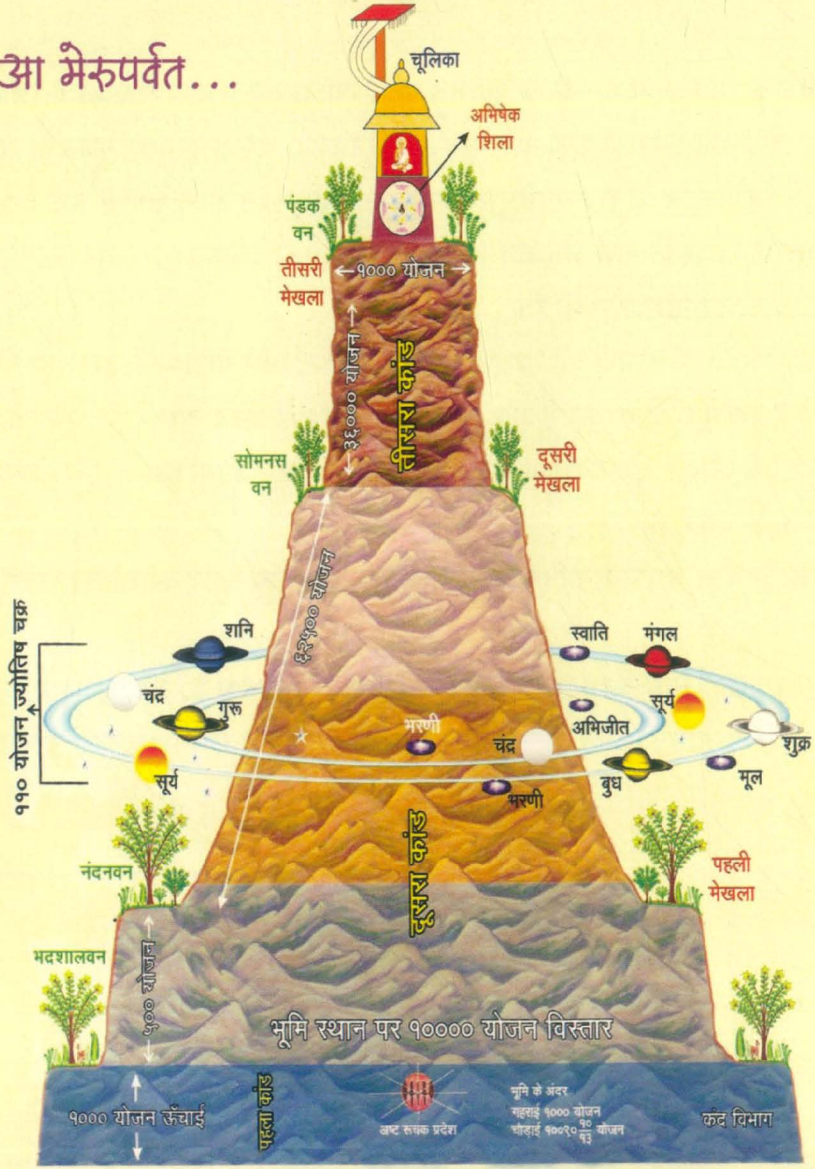

जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत.....

चलिए मित्रो ! अब हम मेरुपर्वत का वर्णन शास्त्रोक्त रीति से जिस तरह बताया गया हैं, उसी तरह बताने का प्रयत्न करते हैं...। तो सर्वप्रथम यह मेरुपर्वत देवकुरु की उत्तर में और उत्तरकुरु के दक्षिण में, पूर्व विदेह की पश्चिम में तथा पश्चिम विदेह की पूर्व में मानो रत्नप्रभारूपी चक्र को धारण किया हो वैसै ठीक (मध्य) बीचोंबीच में रहा हुआ है।

यह मेरुपर्वत एक पद्मवरवेदिका और वनखंड से घिरा हुआ हैं और अनेक रत्नों की कान्ति से प्रकाशमान है। जो पृथ्वी के ऊपर ९९,००० योजन ऊँचा है और १,००० योजन पृथ्वी के अन्दर रहा हैं। इस तरह संपूर्ण १,००,००० योजन का हैं, इसके उपरांत ४० योजन की इसकी चूलिका (चूला) हैं। इस मेरु का मूल में विस्तार १०,०९० $^{१०}/_{११}$ योजन है तथा परिधि (घेराव) ३१,९१० $^{३}/_{११}$ योजन हैं।

समभूतल में इसकी चौड़ाई १०,००० योजन हैं, और शिखर पर १,००० योजन हैं, तथा समभूतल में इसका घेराव ३१,६२३ योजन तथा ऊपर ३,१६२ योजन होता हैं।[१]

इस मेरुपर्वत के ३ कांड होते हैं अर्थात् इसके विशिष्ट विभाग तीन प्रकार के कहे गये हैं। उसमें प्रथम कांड (विभाग) के भी ४ भेद हैं (१) मिट्टीमय (२) पाषाणमय (३) वज्रमय और (४) वेणुमय। द्वितीय खंड के भी ४ भेद हैं- (१) अंकरत्नमय (२) स्फटिकरत्नमय (३) सुवर्णमय (४) रुप्य (चांदी) मय। और तीसरा कांड (विभाग) संपूर्ण उत्तम सुवर्णमय है। इन तीनों कांडों का प्रमाण कुछ इस प्रकार है.... मूल से लेकर समतल भूमि तक १,००० योजन का प्रथम कांड हैं। समतल भूमि से ६३,००० योजन का दुसरा कांड है, और वहाँ से ऊपर ३६,००० योजन तक तीसरा कांड हैं। इस तरह तीनों कांडों द्वारा मेरुपर्वत समग्र १,००,००० योजन प्रमाण का होता हैं।[२]

इस मेरुपर्वत के सर्वज्ञ भगवंतोंने १६ नाम बताए हैं जो कुछ इस प्रकार से जाने (१) मंदर (२) मेरु (३) सुदर्शन (४) स्वयंप्रभ (५) मनोरम (६) गिरिराज (७) रत्नोच्चय (८) शिलोच्चय (९) लोकमध्य (१०) लोकनाभि (११) सूर्यावर्त (१२) अस्त (१३) दिगादि (१४) सूर्यावरण (१५) अवतंसक और (१६) नगोत्तम। इन १६ नामों से शोभता मानों यह १६ कलावाला निर्मल चन्द्र आकाश को स्पर्श करता रहा हुआ हो ऐसा दिखता हैं।[३]

इन १६ नामों में भी मुख्य तो "मन्दर" नाम है, इस पर्वत का स्वामी पल्योपम की आयुष्यवाला मंदर नाम का देव है, इसके नाम पर से इसका (मेरुपर्वत का) मंदर ऐसा नाम पडा हो ऐसा कहलाता है, अथवा तो भरत-ऐरावतादि के समान इसका नाम भी शाश्वत जाने।[४]

इस मेरुपर्वत पर ४ श्रेष्ठ वन आये हुए हैं जैसे कि (१) भद्रशालवन (२) नंदनवन (३) सौमनसवन और (४) पांडुकवन[५]।

(तो चलिए अब देखते है..... सर्व प्रथम भद्रशालवन....।)

(१) बृहत्क्षेत्रसमास भाग-१, सूत्र-३०४ से ३०६ (२) (A) बृहत्क्षेत्रसमास भाग-१ सूत्र-३१२ से ३१६ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-६४ से ६९ (३) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, सूत्र-१०९ (B) समवायांग सूत्र-१६, (४) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, सूत्र-१०९ (५) (A) ठाणांग सूत्र, अध्य. ४, उद्देशा-२ सूत्र-२९९, (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, सूत्र-१०३

प्रो. आल्बर्ट आईन्स्टाईन, Sir A.S. एडिंग्टन, Sir J.A. थोमसन्, J.B.S. हेल्डन, आर्थर H. कोम्पटन, Sir ओलिवर लोज, प्रोफेसर W. मेकडुगल इत्यादि कितने ही वैज्ञानिकोंने अपने अपने स्वतंत्र ग्रंथों (पुस्तकों) में "विज्ञान अभी भी अधुरा और अपूर्ण ही है" जैसी बातों का समावेश किया है। यह सब उदाहरण "ग्रेट डिझाइन" नामक पुस्तक में से साभार लिए हैं।

पुद्गल का गमनागमन एक दुनिया से दुसरी दुनिया की तरफ होता है... इस तरह जिन-शासन पुकार पुकार कर कह रहा है कि... उडन तश्तरीयां दुसरी दुनिया से आती है या नहीं आती, यह बात एक बाजु पर रखो... परंतु जिनशासन बता रहा है कि विशिष्ट विद्यावाले पुरुष वैताढ्य-पर्वतादि पर रहने वाले निवासी भी दुसरी दुनिया से आ सकते है और अन्य दुसरी दुनिया में जा भी सकते हैं।

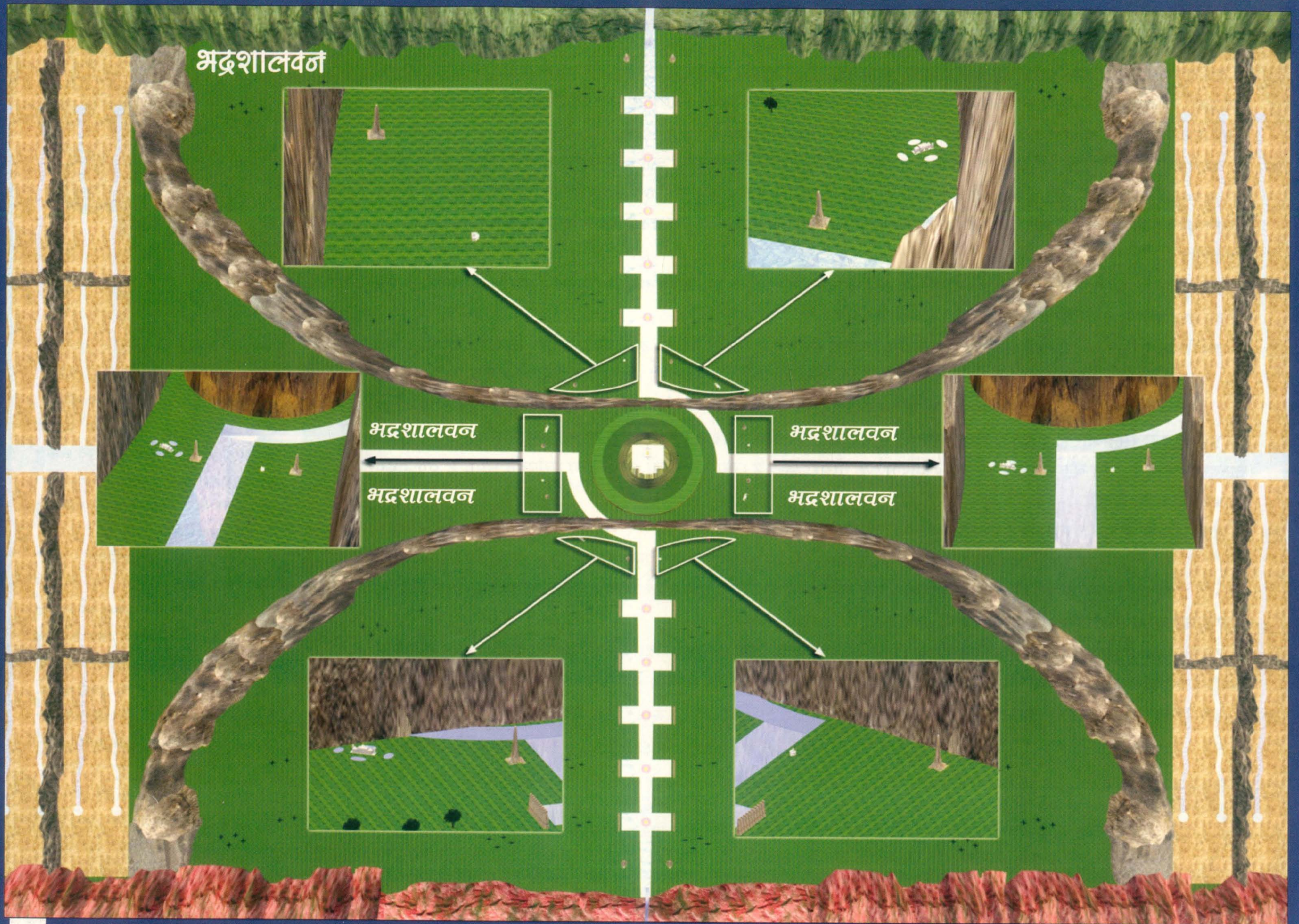
भद्रशालवन
भद्रशालवन
भद्रशालवन
भद्रशालवन
भद्रशालवन

मेरुपर्वत के चारों तरफ रहा हुआ भद्रशालवन.....

मेरुपर्वत के चारों तरफ समतलभूमि पर भद्रशालवन आया हैं। इसकी दोनों मेखलाओं पर क्रमशः नंदनवन और सौमनसवन आए है तथा ऊपर के विभाग में पांडकवन है। प्रथम भद्रशालवन मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम में २२,०००-२२,००० योजन लम्बा है और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा २५० योजन हैं।

इस भद्रशालवन के सीता और सीतोदा इन दो नदियों से तथा गजदंज और मेरुपर्वत से ८ विभाग पड़े हुए है, वह इस तरह (१) मेरुपर्वत के पूर्व तरफ (२) मेरु से पश्चिम तरफ (३) मेरु से दक्षिण की और (विद्युत्प्रभ और सौमनस के बीच) (४) मेरु से उत्तर की और (माल्यवंत और गंधमादन के बीच) इस तरह चार विभाग बने। इसमें सीता और सीतोदा नदियाँ आई हैं, इसने दो-दो विभाग किए है, इससे सर्व मिलाकर ८ विभाग होते हैं।

इस तरह से ८ विभागों में बंटवारा होते, इस भद्रशाल वन में मेरुपर्वत से चारों दिशा में ५०-५० योजन दूर १-१ सिद्धायतन है। इन चारों सिद्धायतनों का स्वरूप और प्रमाणादि सर्व प्रकार से लघु हिमवंत पर्वत के चैत्य (सिद्धायतन) समान है और जो सुरासुरों से सेवित हैं। तथा चारों दिशाओं में इतने ही अन्तर में १-१ प्रासाद है और वे ५००-५०० योजन ऊँचे और इससे आधे लम्बे-चौड़े हैं। तथा इन चार प्रासाद के चारों दिशा में ४-४ बावड़ियाँ है, वे १६ बावड़ी १० योजन गहरी, ५० योजन लम्बी और २५ योजन चौड़ी हैं, और इन सब का स्वरूप तथा प्रमाणादि जम्बूवृक्ष सम्बन्धी बावड़ी के समान समझना।

अग्निकोण व नैऋत्यकोण में जो दो प्रासाद हैं, वो सौधर्मेन्द्र के हैं और वे उनके आसनों से शोभायमान हैं। वायव्यकोण व ईशानकोण में जो दो प्रासाद हैं, वे ईशानेन्द्र के हैं और वे उनके आसनों से शोभायमान हैं।

इस भद्रशाल वन में ८ दिक् गजकूट हैं, वे हाथी के समान आकारवाले होने से गजकूट कहलाते हैं। जिनके नाम (१) पद्मोत्तर (२) नीलवंत (३) सुहस्ती (४) अंजनगिरि (५) कुमुद (६) पलाश (७) वतंश और (८) रोचनगिरि...। इस तरह ये १-१ विदिशा में २-२ गजकूट पर्वत आए हैं और वे आठों प्रासाद और सिद्धायतनों के बीच-बीच में आठ के अन्तर में रहे हुए हैं। इस विषय में इस प्रकार का वृद्ध संप्रदाय हैं - भद्रशालवन मेरुपर्वत की चारों दिशाओं में नदियों की प्रवाह से घिरा हुआ है, इसलिए उसी दिशा में जिनमंदिर नहीं है। परन्तु नदी के पास में श्री अरिहंत परमात्मा का मंदिर (सिद्धायतन) है और गजदंत पर्वतों के पास इन्द्रों के प्रासाद हैं।

ये सभी (८) गजकूट ५०० योजन ऊँचे और १२५ योजन जमीन में गहरे हैं, तथा मूल में ५०० योजन लम्बे-चौड़े मध्यभाग में ३७५ योजन तथा उपर २५० योजन लम्बे-चौड़े और ये सभी वर्षधर पर्वत के शिखर समान जानना चाहिए।

इन सर्व कूटों पर पद्मवरवेदिका तथा बगीचें भी हैं, और इनके शिखर भी सिंहासनों से युक्त ही हैं, तथा ये अपने अपने स्वामीयों के प्रासाद से शोभायमान हो रहे हैं। ये जो प्रासाद कहे हैं वे ६२ योजन लम्बे-चौड़े तथा ऊँचाई में ३१ योजन के हैं। इन प्रासादों में १ पल्योपम के आयुष्यवाले अपने-अपने कूट के समान नामवाले कूट-पर्वत के स्वामी देव स्वेच्छानुसार क्रीडा करते हैं।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-७३ से ११९

नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों से वर्तमान युग प्रगति का युग कहा जाता है। फिर भी वैज्ञानिक चकाचौंध में अच्छे अच्छे मनिषी-लोक भी सत्य के दर्शन की मूलभूत प्रणाली को भूल कर आश्चर्यभूत हो जाते है।

फलतः... बुद्धि और मन की सीमा तक की जानेवाली दौड़ के द्वारा होनेवाले सत्य का यत्किंचित् या विकृत दर्शन को ही पूर्ण सत्य मानने की धृष्टता का उदय होता है। इसलिए ही आप्तपुरुषों के द्वारा बताई गई "सत्यं हि अतीन्द्रियम्" यह व्याख्या सत्य को इन्द्रिय - मन एवं बुद्धि से अगोचर बताते हैं।

"तत्त्वज्ञान स्मारिका"
में से साभार

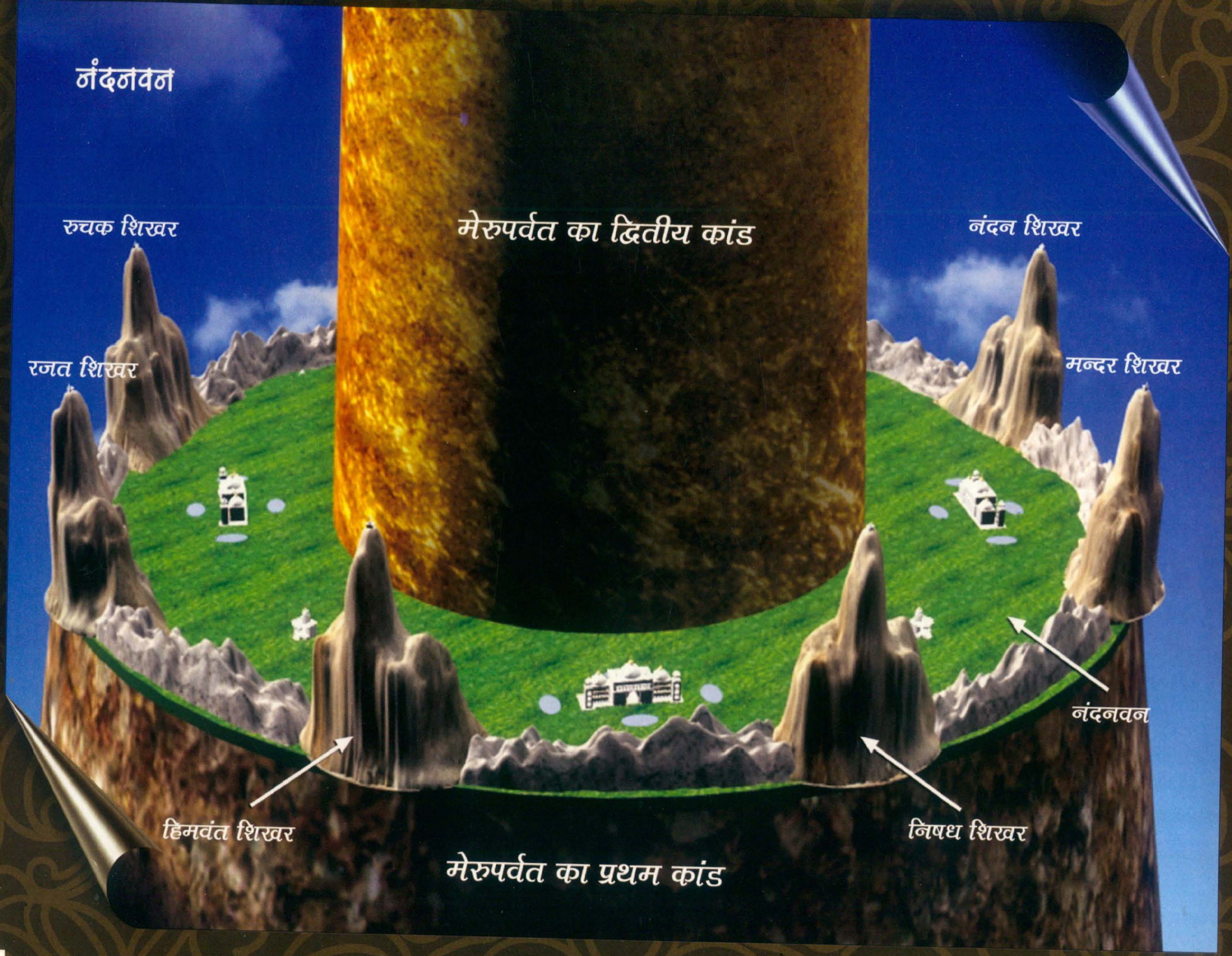
नंदनवन
रुचक शिखर
मेरुपर्वत का द्वितीय कांड
नंदन शिखर
रजत शिखर
मन्दर शिखर
नंदनवन
हिमवंत शिखर
निषध शिखर
मेरुपर्वत का प्रथम कांड

मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट -१).....

गत प्रकरण में भद्रशालवन की संपूर्ण जानकारी देखी... अब इसी भद्रशालवन की समभूमि से उपर चढते, ५०० योजन पूर्ण होते ही ''नन्दनवन'' नामक वन आता है।[१] इसका विस्तार ५०० योजन का है और वह मेरुपर्वत को वलयाकार से घिरा हुआ है। यह नंदनवन पद्मवरवेदिका तथा बगीचों से भी घिरा हुआ है। मेरुपर्वत से ५०-५० योजन के अन्तर में पूर्वादि ४ दिशाओं में १-१ सिद्धमंदिर आया हुआ हैं। तथा विदिशाओं में अर्थात् चारों कोणों में भी मेरुपर्वत से इतने ही अन्तर में भद्रशालवन की तरह प्रासाद है और प्रत्येक की चार दिशाओं की कुल मिलाकर १६ बावड़ियां है।[२]

१६ बावड़ी के नाम.....ईशानकोण में (१) नंदोत्तरा (२) नंदा (३) सुनंदा और (४) वर्धना। इसी क्रम से अग्निकोण में (१) नंदीषेणा (२) अमोघा (३) गोस्तुपा और (४) सुदर्शना। नैऋत्यकोण में (१) भद्रा (२) विशाला (३) कुमुदा और (४) पुंडरीकीणी। तथा वायव्यकोण में (१) विजय (२) वैजयन्ती (३) अपराजिता और (४) विजयन्त।[३] ये ४-४ बावड़ियां विदिशाओं में रहे प्रासादों को घेरकर पूर्वादि दिशा में अनुक्रम से रही हुई हैं। उसमें अग्निकोण और नैऋत्यकोण में सौधर्मेन्द्र के प्रासाद हैं तथा वायव्य और ईशानकोण में ईशानेन्द्र का प्रासाद हैं।

इस नंदनवन में ९ शिखर आए हुए हैं (१) नंदन (२) मन्दर (३) निषध (४) हिमवंत (५) रजत (६) रुचक (७) सागरचित्र (८) वज्र और (९) बल। ये सभी शिखर इस नंदनवन में मेरुपर्वत से ५०-५० योजन के अन्तर-फासले पर हैं।[४]

प्रथम ''नंदन'' नामक शिखर है, वह पूर्व की तरफ के सिद्धायतन और ईशानकोणें में आए प्रासाद के बीच में है, और वहाँ ''मेघंकरा'' नाम की देवी का निवास हैं। इस देवी की राजधानी दूसरे जंबूद्वीप में मेरुपर्वत से ईशानकोण में आई हैं और वह सर्व प्रकार से विजयदेव की राजधानी समान जानना।[५]

दूसरा जो ''मंदर'' नाम का शिखर हैं, वह पूर्व तरफ सिद्धायतन और अग्निकोण में आए प्रासाद के बीच में आया है, तथा वहाँ ''मेघवती'' नाम की देवी रहती है। इसकी राजधानी भी दूसरे जंबूद्वीप के पूर्व दिशा में आई हुई है। (इस तरह आगे आते सभी देव-देवियों की राजधानी दूसरे जंबूद्वीप के उस उस दिशागत जाननी चाहिए।)

''निषध'' नाम का तीसरा शिखर दक्षिण दिशा के सिद्धायतन और अग्निकोण के प्रासाद के बीच में आया हुआ हैं, और यहाँ पर ''सुमेघा'' नाम की देवी का रहेवास-निवास स्थान हैं।

चौथा ''हेमवंत'' नामक शिखर दक्षिण दिशा के सिद्धायतन की पश्चिम और नैऋत्यकोण के प्रासाद की पूर्व दिशा में आया है। तथा इस शिखर पर ''मेघमालिनी'' देवी स्वामीरूप में रहती है।

पांचवा ''रजत'' नाम का शिखर है, वह पश्चिम दिशा के सिद्धमंदिर (सिद्धायतन) की दक्षिण में और नैऋत्यकोण के प्रासाद की उत्तर में आया हैं। इस शिखर पर ''सुवत्सा'' नाम की देवी निवास करती हैं।

(१) + (२) + (३) + (४) + (५) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-३२७, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७.

52

यंत्रवाद से भी ज्यादा बलवान मंत्रवाद...

जापान के द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध में कृत्रिम हलन-चलन कर सके ऐसे इन्सान (रोबट) बनाए गए थे, जो कुछ काम भी कर सकते थे परंतु जैनशासन के महान शासन प्रभावक आ.श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरि के द्वारा तो पाणी में राई के दाने डालने पर हथियार बद्ध घुडसवार सैनिक बनाये गये थे.. अब कहो ! यंत्रवाद से भी ज्यादा बलवान मंत्रवाद है..ना..!

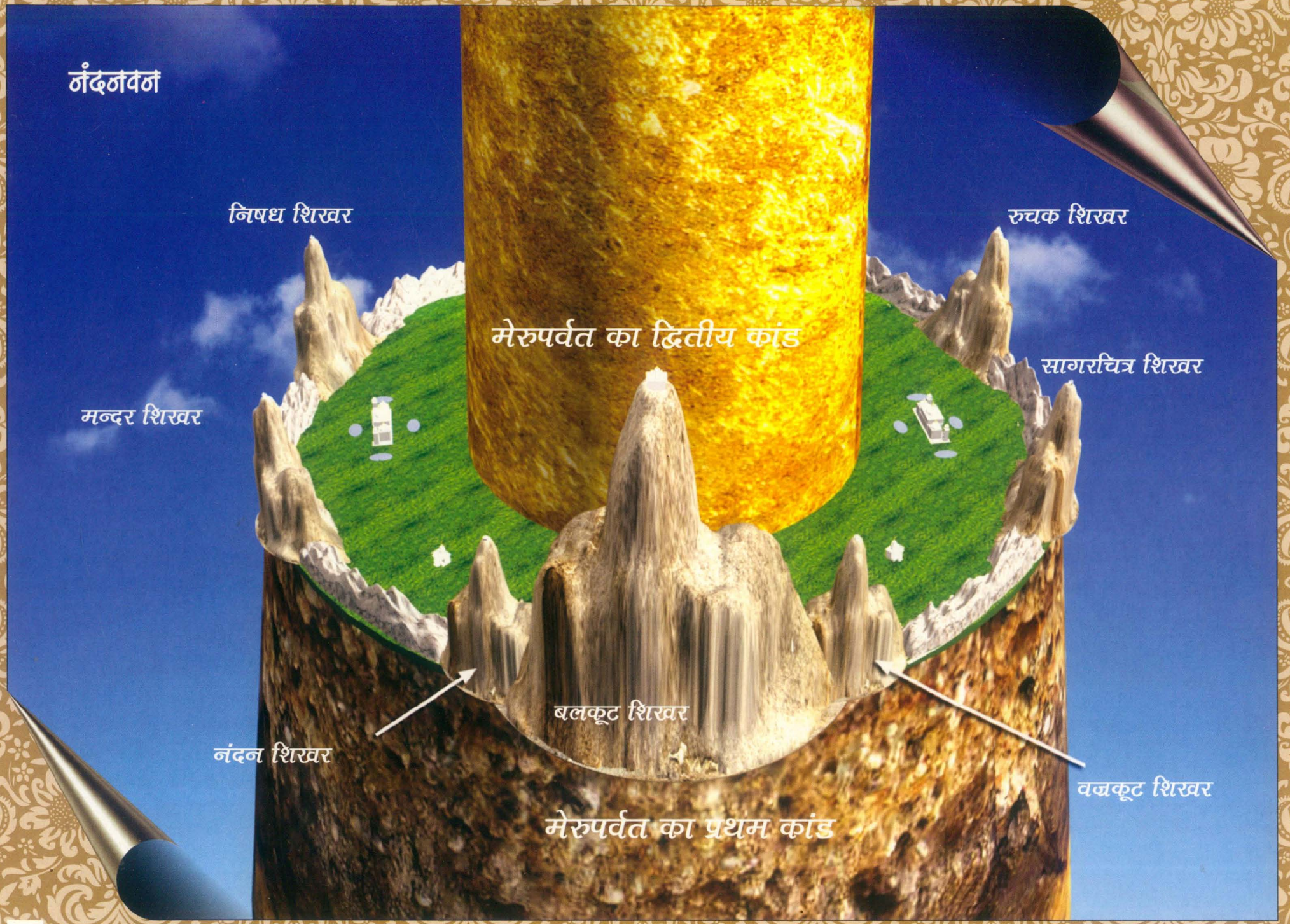
नंदनवन
निषध शिखर
रुचक शिखर
मेरुपर्वत का द्वितीय कांड
सागरचित्र शिखर
मन्दर शिखर
बलकूट शिखर
नंदन शिखर
वज्रकूट शिखर
मेरुपर्वत का प्रथम कांड

मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन(पार्ट -२).....

- ''रुचक'' नाम का छट्ठा शिखर है, वह पश्चिम दिशा के सिद्धायतन की उत्तर दिशा में और वायव्यकोण के प्रासाद से दक्षिण दिशा में आया है। इस शिखर पर ''वत्समित्रा'' नाम की देवी निवास करती हैं।
- ''सागरचित्र'' नाम का सातवाँ शिखर है, वह उत्तर तरफ के सिद्धायतन से पश्चिम दिशा में और वायव्यकोण के प्रासाद से पूर्व में आया हैं। इस शिखर पर ''बलाहका'' नाम की देवी का निवासस्थल हैं।
- आठवाँ ''वज्रकूट'' नाम का शिखर है, वह उत्तर तरफ के सिद्धायतन की पूर्व में और वायव्यकोण के प्रासाद की पश्चिम दिशा में रहा हैं। इस शिखर पर ''वज्रसेना'' नाम की देवी का निवास है।
- ये आठों देवियाँ ऊर्ध्वलोक की दिक्कुमारियाँ है, और ये जिनेश्वर-तीर्थंकरों के जन्म समय में सुगन्धित जल का छिडकाव व पुष्पों की वृष्टि करती हैं। इस तरह आठों शिखरों का वर्णन हो गया यह आठों शिखर जो भद्रशालवन के शिखर के समान मूल में ५०० योजन लम्बे-चौड़े हैं, तथा यह ५०० योजन भी वन में मेरु से ५० योजन के बाद में कहा हैं, अतः उनका कुछ भाग ५० योजन ''बलकुट'' के समान आकाश में स्थिर हैं।
- आखिर नौवाँ ''बलकूट'' नाम का शिखर है, जो नंदनवन में ही मेरु पर्वत के ईशान कोण में आया हैं, (महान पदार्थों की विदिशा महान विशाल होने से यहाँ प्रासाद और बलकूट दोनों का अवकाश घटता हैं।) अर्थात् नंदनवन के ५०० योजन रोककर वह बलकूट पर्वत खड़ा है और शेष आकाश में ५०० योजन रोके हुए यह अद्धर रहा हुआ हैं।* इस बलकूट की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई आदि सर्व हकीकत माल्यवंत (गजदंतगिरि) पर्वत के ''हरिस्सह'' नामक शिखर के अनुसार जान लेना।
- इस बलकूट पर ''बल'' नाम का स्वामी देव रहता हैं। इसकी राजधानी इस मेरुपर्वत से उत्तर की दिशा में आए अन्य (दूसरे) जंबूद्वीप में आई हुई हैं। इस बलदेव की इस राजधानी का नाम ''बला'' हैं और बाकी समस्त जानकारी हरिस्सहा राजधानी के समान जाननी।
- यह नंदनवन और पाण्डकवन में शाश्वत जिनचैत्यों की यात्रार्थे जाते समय विद्याचारण मुनियों का विश्राम-स्थल है तथा पाण्डकवन में शाश्वता जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन-वंदन करके वापिस आते समय जंघाचारण मुनियों का यहाँ विश्राम लेने का स्थान हैं।[१]

★ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका के अन्दर तो इस तरह कहा गया है कि - मेरुपर्वत से ईशानकोण में ५० योजन जाने का बाद ईशान की ओर प्रासाद हैं, तथा इससे भी आगे ईशानकोण में ''बलकूट'' आया हैं... (यह बात समझ में नहीं आती अतः तत्त्वं तु केवलीगम्यम्।)

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-१२४ से १७३

53

याद रखो कि - बहुत सारे विषयों से अनजान होना यह कोई शर्म की बात नहीं है, परंतु सीखने समझने की शक्ति और अवसरों के अनुकुल होने पर भी उन्हें न सीखना, न समझना, इत्यादि यह शर्म की बात भी है और दुर्भाग्य की भी... इसीलिए एक बात ध्यान रखना कि - जिस तरह विषय संबंधी चिंतन से मन चंचल बनता है। शत्रु सबंधी चिंतन से मन द्वेषी तथा क्रुद्ध बनता है। प्रिय सबंधी - चिंतन से मन रागी एवं विह्वल बनता है, वैसे ही आपके हाथ में रहा हुआ यह तत्त्वज्ञान से भरे ग्रंथ के चिंतन - मनन से मन परम शांत और सात्त्विक बनता है।

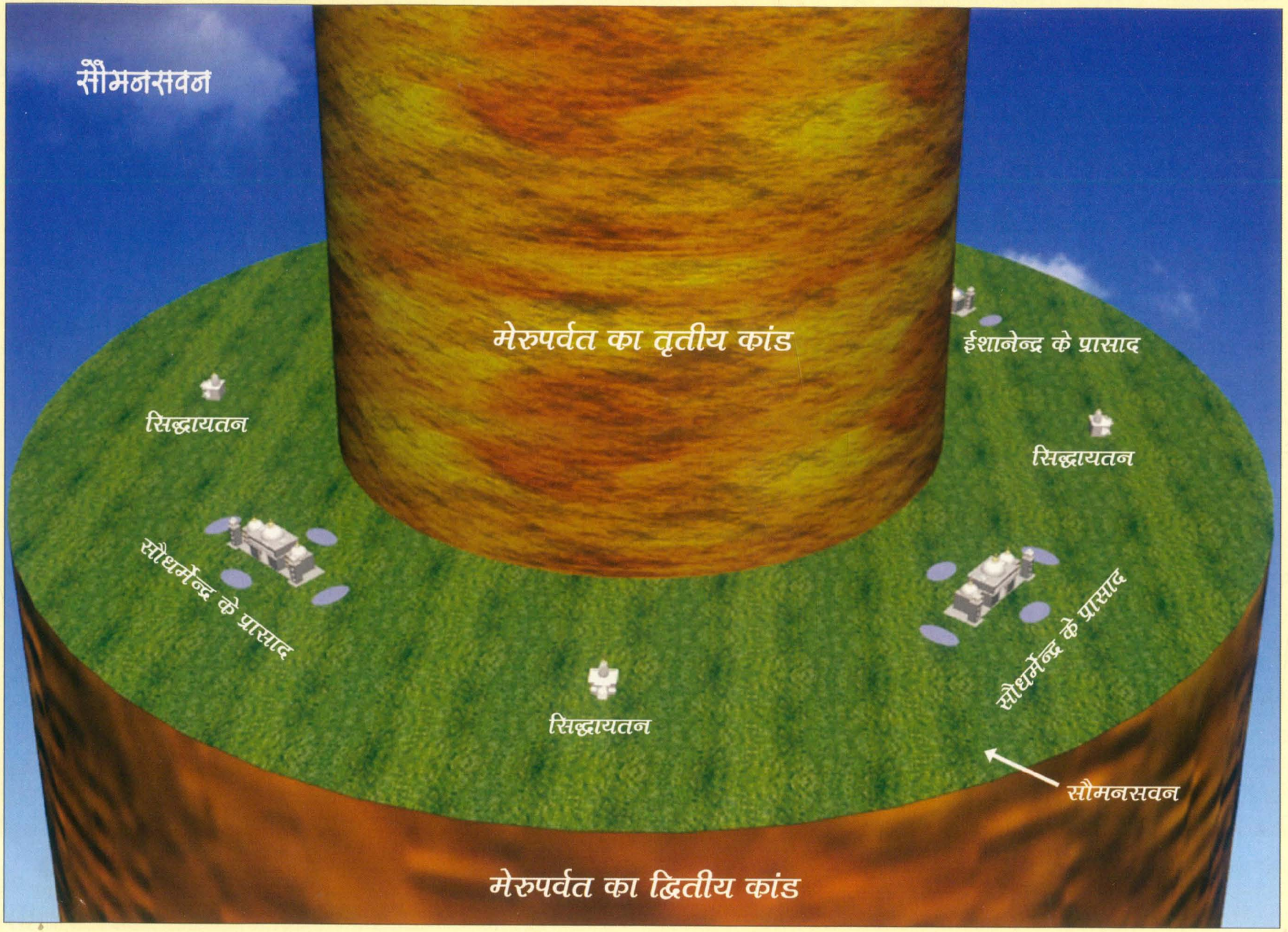
सौमनसवन
मेरुपर्वत का तृतीय कांड
ईशानेन्द्र के प्रासाद
सिद्धायतन
सिद्धायतन
सौधर्मेन्द्र के प्रासाद
सौधर्मेन्द्र के प्रासाद
सिद्धायतन
सौमनसवन
मेरुपर्वत का द्वितीय कांड

मेरुपर्वत पर आया हुआ सौमनसवन.....

- पूर्व के प्रकरण में हमने नंदनवन का स्वरूप जाना... अब सौमनसवन का विस्तार से स्वरूप देखेंगे। नंदनवन के समतलभूमि से ६२,५०० योजन ऊपर जाने के बाद, वहाँ चारों तरफ से ५०० योजन का विस्तारवाला 'सौमनस' नाम का वन आता हैं।[१]
- यह वन भी मेरुपर्वत की चारों तरफ से घिरकर रहा हुआ है और इसका बाह्य-अभ्यंतर रूप दो प्रकार का व्यास होता है, जो इस प्रकार का हैं... इस वन के बाहर मेरुपर्वत का पूर्व-पश्चिम अथवा उत्तर-दक्षिण विस्तार (व्यास) ४,२७२ ८/११ योजन का कहलाता है, वह इस तरह से -पृथ्वी से सौमनसवन तक मेरु की ऊंचाई ६३,००० योजन है, अब इसे ११ से भाग देना ६३,००० ÷११ अर्थात् भाग देने में ५,७२७ ३/११ योजन आता हैं। इस संख्या को पृथ्वी पर मेरुपर्वत की चौड़ाई जो १०,००० योजन हैं, उसमें से निकाल देने से जो आती हैं, वह बाहर का पर्वत का विस्तार आता हैं जैसे कि - १०,०००-५,७२७ ३/११ = ४,२७२ ८/११।
- इस वन की दोनों तरफ की चौड़ाई ५००-५०० योजन की हैं, कुल मिलाकर १,००० योजन होती हैं, उसे बाहर की चौड़ाई में से निकाल देने से जो संख्या आती है, वह अन्दर की चौड़ाई समझना अर्थात् ४,२७२ ८/११ - १,००० = ३,२७२ ८/११ अन्दर की चौड़ाई है।
- इस नंदनवन में कूट (शिखर) कहे गये हैं, उन कूट सिवाय सब यहां नंदनवन समान समझना।
- इसी के समान प्रत्येक दिशा में सिद्धायतन समझना, विदिशा में बावड़ी से घिरे हुए प्रासाद समझना। जो बावड़ी के इस प्रकार से नामादि जानें।
- ईशानकोण में पूर्वादि क्रम से (१) सुमना (२) सौमनसा (३) सौमनांसा और (४) मनोरमा नाम की बावड़ी समझना। अग्निकोण में पूर्वादि क्रम से (१) उत्तरकुरु (२) देवकुरु (३) वारिसेणा और (४) सरस्वती नाम की बावड़ी समझना। नैऋत्यकोण में पूर्वादि क्रम से (१) विशाला (२) माघभद्रा (३) अभयसेना और (४) रोहिणी नाम की बावड़ी समझना। तथा वायव्यकोण में पूर्वादि क्रम से (१) भद्रोत्तरा (२) भद्रा (३) सुभद्रा और (४) भद्रावती नाम की बावड़ी जाने।[२]
- इस सौमनस वन में... अग्निकोण में और नैऋत्यकोण में सौधर्मेन्द्र के दो प्रासाद हैं, तथा वायव्यकोण और ईशानकोण में ईशानेन्द्र के दो प्रासाद हैं।[३] इस तरह मैंने सौमनसवन का अल्प मात्र वर्णन किया है।

(१) बृहत्क्षेत्रसमास भाग-१, सूत्र-३३८ (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-३४३ से ३४५ (३) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-१७४ से १९२

आज की दुनिया को सतानेवाली सबसे बड़ी समस्या हिंसा और आतंकवाद है। इस समस्या को टेकल करने के लिए जैनधर्म के सिद्धांतों की विश्व को जरूरत है। जैनधर्म मुझे बहुत ही प्रिय है, कारण कि वो दृढता से पर्यावरण केन्द्र विकास, सहिष्णुता और अहिंसा में विश्वास करता है।

यु.पी.ए. चेर पर्सन, कोंग्रेस
प्रमुखा, सोनिया गांधी

द्रव्य के परमाणुवाद के ऊपर सबसे श्रेष्ठ अभ्यास जैन तत्त्वज्ञानियों ने किया हुआ था। अणु (परमाणु) की परिभाषा जैनमत में बड़ी स्पष्ट थी और है।

डॉ. यशवंत गुलाबराय नायक

मेरुपर्वत का तृतीय कांड

मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन (पार्ट -१).....

अब मैं मेरुपर्वत पर आए पाण्डकवन का वर्णन कर रहा हूँ, सौमनसवन के समभूतल से ऊपर चढ़ते ३६,००० योजन पूर्ण होने के बाद, अनेक देवों से सेवित और चारणमुनियों का विश्रामस्थल रूप कल्पवृक्षों वाला पाण्डकवन आया है।[१] उस वन की चारों तरफ से चौड़ाई ४९४ योजन की हैं - जो इस तरह से आती है - मेरुपर्वत के शिखर का विस्तार १,००० योजन हैं, इसमें से चूलिका के मूल की चौड़ाई जो १२ योजन की हैं, उसे निकाल देने से ९८८ योजन शेष रहते हैं, उसे आधा करने से ४९४ योजन आता हैं।[२]

पूर्वोक्त ३ वन जैसे मेरुपर्वत को घेर कर रहे हुए है वैसे ही यह चौथा पाण्डकवन मेरु की चूलिका को घेरकर रहा हुआ हैं। जिसका घेरावा ३,१६२ योजन से कुछ अधिक कहा गया हैं।

इस पाण्डकवन में मेरु की चूलिका से ५० योजन की दूरी पर पूर्व के समान ही चारों दिशा में १-१ सिद्धायतन आये हैं और ४-४ विदिशाओं में (कोणों में) बावड़ियों से युक्त १-१ प्रासाद हैं, इन बावड़ियों के नाम ईशानादि विदिशाओं के अनुक्रम से इस प्रकार हैं...

ईशानकोण में प्रासाद के चारों तरफ (१) पुंड्रा (२) पुंड्रप्रभा (३) सुरक्ता और (४) रक्तावती।

अग्निकोण के प्रासाद के चारों तरफ (१) क्षीररसा (२) इक्षुरसा (३) अमृतरसा और (४) वारुणी।

नैऋत्यकोण के प्रासाद के चारों तरफ (१) शंखोत्तरा (२) शंखा (३) शंखावर्ता और (४) बलाहका।

वायव्यकोण के प्रासाद के चारों तरफ (१) पुष्पोत्तरा (२) पुष्पवती (३) सुपुष्पा और (४) पुष्पमालिनी।[३]

अग्निकोण तथा नैऋत्यकोण के दो प्रासाद सौधर्मेन्द्र के हैं और वायव्यकोण तथा ईशानकोण के दो प्रासाद ईशानेन्द्र के हैं। भद्रशालवन में आए चैत्य प्रासाद और बावड़ी इन सबका जो मापादि योग्य स्थान पर कहने में आया हैं, वही माप शेष तीनों वन के चैत्य, प्रासाद और बावड़ियों का है।

इस पाण्डकवन में तीर्थंकर परमात्मा के जन्माभिषेक के योग्य ४ शिलाएँ हैं[४], जो जन्मोत्सव के समय स्नात्रजल से पवित्र बनती हैं। इन शिलाओं के नाम पूर्वादि क्रम से (१) पांडुशिला (२) पाण्डुकम्बला (३) रक्तशिला और (४) रक्तकम्बला हैं। इन ४ में से जो प्रथम पाण्डुशिला है, वह अर्जुन सुवर्णमय है, जो मेरु की चूलिका से पूर्व में और वन के पूर्व के आखिर में आयी हैं। यह पूर्व-पश्चिम में चौड़ी और उत्तर-दक्षिण में लम्बी हैं। इसकी लम्बाई ५०० योजन हैं तथा चौड़ाई मध्यभाग मे २५० योजन है क्योंकि इसका आकार अर्धचंद्राकार हैं। तथा दोनों कोणों में अंगुल का असंख्यातवाँ भाग हैं।

यह शिला ४ योजन ऊँची है और चारों दिशाओं में तोरणों से शोभायमान है तथा ३-३ सोपानों से युक्त हैं। इसकी आकृति रस्सी चढी धनुष्य के समान है और चूलिका सन्मुख वक्र तथा अपनी-अपनी दिशा सन्मुख सरल हैं। इस शिला पर दक्षिण और उत्तर में ५०० धनुष्य लंबे और चौड़े तथा २५० धनुष्य ऊँचे दो सिंहासन हैं। इन दो में से जो उत्तर दिशा का है, उसके ऊपर चारों निकाय के देवगण कच्छादि ८ विजय में हुए तीर्थंकर भगवंतों का जन्माभिषेक करते हैं तथा जो दक्षिण दिशा के सिंहासन हैं उसके ऊपर वत्सादि ८ विजय में होने वाले तीर्थंकरों का जन्माभिषेक करते हैं।

(क्रमशः)

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१ सूत्र-३४६ (२) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-३४७ (३) बृहत्क्षेत्रसमास भाग-१ सूत्र-३५३/३५४ (४) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-१, सूत्र-३५५/३५६

55

"Lord Mahavira gave the message of freedom to the whole world. Salvation is attained not by adopting the external forms but by following the true spirit of religion."

- Dr. Ravindranath Tagore

"This land would be instrumental in carrying the message of Lord Mahavira to every member of humanity."

- Dr. Sampurna Nand

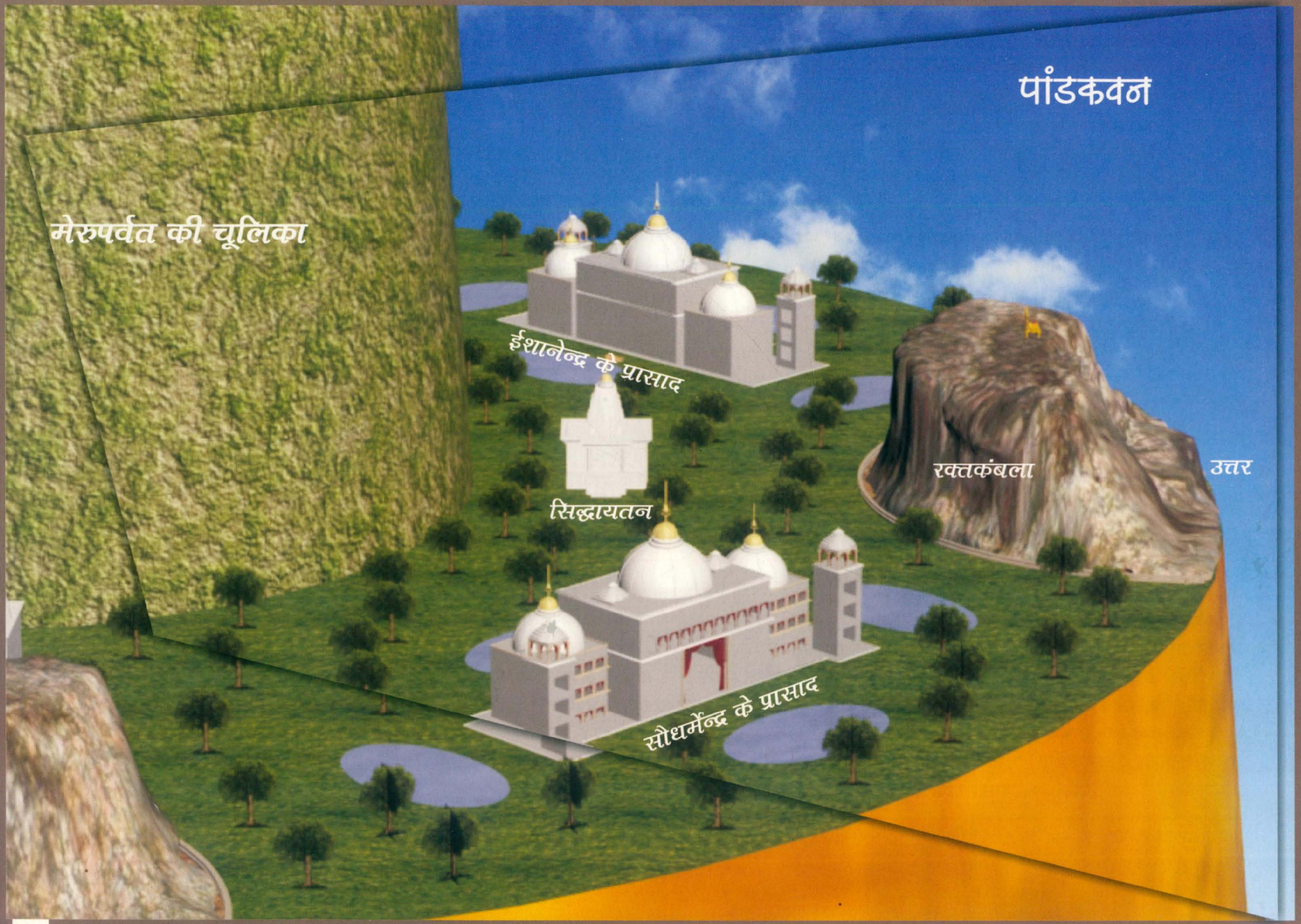
पांडकवन
मेरुपर्वत की चूलिका
ईशानेन्द्र के प्रासाद
सिद्धायतन
रक्तकंबला
उत्तर
सौधर्मेन्द्र के प्रासाद

मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन (पार्ट - २).....

अब जो पांडुकंबला नाम की दूसरी शिला कही है, वह इस वन के दक्षिण के अन्तिम विभाग में, मेरु की चूलिका से दक्षिण दिशा में हैं। वह शिला उत्तर-दक्षिण में चौड़ी और पूर्व-पश्चिम में लम्बी होती हैं, जो की यह दक्षिण दिशा में सीधी-सरल है और चूलिका की ओर वक्र-टेढी हैं। इसके उपर मध्यभाग में उत्तम सिंहासन है, उस सिंहासन उपर इन्द्र महाराज भरतक्षेत्र में जन्म लिए हुए जिनेश्वर प्रभु का अभिषेक करते हैं। इस शिला संबंधी आकृति, परिमाण, सौंपान तथा वैदिकादि शेष सर्व पांडुकशिला के समान जानना चाहिए।

तीसरी शिला का नाम है रक्तशिला, वह वन के पश्चिम छेडे पर मेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में आई है और वो रक्त सुवर्णमय है। यह पूर्व-पश्चिम दिशा में चौड़ी है ओर उत्तर दिशा में लम्बी है एवं यह पश्चिम की और सीधी-सरल और चूलिका की ओर टेडी हैं। पश्चिम सन्मुख रही इस शिला पर उत्तर और दक्षिण दिशा में जिनेश्वर भगवान के अभिषेक के योग्य दो सिंहासन हैं। उत्तर दिशा के सिंहासन ऊपर सीतोदा नदी के उत्तर में आए पक्ष्मादि ८ विजय में उत्पन्न हुए जिनेश्वर भगवंत का अभिषेक करने में आता है, और दक्षिण दिशा के सिंहासन ऊपर सीतोदा के दक्षिण दिशा में आए वप्रादि ८ विजय में जन्म लिए हुए जिनेश्वर भगवंतों का अभिषेक होता हैं।

चौथी रक्तकंबला नामक शिला हैं, वह मेरुपर्वत की चूलिका के उत्तर में वन के उत्तरी किनारे में आई हैं और यह भी लाल स्वर्णमय हैं। यह शिला उत्तर-दक्षिण में चौड़ी और पूर्व-पश्चिम दिशा में लम्बी होती है, वह उत्तर सम्मुख आई हैं और उत्तर दिशा में सीधी और चूलिका की तरफ टेडी हैं। इस शिला पर मणिरत्नों से युक्त सिंहासन शोभायमान हो रहा हैं, और उस सिंहासन पर ऐरावत क्षेत्र में जन्म लिए हुए श्री तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक महामहोत्सव करने में आता है।

इस तरह इस मेरुपर्वत पर रहे पाण्डकवन में अभिषेक करने योग्य छः आसन हैं। यहाँ एक साथ में ४ अथवा २ तीर्थंकर भगवंतों का ही अभिषेक होता है। क्योंकि जिस समय पूर्व-पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में अर्हत् परमात्मा का जन्म होता है तब वहाँ मध्य रात्रि होने से भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में तो दिन का मध्याह्नकाल होता हैं...। शेष रहे ४ मेरुपर्वत पर भी यही व्यवस्था है।

भरत क्षेत्र-ऐरावत क्षेत्र तथा महाविदेह क्षेत्र में काल के विपर्यय (उलट-पलट) होने के कारण एक साथ में ३० तीर्थंकरों का जन्म नहीं होता हैं; इसलिए पूर्वाचार्योंने इस तरह कहा है कि - उत्कृष्ट से २० तीर्थंकरों का और जघन्य से १० तीर्थंकर भगवंतों का जन्म एक साथ में हो सकता है। यह बात बड़ी युक्ति पूर्ण कही है। इसी ही तरह भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की परम साम्यता होने के कारण से पूर्वोक्त संख्या से कम-ज्यादा तीर्थंकरों का जन्म नहीं होता हैं।[१]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-१९३ से २४९

मुंबई हाईकोर्ट के जज श्री रांगणेकर कहते है...

From modern historical researches we come to know that long before broahminism developed into Hindu Dharam Jainism was Prevelent in this country.

अर्थात् आधुनिक इतिहास के संशोधन से हम यह जान पा रहे है कि ब्राह्मण धर्म हिंदुधर्म में परिवर्तित हुआ, उससे काफी पूर्व जैनधर्म इस देश में विद्यमान था।

नये धार्मिक आंदोलन चलाने की आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि, जैनधर्म में दुःखी दुनिया के हित के लिए सब कुछ मौजुद हैं। उसका ऐतिहासिक आधार भी सारभूत हैं। जैनधर्म ने ही पहले अहिंसा का प्रचार किया। दुसरे धर्मोने उसे वहाँ से ही लिया।

-प्रो.लुई रेनाउ (P.H.D.) पेरिस

मेरु पर्वत पर आई चूलिका

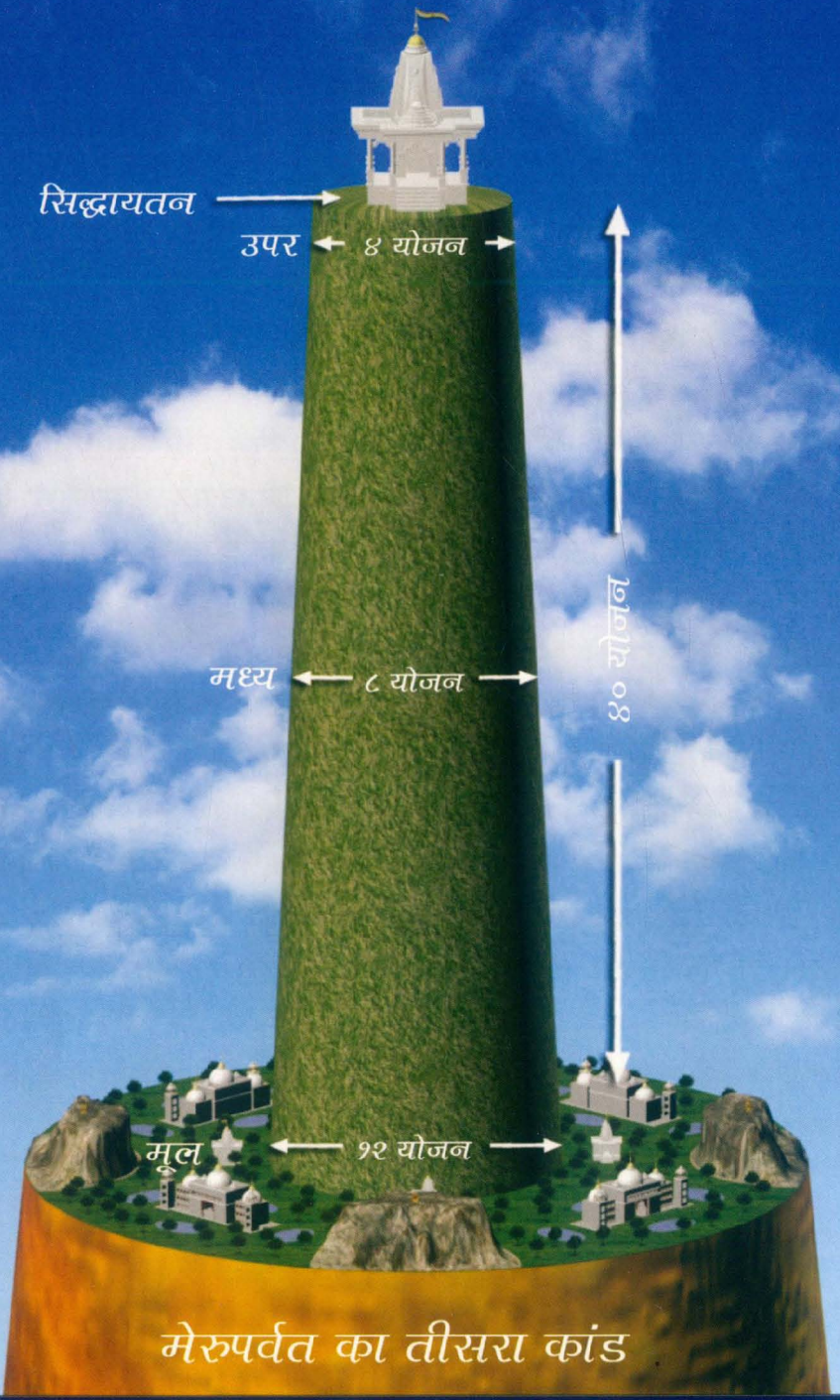

मेरुपर्वत का तीसरा कांड

मेरुपर्वत पर आई हुई चूलिका.....

- मेरुपर्वत के पाण्डकवन के सुनिश्चित मध्यभाग में उत्तम वैडुर्यरत्नों से बनी हुई मेरुपर्वत की चूलिका मानो श्री जिनेश्वर भगवान के कल्याणकारी जन्म समय में प्रफूल्लित बनी पाण्डकवन रूपी शरावे (कसोरा) के अन्दर जुवारे का रोपण किया हो इस तरह शोभायमान लगती है।
- इस चूलिका की चौड़ाई ४० योजन की है तथा मूल में १२ योजन, मध्य में ८ योजन तथा ऊपर के भाग में ४ योजन का विस्तार है, इसका आकार गाय की पृच्छ(ऊँची किए हो) के समान है।
- इसका घेराव मूल में ३७ योजन से कुछ अधिक हैं, मध्य विभाग में २५ योजन से कुछ अधिक हैं और ऊपर १२ योजन से कुछ अधिक हैं।
- इस चूलिका में प्रत्येक १ योजन ऊपर चढते मूल के विस्तार का पांचवा भाग घटता हैं। उदाहरण तौर पर मूल से २० योजन ऊपर चढ़ने में वहाँ बीस का पांचवा भाग जो चार है, उतने योजन कम होते हैं, अतः मूल के १२ योजन विस्तार में ४ योजन आता है, तो वहाँ ८ योजन का विस्तार रहता है। इस तरह सर्वत्र गिनती कर लेनी चाहिए। अथवा यदि ऊपर से नीचे उतरना हो तो, उस स्थल का विस्तार जानने के लिए, उतना नीचे उतरने के बाद उसके पांचवे भाग से जो संख्या आए, उसमें चार (४) मिला देना चाहिए। जैसे कि - ऊँचे स्थान से २० योजन नीचे उतरने के बाद वहाँ का विस्तार जानना हो तो बीस को पांच (५) से भाग देने पर चार (४) आता है, उसमें चार (४) मिलाने पर आठ (८) आता हैं। अब यह आठ (८) योजन उस स्थान का विस्तार हैं या उसकी चौड़ाई, इसी तरह उस स्थान की भी गिनती कर देनी चाहिए।
- यह चूलिका पद्मवरवेदिका और वनखंड से घिरी हुई है, इसकी मनोहर भूमि पर रहकर देवता सदैव सुख में निमग्न होकर उत्कृष्ट प्रीति-आनंद प्राप्त करते हैं।
- इस चूलिका के मध्यभाग में एक "सिद्धायतन" हैं - जिसकी लंबाई १ कोस, चौड़ाई $^{१}/_{२}$ कोस और ऊँचाई १ कोस से कुछ कम है। इस सिद्धायतन में शाश्वत ऋषभादि तीर्थंकर भगवंतो की १०८ प्रतिमाएँ आई हुई हैं - जिसका वर्णन वैताढ्यपर्वत के सिद्धायतन के अनुसार ही जाने....।
- यहाँ अनेकानेक गान्धर्व देवगण जिनेश्वर भगवंत के कर्णप्रिय गुणगान करते हैं, और उसे सुरेन्द्रादि श्रवण करते हैं। तथा यहाँ देवांगनाएँ श्री जिनेश्वर भगवान के आगे नृत्य करती हैं, उस मेरुपर्वत के शिखर पर रहे देवसमुदाय को वांस पर नृत्य करती कोई नटनियां हो, इस तरह भ्रम उत्पन्न कराती हैं।[१]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१८, श्लोक-२५०, से २६८

यदि कांसे का बर्तन ही मैला हो चुका हो तो उसे खटास से बहुत मसल-मसल कर जल से धोओ, तो वह शुद्ध-स्वच्छ हो जाता हैं। ऐसे ही यदि मन भी बहुत गंदा हो चुका हो तो उसे पश्चाताप रूप खटास से खूब मसल - मसल कर तप रूप जल से धोओ तो वह मन भी शुद्ध और स्वच्छ हो जाता है। इसलिए एक बात का खूब ध्यान रखना कि मिथ्यादर्शन जैसा दुनिया में कोई पाप नहीं है। क्योंकि इसके कारण जीव मिथ्या ही समझता है। जैसे पीलिया का रोगी सफेद वस्तु को भी पीली ही देखता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव सुदेव को कुदेव, सुगुरु को कुगुरु और सुधर्म को कुधर्म के रूप में देखता और समझता है।

जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत....
नीलवंत पर्वत
केसरी द्रह
उपदर्शन
रम्यक्
अपरविदेह
कीर्तिकूट
नारीकांता
सीताकूट
पूर्वविदेह
नीलवंत
सिद्धायतन
लवण समुद्र

जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत.....

महाविदेह क्षेत्र का संपूर्ण वर्णन देखने के बाद अब उत्तर दिशा में आगे बढ़ने पर "नीलवंत" नाम का पर्वत आता हैं, यह वैडूर्य मणिमय है, और इसका १ पल्योपम के आयुष्यवाले नीलवंत नाम का देव स्वामी है इस कारण से पर्वत का नाम नीलवंत हैं। अथवा तो यह नाम शाश्वत ही जानना।

इस नीलवंतदेव की राजधानी दूसरे जंबूद्वीप में मेरुपर्वत से उत्तर दिशा में हैं। अब जिसका आगे वर्णन करने में आयेगा, उन देवों की राजधानी तथा आयुष्यादि के विषय में भी इस तरह ही समझ लेना।

यह नीलवंत पर्वत उत्तर-दक्षिण में चौड़ा हैं तथा पूर्व-पश्चिम में लम्बा हैं। तथा जिस तरह ब्रह्मचर्यव्रत (आचारांग सूत्र) श्रुतस्कंध में ९ गुप्ति का निरुपण करनेवाला ९ अध्ययन से शोभायमान है वैसे ही यह पर्वत भी देदिप्यमान ९-९ शिखरों से चारों तरफ से शोभायमान हैं।

इन ९ शिखर में प्रथम जिसका नाम "सिद्धायतन" हैं वह समुद्र के नजदीक आया है। दूसरे पर्वत के नीलवंत नाम के स्वामी का "नीलवंत" नाम का शिखर हैं। तीसरा पूर्वविदेह के स्वामी का ऋद्धि से समृद्धशाली "पूर्वविदेह" नाम का शिखर हैं। चौथा सीता नदी के अधिष्ठात्री देवी का आश्रयवाला "सीताकूट" नाम से है। पांचवा नारीकांता देवी से अधिष्ठित बना "नारीकांता" नाम का शिखर हैं। छठ्ठा केसरी सरोवर निवासी कीर्तिदेवी का आश्रयरूप "कीर्तिकूट" नाम का है। सातवां अपरविदेह के स्वामी का निरंतर आश्रयरूप "अपरविदेह" नाम का शिखर हैं। आठवां रम्यक क्षेत्र के रम्यक् नाम के स्वामी से अधिष्ठित "रम्यक्" नाम का शिखर हैं। अन्तिम नौवां उपदर्शन देव के स्थान रूप "उपदर्शन" नाम का शिखर हैं। इन ९ शिखरों में प्रथम शिखर पर श्री जिनेश्वर भगवान का मंदिर है, शेष आठ शिखरों पर उस उस शिखर के नामवाले देवताओं के प्रासाद(महल)हैं।

इस पर्वत पर १ महान तथा सुन्दर "केसरी" नाम का सरोवर है, जो निषध पर्वत के तिगिंछि सरोवर के समान ही है। अतीव सुन्दर आकृति के केसरवाले संख्याबद्ध शतपत्र-कमल इसके अन्दर होने के कारण यह केसरी सरोवर नाम से पहचाना जाता है।

इस सरोवर में से कन्या सदृश सीता और नारिकांता नाम की दो नदियाँ निकलती हैं, जिसमें सीता दक्षिण की और तथा नारिकांता उत्तर के दिशा में बहती हैं। सीता नदी यह सरोवर के दक्षिण दिशा के तोरण से निकलकर दक्षिण की और बहती हुई, पूर्व विदेह के अन्दर से होती हुई पूर्व समुद्र में मिलती है। तथा दूसरी नारिकांता नदी उसी सरोवर के उत्तर दिशा के तोरण में से निकलकर उत्तर तरफ बहती हुई, अपने ही नारिकांता प्रपातकुंड में गिरकर, वहाँ से बाहर नीकलकर दक्षिणार्ध रम्यक् क्षेत्र को दो विभाग में बांटती (विभाजन करती) माल्यवंत पर्वत के एक योजन दूर उत्तरार्ध क्षेत्र को भी दो विभाग करती अपने ५६,००० नदियों को मिलाती हुई पश्चिम समुद्र में जा मिलती है।

इस केसरी द्रह(सरोवर) में मुख्य कमल ४ योजन का है - इसके आस-पास दूसरे ६ वलय हैं। इन वलयों के कमलों का माप एक के बाद एक का आधा-आधा होता है। मुख्य कमल में पल्योपम के आयुष्यवाली कीर्तिदेवी का स्थान है। इस कीर्तिदेवी का भवनादि सर्व स्वरूप श्रीदेवी के समान जानना चाहिए।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४, (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१९, श्लोक-१ से २५

58

तत्त्वज्ञान की गंभीरता

सभी द्रव्यों के मौलिक स्वरूप की चिंतना यथार्थ दृष्टि से करने के लिए वस्तु के अनंत धर्मात्मक स्वरूप को प्रमाण वाक्य से समझने के साथ नयवाक्य से प्रत्येक धर्म के गौण मुख्य भाव की भूमिका अपनाने की गंभीरता विचारों में जो विकसित न हो, तो किसी भी वस्तु का मौलिक यथार्थ ज्ञान होना कठिन है।

आज महावीरस्वामीजी को जो सम्मान दिया जा रहा है वह एक ही कारण से... के अहिंसामय धर्म का उन्होंने जो प्रचार और प्रसार किया, यही कारण है, इसके बारे मे मुझे संदेह नहीं हैं। क्योंकि अहिंसा तत्त्व के सबसे बड़े प्रचारक संपूर्ण विश्व में एक मात्र महावीरस्वामी ही थे।

- स्व. मोहनलाल करमचंद गांधी
(महात्मा गांधी)

जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत....
लवण समुद्र
रम्यक् क्षेत्र
नारिकान्तानदी
मणिकांचन
हैरण्यवंत
रुप्य
बुद्धिकूट
माल्यवंत
वृत्त वैताढ्य
पर्वत
नरकांता
रम्यक्
रुक्मि
सिद्धायतन
नरकान्ता नदी
रुक्मि पर्वत

जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत.....

पूर्व में बताए हुए नीलवंत पर्वत के उत्तर में और आगे आने वाले रुक्मि पर्वत के दक्षिण में रम्यक् नामक देव का "रम्यक्" नाम का क्षेत्र है,[१] और वह सुवर्णमय तथा माणेकमय प्रदेशों और विविधजाती के कल्पवृक्षों के कारण से यह क्षेत्र अत्यंत रम्य अर्थात् रमणीय होने के कारण इस क्षेत्र का नाम रम्यक् क्षेत्र पड़ा हैं।

इस क्षेत्र को दो विभाग में बांटनेवाला "माल्यवंत" नाम का वृत्त (गोलाकार) वैताढ्यपर्वत हैं, इसमें माल्यवंत के आकार के और इसके समान रक्त प्रभावाले अतीव सुशोभित कमलादि होने से यह "माल्यवंत" नाम से प्रसिद्ध है तथा इस पर्वत का स्वामी "प्रभास" नाम का देव हैं, जिसका एक पल्योपम का आयुष्य हैं। इसका संपूर्ण स्वरूप हरिवर्ष क्षेत्र के गंधापाति पर्वत (वृत्त वैताढय) के समान ही जानना।

रम्यक क्षेत्र से उत्तर दिशा में और हैरण्यवंत क्षेत्र के दक्षिण में "रुक्मि" नाम का वर्षधर पर्वत आया हुआ है।[२] यह पर्वत पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है। महाहिमवंत पर्वत के बंधु समान संपूर्ण रूप में एक समान आकृतिवाला है। रुक्म अर्थात् चांदी। यह पर्वत संपूर्ण रुप्यमय होने से, इसका नाम रुक्मि सार्थक पड़ा है, इसका अधिष्ठाता देव भी रुक्मि नाम का हैं... अथवा यह नाम शाश्वत ही हैं।

इस रुक्मि पर्वत के ८ दिक्कुमारियों के क्रीडा पर्वत समान ८ सुंदर ऊँचे शिखर है। जो इस प्रकार जाने..... प्रथम पूर्व समुद्र के नजदीक में "सिद्धायतन" नाम का शिखर हैं। दूसरा रुक्मि देव के आश्रयरूप से "रुक्मि" नाम का शिखर हैं। तीसरा रम्यक्क्षेत्र के स्वामी आश्रयरूप "रम्यक्" नाम का शिखर हैं। चौथा नरकांता देवी के स्थानरूप "नरकांता" नाम का हैं। पांचवा महापुंडरिक सरोवर के स्वामी की बुद्धिदेवी का आश्रयरूप "बुद्धिकूट" नाम का शिखर है। छट्ठा रुप्यकूला नदी की देवी से प्रतिष्ठित "रुप्य" नाम का शिखर है। सातवाँ हैरण्यवंत देव का निवासस्थान रूप "हैरण्यवंत" नाम का शिखर हैं तथा आठवाँ मणिकांचन देव की स्वामीत्व का "मणिकांचन" नाम का शिखर हैं। इसमें प्रथम शिखर पर सिद्धायतन और शेष ७ शिखरों पर उनके स्वामी का प्रासाद है इस पर्वत का तथा इसके शिखरों का माप, स्वरूप तथा इसके उपर आए चैत्य, देव, प्रासादादि सर्व स्वरूप हिमवंत पर्वत अनुसार है।

इस पर्वत के ऊपर महापद्म सरोवर के समान "महापुंडरिक" नाम का सरोवर है। इस सरोवर का मुख्य कमल दो योजन का है, तथा इसके आस-पास छः वलय है, जो प्रत्येक कमल का एक के बाद एक वलय के आधे-आधे अनुसार हैं। इस कमल की अधिष्ठात्री "बुद्धि" नाम की देवी है, इसका भवन-ऋद्धि-समृद्धि आदि सर्व लक्ष्मी देवी के अनुसार समझें।

इस सरोवर में से मानो उपर के होठ के मध्यभाग में दोनों भाग में मूछ निकलती हो, ठीक उसी तरह दक्षिण दिशा में से नरकांता नदी और उत्तर दिशा में से रूप्यकुला नामक नदियाँ, अपनी अपनी दिशा में आगे जाकर स्व-स्व नामवाले प्रपातकुंड में गिरकर, रम्यक् क्षेत्र और हिरण्यवंत क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती हुई ५६,००० एवं २८,००० अनुक्रम से नदियों को मार्ग में साथ में लेती हुई पूर्व एवं पश्चिम समुद्र में जा मिलती है।[३]

(१) (A) समवायांग सूत्र-७ (B) स्थानांग सूत्र-२, उद्देशा-३ (२) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४ (३) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१९, श्लोक-२६ से ५४

Lord Mahavira was a saviour of the whole huma-nity. **"L. Lajpat Rai"** Lord Mahavira saved thousands of living creatures through his message of Ahimsa. Jainism needs to be praised for the indelible impression it made upon Brahmanism.

- Lokmania BalgangaDhar Tilak

"Lord Mahavira, the great saviour of the world, had handsome and sym-metrical body and magnetic person-ality with heroic cou-rage and perseverance. He had cast off the bonds of ignorance. Illumination had come upon him and he had become 'Master' as theosophists would say."

- Dr. U. S. Tank

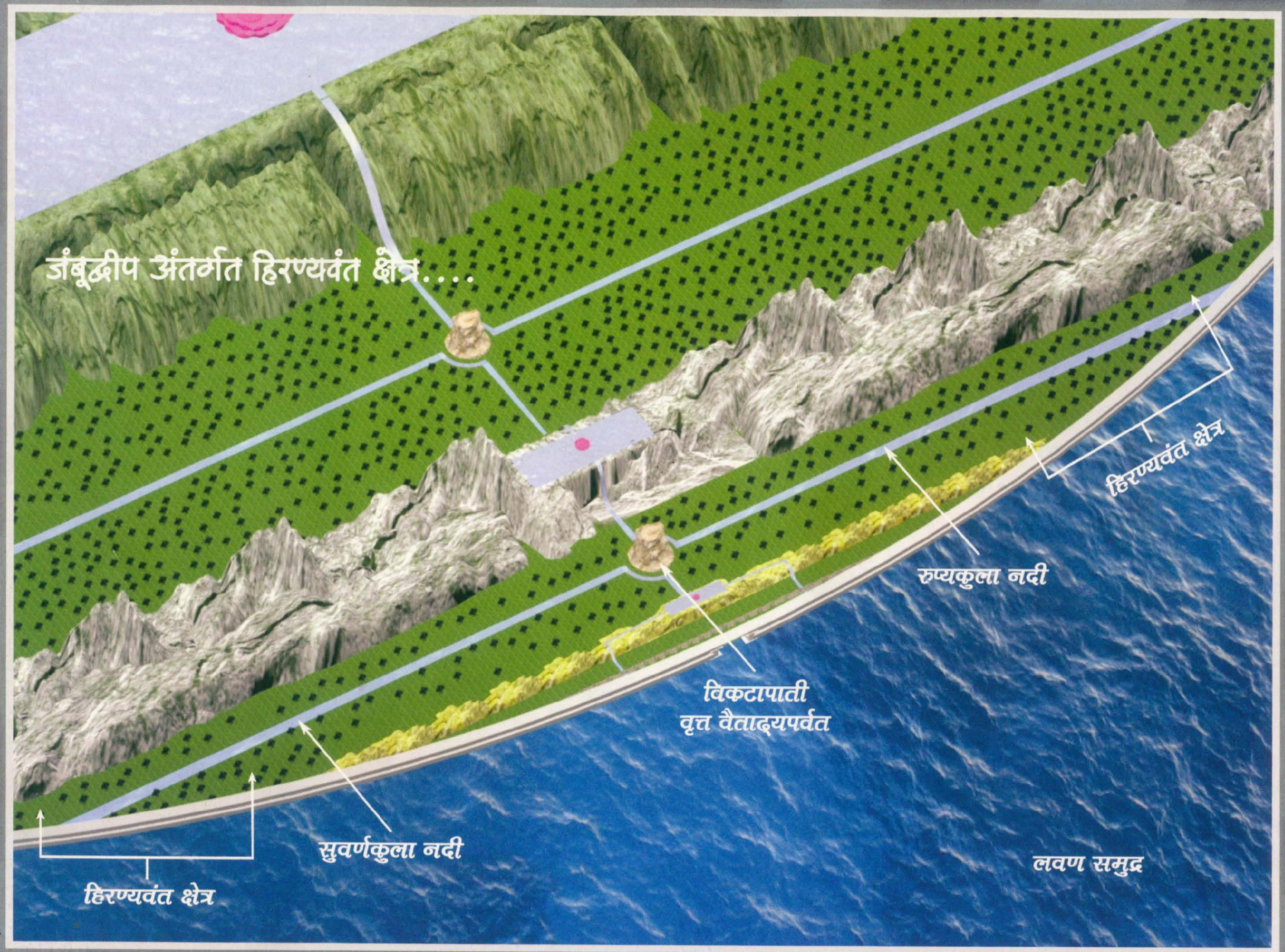
जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र....
हिरण्यवंत क्षेत्र
रुप्यकुला नदी
विकटापाती
वृत्त वैताढ्यपर्वत
सुवर्णकुला नदी
हिरण्यवंत क्षेत्र
लवण समुद्र

जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र.....

आईए मित्रो ! अब हम हिरण्यवंत क्षेत्र का वर्णन देखते हैं। यह क्षेत्र रुक्मि पर्वत के उत्तर में और शिखरी पर्वत के दक्षिण में आया हुआ है। मानो इन दोनों पर्वतों के बीच में वह जाने छीपकर बेठा न हो इस तरह दिखाई दे रहा है।

हिरण्य अर्थात् चान्दी तथा सुवर्ण दोनों होता हैं। इससे रुक्मि और शिखरी पर्वत जो दोनों अनुक्रम से रजतमय और सुवर्णमय है। इन दोनों को ''हिरण्यवंत'' कहा जाता है।[१]

अथवा तो वहाँ पर हिरण्य अर्थात् सुवर्ण की शिलापट्ट (तख्त) होने से वहाँ के युगलिकों को आसनादि के लिए वह क्षेत्र दिया हो, इस कारण से इसका नाम ''हिरण्यवंत क्षेत्र'' पड़ा हो सकता हैं।

अथवा तो इनको नित्य उपयोगी बहुत अधिक वस्तुओं का हिरण्यवंत अर्थात् सुवर्णवाली होने से गीतार्थ मुनिवरोंने इस प्रकार यह ''हिरण्यवंत क्षेत्र'' नाम रखा हो सकता हैं।

अथवा तो यहाँ १ पल्योपम के आयुष्यवाला हिरण्यवंत देव प्रभुत्व भोगता है, इसी कारण से भी इसका नाम ''हिरण्यवंत'' पड़ा हो..., अथवा यह नाम शाश्वत ही जानें।

इस क्षेत्र का प्रभाव, उसका प्रमाण, तथा वहाँ के मनुष्य और तिर्यंचों की स्थिति वगेरेह सर्व हकिकतों को हिमवंत क्षेत्र के अनुसार समान ही जानना।

इस हिरण्यवंत क्षेत्र के मध्यभाग में १ रत्नमय ''विकटापाती'' नाम का वृत्त वैताढ्य पर्वत आया हुआ हैं, इसका आकार प्याले के समान है तथा इससे इस क्षेत्र के ४ विभाग पड़ जाते हैं।

विकटापाती अर्थात् कभी ऊड़ न जाए इस तरह पक्के रंगवाले पद्म, उत्पल, कमल, शतपत्रादि वहाँ हमेशा प्राप्त होते हैं इसलिए यह ''विकटापाती'' कहलाता है।

यहाँ एक पल्योपम की आयुष्यवाला ''अरुण'' नाम का देव स्वामी हैं। इसकी राजधानी का नगरादि दूसरे जंबूद्वीप में मेरुपर्वत की उत्तर दिशा में है। इसका शेष स्वरूप.... ''गन्धापाती'' नाम के वृत्त वैताढ्यपर्वत अनुसार समान ही समझे।

''क्षेत्र-विचार वृत्ति'' के अभिप्रायः से इसी ही तरह सर्व व्यवस्था है अर्थात् हिमवंतक्षेत्र में ''शब्दापाती'' नाम का वृत्त वैताढ्यपर्वत आया हुआ है। हिरण्यवंत क्षेत्र में ''विकटापाती'' वृत्त वैताढ्यपर्वत है। हरिवर्ष क्षेत्र में ''गन्धापाती'' तथा रम्यक् क्षेत्र में ''माल्यवंत'' नाम का वृत्त वैताढ्यपर्वत आया हुआ है.. ऐसा कहा गया है।[२]

(१) (A) ठाणांग सूत्र-६ उद्देशा-३, (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४ (C) स्थानांग सूत्र-२, उद्देशा-३ (सूत्र-९२) (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१९, श्लोक-५५ से ६५

भारत में ईसा की पांचवीं सदी में आर्यभट्ट नामक एक खगोलशास्त्री हुए। उन्होंने पहली बार अपनी यह मान्यता प्रस्तुत की कि पृथ्वी गेंद जैसी गोल है, लेकिन स्थिर है। आर्यभट्ट का जन्म सन् ४७६ में बिहार के कुसुमपुर नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने गणित के "पाई" की मान ३.१४१६ बताई थी। आज के गणितज्ञ भी "पाई" की कींमत लगभग इतनी ही मानते हैं। आर्यभट्ट के समकालीन वराहमिहिर भी प्रसिद्ध खगोलशास्त्री व ज्योतिषी थे। वे उज्जैन में रहते थे। उन्होंने बृहत्संहिता नामक एक ज्योतिषग्रंथ की रचना की थी। भारत के प्राचीन धर्मों के अनुसार वराहमिहिर पृथ्वी को स्थिर व समतल मानते थे। इस मान्यता के अनुसार ही उन्होंने अपने ग्रंथ में सूर्य, चन्द्र, ग्रहों, नक्षत्रों आदि का अचूक गणित उपलब्ध कराया था।

जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत
सिद्धायतन
शिखरी
हिरण्यवंत
सुवर्णकूला
सुरादेवी
रक्तवर्तन
पुंडरिक द्रह
लक्ष्मीकूट
रक्तवत्यावर्तन
इलादेवी
ऐरावत
तिगिंछिकूट
शिखरी पर्वत
लवण समुद्र

जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत.....

61

अब शिखरी पर्वत का वर्णन करते हैं - हिरण्यवंत क्षेत्र के उत्तर में और ऐरावत क्षेत्र के दक्षिण दिशा में छट्ठा शिखरी नाम का वर्षधर पर्वत आया हैं। यहाँ शिखरी शब्द का अर्थ वृक्ष लेना चाहिए और इस आकार के यहाँ पुष्कल (विशाल पैमाने पर) रत्नमय शिखर है, इससे यह ''शिखरी पर्वत'' कहलाता हैं।[१]

सुंदर सम्यक्त्ववाले श्राद्ध (श्रावक) धर्म जैसे ११ प्रतिमा से शोभायमान होता है वैसे ही यह पर्वत चारों तरफ आए ११ शिखरों से शोभायमान हो रहा है। इन ११ शिखरों में से प्रथम शिखर पूर्व महासागर के नजदीक में आया हैं उसका नाम ''सिद्धायतन'' हैं। दूसरा शिखरी देव का ''शिखरी'' नाम का शिखर हैं। तीसरा हिरण्यवंत क्षेत्र का स्वामी ''हिरण्यवंत'' नाम का शिखर हैं। चौथा सुवर्णकुला नदी की देवी का ''सुवर्णकुला'' नाम का शिखर है। पांचवाँ ''सुरादेवी'' नाम की दिक्कुमारी है और वो उसी के नाम का शिखर है। छट्ठा ''रक्तवर्तन'' सातवाँ ''लक्ष्मीकूट'' और आठवाँ ''रक्तवत्यावर्तन'' है। अब जो नौवां शिखर है वह ''इलादेवी'' नामक दिक्कुमारी का उसी के नाम का है तथा १० (दसवां) ऐरावत नाम का देव स्वामी होने से ''ऐरावत'' नाम का शिखर हैं और अन्तिम ग्यारहवाँ तिगिंछि द्रह (सरोवर) के स्वामी का ''तिगिंछि कूट'' नाम का शिखर हैं।

इस ११ शिखरों में प्रथम शिखर पर श्री जिनेश्वर परमात्मा के भव्य जिनालय हैं, और शेष १० शिखरों पर उस उस शिखर के नामवाले देवों के प्रासाद हैं।

इस शिखरी पर्वत पर पद्मसरोवर के समान ही एक ''पुंडरिक'' नामक सरोवर है। जिसमें १ मूल कमल १ योजन प्रमाण है और दूसरे चारों तरफ जो छः वलय है उसमें जितने कमल हैं, वह उत्तरोत्तर एक के बाद एक, वलय में आधे आधे हैं, तथा यहाँ श्रीदेवी के समान ही ''लक्ष्मीदेवी'' का निवास स्थान है।

इस पर्वत की अन्य सभी बातें, व्यवहार, प्रमाण, मनुष्य, तिर्यंचादि लघुहिमवंत क्षेत्र के अनुसार ही जाने।

अब जो उपर आपको पुंडरिक द्रह(सरोवर) बताया था, उसमें से तीन रास्तों से अलग-अलग तीन नदियाँ निकलती हैं, जो इस प्रकार से जाने-सर्वप्रथम ''सुवर्णकूला'' नाम की नदी वह दक्षिण दिशा से निकलकर हिरण्यवंत क्षेत्र के उत्तरार्ध को दो विभागों में बांटती, विकटापाती वृत्त वैताढ्य से आधे योजन दूर से पूर्व दिशा में मुड़कर अपने साथ २८,००० अन्य नदियों को लेती पूर्व समुद्र में जा मिलती हैं।

अब इसी सरोवर से पूर्वदिशा में से ''रक्ता'' नदी निकलती हैं वह आगे उत्तर दिशा में जाने के बाद अन्य ७,००० नदियों को लेकर वैताढ्यपर्वत को भेदन कर अन्य ७,००० नदियों को मिलाकर कुल १४,००० नदियों के परिवार सहित जगती को भेदकर पूर्व समुद्र में जा मिलती हैं।

अब तीसरी ''रक्तवती'' नदी पश्चिम तोरण से निकलकर आगे उत्तर दिशा में जाने के बाद अन्य ७,००० नदियों को लेकर वैताढ्यपर्वत को भेदकर अन्य ७,००० नदियों को मिलाकर कुल १४,००० नदियों को लेकर परिवार सहित जगती को भेदन कर पश्चिम समुद्र में जा मिलती है।[२]

(१) स्थानांग सूत्र-३, उद्देशा-३/६, (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१९, श्लोक-६६ से ९८

अमेरीका के दक्षिण ध्रुव के साहसिक अन्वेषकों की रिपोर्ट में बताया गया है कि - उत्तर में जिस अक्षांश पर जितने समय तक उषाकाल रहता है, दक्षिण में भी उस अक्षांश पर उतने ही समय तक उषाकाल रहना चाहिए, किन्तु वैसा होता नहीं हैं, क्योंकि उत्तर में ४० अक्षांश पर ६० मिनिट तक उषाकाल रहता है, तो दक्षिण मे उसी ४० अक्षांश पर स्थित मेलबोर्न, ओस्ट्रेलिया आदि में केवल ५ मिनिट ही उषाकाल रहता है ऐसा क्यों ? यदि पृथ्वी गोल हो तो ऐसा नहीं होना चाहिए।

जंबूद्वीप का ऐरावत क्षेत्र
महापुंडरिक द्रह
शिखरी पर्वत
खंड ३
खंड २
पुंडरिक द्रह
उत्तरार्ध ऐरावत
दक्षिणार्ध ऐरावत
खंड ४
खंड १
खंड ५
खंड ६
लवण समुद्र

शिखरी पर्वत के उत्तर में और उत्तर लवणसमुद्र की दक्षिण दिशा में "ऐरावत" नाम का मनोहर क्षेत्र आया हैं। एक पल्योपम की आयुष्यवाला ऐरावत देव नामक स्वामी से अधिष्ठित होने से इस क्षेत्र का नाम ऐरावत पड़ा है।

सन्मुख में समुद्र रहने से मानो भरत क्षेत्र ही प्रतिबिम्बित बना हो, ऐसा यह क्षेत्र दिखता है, क्योंकि यह प्रमाण में इसके समान ही है और हमेशा इसका ही अनुवर्तन करता है।

जब भरत क्षेत्र में सूर्य का उदय होता है, तब यहाँ भी सूर्योदय होता हैं, जब वहाँ (भरत क्षेत्र में) चंद्रोदय होता है तब यहाँ (ऐरावत क्षेत्र में) भी चंद्रोदय होता है। भरत क्षेत्र में जिस तरह अलग-अलग छः आरे (अलग-अलग स्थितिवाले) होते है वैसे ही छः आरे की व्यवस्था यहाँ पर भी है, क्योंकि एक उत्तम मित्र वह अपने मित्र के अनुसार ही चलता है। जब भरत क्षेत्र में जिनेश्वर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेवादि होते हैं, तब इस क्षेत्र में भी उतनी ही संख्या में तीर्थंकरादि होते हैं। वहाँ जब १० आश्चर्य होते हैं तब यहाँ भी १० आश्चर्य होते हैं, इस तरह यह ऐरावत क्षेत्र मानों अपने मित्र भरत क्षेत्र के समान चेष्टा करके आनंद प्रमोद में रहता हैं।

इस ऐरावत क्षेत्र के मध्यविभाग में दीर्घ वैताढ्यपर्वत आया हैं, इसके कारण इसके १. दक्षिणैरावत और २. उत्तरैरावत ऐसे दो विभाग पडे है। यह दक्षिण-उत्तर की व्यवस्था क्षेत्र की दिशा की अपेक्षा से कहा है। क्योंकि सूर्य की दिशा की अपेक्षा से तो समुद्र के नजदीक में दक्षिणार्ध ऐरावत क्षेत्र आता है और शिखरी पर्वत के नजदीक में उत्तरार्ध ऐरावत क्षेत्र आता है परंतु यहाँ व्यवहार सब क्षेत्र की दिशा की अपेक्षा से है, सूर्य की दिशा की अपेक्षा से नहीं। ऐरावत क्षेत्र का उत्तरार्ध वह भरत क्षेत्र के दक्षिणार्ध समान है।

इस ऐरावत क्षेत्र में वैताढ्यपर्वत की लम्बाई, जो उत्तर दिशा में स्वल्प है, वह दक्षिण में क्रमशः बढती जाती है, और इसी तरह होने से दक्षिण तरफ की विद्याधरों की श्रेणी में ६० नगर हैं, जबकी उत्तर दिशा की श्रेणी में इनके ५० नगर होते हैं और शेष सभी पदार्थ अर्थात् आभियोगीको की श्रेणी, वेदिका, वनादि भरत क्षेत्र के वैताढ्यपर्वत में बताए गए हैं उसके अनुसार समान ही जानना।

इस वैताढ्यपर्वत पर भी ९ कूट शिखर है। दूसरे ओर आठवें कूट सिवाय उनके नाम पूर्व के समान है। दूसरे कूट का नाम दक्षिणैरावतार्ध है और आठवें कूट का नाम उत्तरैरावतार्ध हैं।

रक्ता और रक्तवती नदियों से, तथा बीच में रहे वैताढ्यपर्वत के कारण इस ऐरावत क्षेत्र के ६ विभाग होते है। इस छः खण्डों में से एक उत्तरार्ध मध्यखण्ड है, जो उत्तर लवणसमुद्र के मध्य में है और वैताढ्य के उत्तर में ११४ योजन ११ कला पार करने के बाद समुद्र और वैताढ्य के बीच में आया है। उसमें ९ योजन चौड़ी और १२ योजन लम्बी उत्तम पुरुषों के निवासस्थानरूप अयोध्या नाम की नगरी हैं।

शेष पांच खण्ड वे अनार्य होते हैं, वहाँ जैन धर्म जैसा कुछ भी नही हैं। पर्वत के उत्तरार्ध में रहे हुए मध्यखंड में भी केवल २५ १/२ ही आर्य देश हैं, और इसमें ही तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवादि उत्तम महापुरुष जन्म लेते हैं, और वहाँ ही धर्म की संपूर्ण व्यवस्था होती है अन्य सभी देश अनार्य कहे जाते हैं - जहां कोई धर्म का नामोनिशान भी नही है।[१]

(१) (A) समवायांग सूत्र-७ (B) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-४ (C) स्थानांग सूत्र, स्थान-२ (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१९, श्लोक-९९ से १२२

वराहमिहिर के पश्चात सन् ५९६ में राजस्थान के श्रीमाल- नगर में ब्रह्मगुप्त का जन्म हुआ था। उन्होंने खगोलशास्त्र से सम्बन्धित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त व खंडखाद्यक नामक ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों का अनुवाद अरबी भाषा में भी हुआ था। वराहमिहिर की तरह ब्रह्मगुप्त भी पृथ्वी को स्थिर व सृष्टि का केन्द्र मानते थे। सन् १११४ में भारत में भास्कराचार्य नामक एक खगोलशास्त्री व गणितज्ञ का जन्म हुआ था। उन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि व करण कुतूहल नामक ग्रंथों की रचना की थी। भास्कराचार्य बीजगणित के भी प्रखर विद्वान थे। ब्रह्मगुप्त आर्यभट्ट के अतिरिक्त भारत के अन्य किसी भी खगोलशास्त्री ने यह मीमांसा प्रस्तुत नहीं की कि पृथ्वी गोल है। इसलिए अन्तरिक्ष में भारत से जो कृत्रिम उपग्रह सर्वप्रथम छोड़ा गया था, उसे "आर्यभट्ट" नाम दिया गया था।

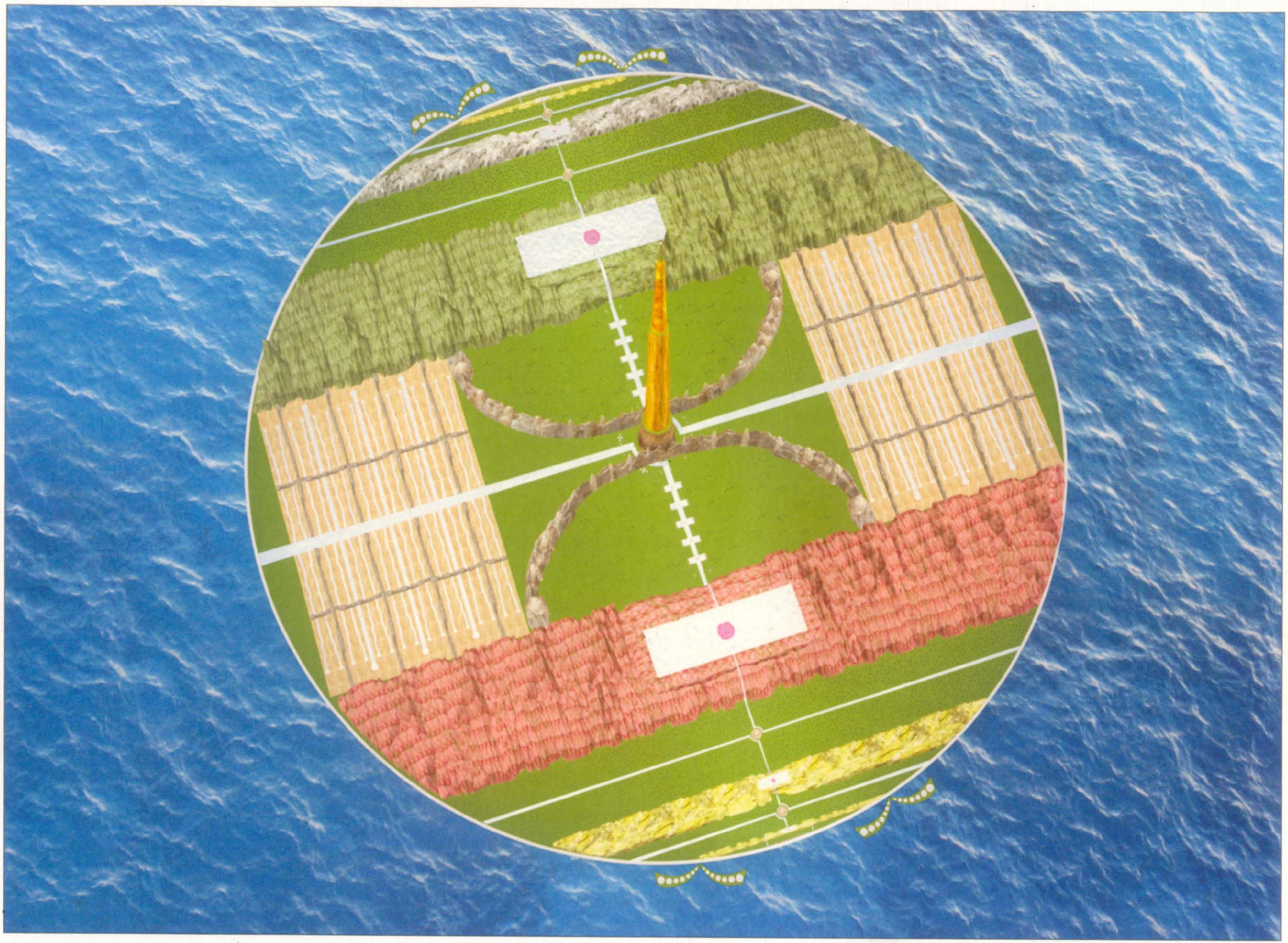

जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थों का यंत्र.....

क्रम	वृत्त पदार्थों के नाम	विष्कंभ-योजन में	परिधि -योजन में	क्रम	वृत्त पदार्थों के नाम	विष्कंभ- योजन में	परिधि -योजन में
१	पद्मद्रह का मुख्य कमल	१	३ $^{१}/_{६}$	२१	विजयों के १२ अंतर नदियों के कुंड	१२०	३७९ $^{३५९}/_{७५८}$
२	पुंडरिकद्रह का कमल	१	३ $^{१}/_{६}$	२२	हरिकांता-हरिसलिला कुंड	२४०	७५८ $^{१४३६}/_{१५१६}$
३	१० कुरुद्रह के कमल	१	३ $^{१}/_{६}$	२३	नरकांता-नारीकांता कुंड	२४०	७५८ $^{१४३६}/_{१५१६}$
४	महापद्मद्रह के कमल	२	६ $^{१}/_{३}$	२४	सीता-सीतोदा कुंड	४८०	१५१७ $^{२७११}/_{३०३४}$
५	महापुंडरिकद्रह के कमल	२	६ $^{१}/_{३}$	२५	मेरुपर्वत का मूल	१०,०९० $^{१०}/_{११}$	३१,९१० $^{२}/_{११}$
६	तिगिंछिद्रह के कमल	४	१२ $^{२}/_{३}$	२६	नंदनवन में बाह्य मेरु	९,९५४ $^{६}/_{११}$	३१,४७९ साधिक
७	केसरीद्रह के कमल	४	१२ $^{२}/_{३}$	२७	नंदनवन में अभ्यंतर मेरु	८,९५४ $^{६}/_{११}$	२८,३१६ $^{८}/_{११}$ साधिक
८	१७ गंगा द्वीप	८	२५ $^{३}/_{१०}$	२८	सौमनसवन में बाह्य मेरु	४,२७२ $^{८}/_{११}$	१३,५११ $^{६}/_{११}$ साधिक
९	१७ सिंधु द्वीप	८	२५ $^{३}/_{१०}$	२९	सौमनसवन में अभ्यंतर मेरु	३,२७२ $^{८}/_{११}$	१०,३४९ $^{३}/_{११}$ साधिक
१०	१७ रक्ता द्वीप	८	२५ $^{३}/_{१०}$	३०	पांडुकवन में मेरु	१०००	३,१६२ $^{१७५६}/_{६३२४}$
११	१७ रक्तवती द्वीप	८	२५ $^{३}/_{१०}$	३१	मेरुपर्वत की चूलिका का मूल	१२	३७ $^{७१}/_{७४}$
१२	रोहिता-रोहितांशा द्वीप	१६	५० $^{३}/_{५}$	३२	१६ वर्षधरपर्वत के कूट का मूल	५००	१,५८१ $^{४३९}/_{३१६२}$
१३	सुवर्णकुला-रुप्यकुला द्वीप	१६	५० $^{३}/_{५}$	३३	मेरुपर्वत का कंद	१०,०००	३१,६२२ $^{४९११६}/_{६३२४४}$
१४	हरिकांता-हरिसलिला द्वीप	३२	१०१ $^{३९}/_{२०२}$	३४	४ वृत्त वैताढ्यपर्वत मूल	१,०००	३,१६२ $^{१७५६}/_{६३२४}$
१५	नरकांता-नारीकांता द्वीप	३२	१०१ $^{३९}/_{२०२}$	३५	४ यमकादि गिरि मूल	१,०००	३,१६२ $^{१७५६}/_{६३२४}$
१६	सीता-सीतोदा द्वीप	६४	१९९ $^{३५९}/_{३९८}$	३६	३ सहस्त्रांक कूट मूल	१,०००	३,१६२ $^{१७५६}/_{६३२४}$
१७	गंगा-सिंधु-रक्ता-रक्तवती कुंड	६०	१८९ $^{२७९}/_{३७८}$	३७	३०६ वैताढ्य कूट मूल	६ १/१	१९ यो. ३ $^{९}/_{१५८}$ गाउ
१८	महाविदेह के ६४ नदियों के कुंड	६०	१८९ $^{२५९}/_{३७८}$	३८	३४ ऋषभकूट मूल	१२	३७ $^{७१}/_{७४}$
१९	रोहिता-रोहितांशा कुंड	१२०	३७९ $^{३५९}/_{७५८}$	३९	१६ वृक्ष कूट मूल	१२	३७ $^{७१}/_{७४}$
२०	सुवर्णकुला-रुप्यकुला कुंड	१२०	३७९ $^{३५९}/_{७५८}$	४०	२०० कंचनगिरि मूल	१००	३१६ $^{१४४}/_{६३२}$

ना.क. = यहाँ पर इस जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थ के योजन और परिधि को स्पष्ट रूप से बताया गया है । इसके सिवाय (अलावा) भी वृत्त पदार्थ बहुत सारे हैं, परंतु वह सब लिखते ग्रंथ गौरव के भय से यहाँ पर उपरोक्त पदार्थ ही बताये गये हैं ।

अस्तु ।

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

THE REAL UNIVERSE ILLUSTRATED

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

ग्रंथ के आधार ग्रंथों की सूची
(द्वार १ से ५)

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
१.	दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति	१४१ श्लोक	प. पू. आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी म.
२.	आवश्यक निर्युक्ति	२,५५० श्लोक	प. पू. आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी म.
३.	संबोध प्रकरण	१,६१७ श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
४.	पदार्थ स्थापना संग्रह	११९ श्लोक	प. पू. आ. श्री चक्रेश्वरसूरिजी म.
५.	दर्शनशुद्धि प्रकरण	७० श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
६.	द्रव्यलोकप्रकाश		प. पू. उपा. श्री विनयविजयजी म.
७.	शास्त्रवार्ता समुच्चय	७०१ श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
८.	तत्त्वार्थभाष्य-संबंधकारिका		पू. आ. श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.
९.	चैत्यवंदन महाभाष्य	६३ श्लोक	प. पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.
१०.	श्रावकप्रज्ञप्ति	४०१ श्लोक	प. पू. वाचकवर्य श्री उमास्वातीजी म.
११.	घनगणितसंग्रहणीगाथा	७ श्लोक	प. पू. आ. श्री अज्ञात जैनश्रमण म.
१२.	गाथासहस्त्री	१,०१३ श्लोक	प. पू. उपा. श्री समयसुंदरजी म.
१३.	विशेषावश्यक भाष्य	३,६०३ श्लोक	प.पू. आ. जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण म.
१४.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र		प.पू. आ. श्री गणधर भगवंत म.
१५.	प्रवचन सारोद्धार	१,५९९ श्लोक	प. पू. आ. श्री नेमीचंद्रसूरिजी म.
१६.	धर्माचार्यबहुमानकुलकम्	३४ श्लोक	प. पू. आ. श्री रत्नसिंहसूरिजी म.
१७.	गुणमाला प्रकरण		प. पू. आ. श्री रामविजयजी म.
१८.	बृहत्कल्प भाष्य	६,४९० श्लोक	पू. आ. श्री संघदासगणि क्षमाश्रमण
१९.	पुष्पमाला प्रकरण	५०५ श्लोक	पू. आ. श्री मलधारी हेमचंद्रसूरिजी म.
२०.	गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिका	४० श्लोक	प. पू. आ. श्री रत्नशेखरसूरिजी म.
२१.	सम्यक्त्व सप्तति	७० श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
२२.	पाक्षिक (पक्खि) सूत्र	३५० श्लोक	प. पू. आ. श्री गणधर भगवंत म.
२३.	हेमकोष ग्रंथ	६ कांड, १४५२ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
२४.	संग्रहशतकम्	१०१ श्लोक	प. पू. उपा. श्री देवचंद्रजी म.
२५.	संबोध सित्तरी	१२५ श्लोक	प. पू. आ. श्री रत्नशेखरसूरिजी म.
२६.	रत्नसंचय	५५० श्लोक	प. पू. आ. श्री हर्षनिधानसूरिजी म.
२७.	जैनधर्म का परिचय		प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरिजी म.
२८.	भगवती सूत्र	१४१ शतक, १८,६१६ ग्रंथाग्र	पू. आ. श्री न. टी. अभयदेवसूरिजी म.
२९.	स्थानांग (ठाणांग सूत्र)	१० स्थान, १४,२५० ग्रंथाग्र	पू. आ. श्री न. टी. अभयदेवसूरिजी म.
३०.	बारस अणुवेक्खा	९१ श्लोक	प. पू. आ. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
३१.	मूलाचार	१,२५२ श्लोक	प. पू. आ. श्री वट्टेरकाचार्यजी म.

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
३२	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति संग्रहणी	४१४६ ग्रंथाग्र	
३३	हरिवंश पुराण	६६ सर्ग	प. पू. आ. श्री सेनाचार्यजी म.
३४	रिडर्स डायजेस्ट में से ग्रेप्वर्ड एटलास (अमेरिका)		
३५	आवश्यक चूर्णि		
३६	योगशास्त्र	४६२ श्लोक	प. पू. आ. श्री क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
३७	लोकनालिका द्वात्रिंशिका	३२ श्लोक	प. पू. आ. श्री धर्मघोषसूरिजी म.
३८	द्वादश भावना	७२ श्लोक	प.पू. श्री जयसोम मुनिजी म.
३९	आचारांग सूत्र	२५ अध्ययन, २,६५४ ग्रंथाग्र	प.पू. गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी म.
४०	क्षेत्रलोकप्रकाश		प.पू. महो. विनयविजयजी म.
४१	धवला टीका (षट्खंडागम प्रा.)	६,१७७ ग्रंथाग्र	प.पू. आ. श्री वीरसेनाचार्यजी म.
४२	त्रिलोकसार	१,०१८ गाथा	प. पू. नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती
४३	जंबुद्दीवपण्णत्तिसंगहणी	७-वक्ष., ४१४६ ग्रंथाग्र	प. पू. अज्ञात मुनिवर
४४	द्रव्यसंग्रह-टीका		प. पू. प्रभाचंद्राचार्यजी म.
४५	मंडल प्रकरण	९९ गाथा	प. पू. विनयकुशल मुनिजी म.
४६	नन्दीसूत्र-वृत्ति	७,७३२ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री मलयगिरिसूरिजी म.
४७	नन्दी चूर्णि	१,५०० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री जिनदास महत्तरजी म.
४८	जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-वृत्ति	१३,२७५ ग्रंथाग्र	
४९	तत्त्वार्थ-वृत्ति	१० अध्याय, ११,००० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
५०	आवश्यक सूत्र	अध्याय-६, सूत्र-१०५	प. पू. गणधर श्री सुधर्मास्वामी म.
५१	क्षेत्रसमास	४ अध्याय	प. पू. वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी म.
५२	बृहत्संग्रहणी	३४९ श्लोक	प. पू. आ. श्री चंद्रसूरीश्वरजी म.
५३	जीवाजीवाभिगम सूत्र	२७२ सूत्र, ४,७५२ ग्रंथाग्र	प. पू. अज्ञात पूर्वधर स्थविरजी म.
५४	प्रज्ञापना (पण्णवना) सूत्र	२,१७६ सूत्र ७,७८७ ग्रंथाग्र	प. पू. पूर्वधर श्री श्यामाचार्यजी म.
५५	सूर्यप्रज्ञप्ति	२,२०० ग्रंथाग्र	प. पू. अज्ञात पूर्वधर स्थविरजी म.
५६	चंद्रप्रज्ञप्ति	१,८५४ ग्रंथाग्र	प. पू. अज्ञात पूर्वधर स्थविरजी म.
५७	विशेषावश्यक भाष्य शिष्यहिता टीका	२२,००० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
५८	राजवार्तिक		प. पू. अकलंकदेवजी म. (दिगंबराचार्य)
५९	उत्तराध्ययन सूत्र	३६ अध्ययन / २००० ग्रंथाग्र	प. पू. प्रत्येकबुद्धजी म.
६०	नवतत्त्व प्रकरण	१३० गाथा	प.प. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.सा.
६१	सर्वार्थसिद्धि-टीका		प. पू. श्री कमलसंयमजी म.

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
६२.	नयचक्र-वृत्ति		
६३.	द्रव्यसंग्रह-मूल	५८ श्लोक	प. पू. नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीजी
६४.	तिलोयपण्णत्ति	९ अधिकार	प. पू. श्री यतिवृषभाचार्यजी म.
६५.	पंचाध्यायी-उत्तरार्ध	१,४४५ श्लोक	प. पू. अज्ञात जैनश्रमणजी म.
६६.	पंचास्तिकाय / त.प्र.	१७३ श्लोक	प. पू. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
६७.	आलापपद्धति	२२८ सूत्र, ११ अधिकार	प. पू. आ. श्री देवसेनजी म.
६८.	प्रवचनसार	२७५ श्लोक, ३ अधिकार	प. पू. आ. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
६९.	तत्त्वार्थ सूत्र	१० अध्याय	प. पू. वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी म.
७०.	ज्योतिष करंडक	४०५ श्लोक	प. पू. आ. श्री पादलिप्तसूरिजी म.
७१.	काललोकप्रकाश		प. पू. महो. श्री विनयविजयजी म.
७२.	क्षुल्लक भवावलि	२५ श्लोक	प. पू. श्री धर्मशेखरजी गणि. म.
७३.	त्रैलोक्य दीपिका	४,५१६ श्लोक, १६ अधिकार	प. पू. सकलकीर्ति भट्टारकजी
		(५०० श्लोक)	(पू. श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी म.)
७४.	कुरान		
७५.	नवतत्त्व प्रकरण ग्रंथ	६० श्लोक	प. पू. श्री अज्ञात जैनाचार्यजी म.
७६.	गोम्मटसार-जीवकाण्ड	अधिकार-२२, कांड-२	
	मूल व जीवतत्त्वप्रदीपिका	७३३ श्लोक	प. पू. श्री नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीजी
७७.	परमात्म प्रकाश	३४५ श्लोक	प. पू. श्री योगिंद्रदेवजी म.
७८.	नियमसार	१८७ श्लोक, १२ अधिकार	प.प. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
७९.	संग्रहणीरत्नम्	३४९ श्लोक	प. पू. आ. श्री चंद्रसूरिजी म.
			(अनु. आ. श्री यशोदेवसूरिजी म.)
८०.	बृहत्क्षेत्रसमास	६५५ गाथा, ५ अधिकार	प. पू. श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी म.
८१.	सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्	३५९ श्लोक	प. पू. आ. श्री सोमतिलकसूरिजी म.
८२.	देवेन्द्र-नरकेन्द्र प्रकरणम्	३७८ श्लोक	प. पू. श्री अज्ञात जैनाचार्यजी म.
८३.	ज्ञानार्णव	६ खंड / २०७७ श्लोक	प. पू. उपा. श्री देवचंद्रजी म.
८४.	त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र	१० पर्व, ३५,००० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
८५.	आराधना समुच्चय	२ अध्याय, २५२ श्लोक	प. पू. आ. श्री रविचंद्र-मुनिंद्रजी म.
८६.	आदिपुराण	४७ पर्व	प. पू. आ. श्री जिनसेनाचार्यजी म.
८७.	समवायांग सूत्र	१०३ अध्याय, १५९ सूत्र	प. पू. श्री गणधर भगवंत
		१६६७-ग्रंथाग्र	श्री सुधर्मास्वामीजी म.
८८.	सिद्धांत सारोद्धार	२१३ श्लोक	प. पू. आ. श्री चक्रेश्वरसूरिजी म.

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
८९.	लघु संग्रहणी	३० श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
९०.	कल्प आचार	२८ आचार कल्प	
९१.	वसुदेव हिन्डी	१०,४८० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री धर्मसेनसूरिजी म.
९२.	वायुपुराण	११२ अध्याय	प. पू. श्री वेदव्यासजी
९३.	ब्रह्माण्डपुराण	१५१ ऋचा	प. पू. श्री वेदव्यासजी
९४.	वराहपुराण	६३ श्लोक	प. पू. श्री वेदव्यासजी
९५.	वायुमहापुराण	११२ अध्याय	प. पू. श्री वेदव्यासजी
९६.	शिवपुराण		प. पू. श्री वेदव्यासजी
९७.	नारदपुराण		प. पू. श्री वेदव्यासजी
९८.	लींगपुराण	१०८+५५ अध्याय	प. पू. श्री वेदव्यासजी
९९.	स्कंधपुराण		प. पू. श्री वेदव्यासजी
१००.	मार्कण्डेयपुराण	१३७ अध्याय	प. पू. श्री वेदव्यासजी
१०१.	श्रीमद् भागवतपुराण	१८,००० श्लोक	प. पू. श्री वेदव्यासजी
१०२.	आग्नेयपुराण		प. पू.श्री वेदव्यासजी
१०३.	विष्णुपुराण	१२६ अध्याय	प. पू.श्री वेदव्यासजी
१०४.	कुर्मपुराण	४६ अध्याय	प. पू.श्री वेदव्यासजी
१०५.	Brahmanical Puranas		प. पू.श्री वेदव्यासजी
१०६.	प्राचीन भारत, भाग-१/२	गुजरात युनिवर्सीटी	हरिप्रसाद गंगाशंकर शास्त्रीजी
१०७.	संस्कृति के ४ अध्याय	लोकभारती	रामधारी सिंह दिनकर
१०८.	विचारसार	२ अधिकार, ३२० श्लोक	प. पू. उपा. श्री देवचंद्रजी म.
१०९.	सूयगडांग सूत्र	२३ अध्याय	प. पू. श्री गणधर भ. सुधर्मास्वामीजी म.
११०.	महाभारत-उपायन पर्व	१८ पर्व	प. पू. श्री वेदव्यासजी
१११.	कौन क्या कहता हैं ?		प. पू. पं. श्री अभयसागरजी म.
११२.	शत्रुंजय महात्म्य	१५ अध्याय, ८,५५० ग्रंथागं	प. पू. आ. श्री हंसरत्नसूरिजी म.
११३.	मिस्टिरियस युनिवर्स (रहस्यपूर्ण विश्व)		Jame Jeans (London) (1930)
११४.	धर्मयुग (हिन्दी-मासिक)		प. पू. मुनि श्री तीर्थभद्रवि. म.
११५.	बृहत्क्षैत्रविचारवृत्ति		
११६.	श्रीनियलक्षेत्रविचारवृत्ति		
११७.	जैन भारती (हिन्दी-मासिक)		
११८.	इंडियन फिलोसोफी		पू. कृष्णकुमार दीक्षित (१९७७)
११९.	ज्ञाताधर्मकथा	१९ अध्ययन, ३,८०० ग्रंथाग्र	पू. आ. श्री न. टी. अभयदेवसूरिजी म.

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
१२०.	आओ लोक की सैर करे		पू. आ. श्री विजयराजसूरीश्वरजी म. सा.
१२१.	देवेन्द्रस्तव पयन्ना	३११ श्लोक	प. पू. श्री ऋषिपालितजी म.
१२२.	सूयगडांग चूर्णि		
१२३.	आचार रत्नाकर दीपिका रत्नसागर/भाग-२		
१२४.	ग्रेट डिझाइन		
१२५.	तत्त्वज्ञान स्मारिका	स्मृति ग्रंथ	प. पू. आ. श्री अशोकसागरजी म.
१२६.	तित्थोगाली पयन्ना	१,२३३ श्लोक	प. पू. आ. श्री अज्ञात जैनाचार्यजी म.
१२७.	शतपंचाशितिका संग्रहणी	१८६ श्लोक	प. पू. आ. श्री उत्तमऋषिजी म.
१२८.	मज्झिम निकाय		प. पू. श्री बुद्ध भगवानजी
१२९.	वैदिक साहित्य		प. पू. गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर
१३०.	तत्त्व-निर्णय प्रासाद स्तंभ		प. पू. आ. श्री आत्मारामजी म.सा.
१३१.	शास्त्रसार समुच्चय	४ अध्याय	प. पू. आ. श्री माघनंदी (दिगंबराचार्य)
१३२.	दि वार ऑफ दि वर्ल्डस्		H.N.Well (London)
१३३.	कोसमोस	(मेगेझिन पुस्तक)	नगेन्द्र विजय
१३४.	उपासकदशांग सूत्र	१० अध्याय	प. पू. गणधर भ. श्री सुधर्मास्वामीजी म.
१३५.	अनुयोगद्वार सूत्र	३८ प्रकरण, २,०८५ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री आर्यरक्षितसूरिजी म.
१३६.	धर्मसंग्रह-सटीक	४ प्रकरण / १५९ श्लोक	प. पू. महो. मानविजयजी म.
१३७.	ललितविस्तरा-वृत्ति	१,५४५ श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
१३८.	अढीद्वीप नक्शानी हकिकत		प. पू. भीमसिंह माणेकजी
१३९.	सकलतीर्थ सूत्र	१५ - गाथा	प. पू. कीर्तिविजयजी म.सा.
१४०.	तत्त्वज्ञान प्रवेशिका		
१४१.	उपमिति भव प्रपंचा कथा	प्रस्ताव - ८ / १६००० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री सिद्धर्षिगणि म.
१४२.	नंदीश्वरकल्प	४८ श्लोक	प. पू. आ. श्री जिनप्रभसूरिजी म.
१४३.	नंदीश्वरस्तोत्र	२५ श्लोक	प. पू. आ. श्री जिनवल्लभसूरिजी म.
१४४.	राजप्रश्नीय सूत्र	१७५ सूत्र / २१०० ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री अज्ञात पूर्वधरस्थविर म.
१४५.	शाश्वत चैत्यस्तव	२४ श्लोक	प. पू. आ. श्री देवेंद्रसूरिजी म.
१४६.	नंदीश्वरस्तव	१५ श्लोक	प. पू. आ. श्री जैनचंद्रसूरिजी म.
१४७.	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति संग्रहणी	२२५ श्लोक	प. पू. आ. श्री अज्ञात जैनश्रमणजी म.
१४८.	रिवोलूशन ऑफ द हेवनली बॉडीझ		
१४९.	फ्लेट अर्थ न्युझ		

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
१५०.	महापुराण	१०२ संधि	प. पू. पुष्पदंत महाकवि
१५१.	महापुराण (आदिनाथपुराण)	४७ पर्व	प. पू. आ. श्री जिनसेनाचार्यजी म.
१५२.	महापुराण (उत्तरपुराण)	७७ अध्याय	प. पू. आ. श्री गुणभद्रसूरिजी म.
१५३.	तंत्रदर्शन (इतर साहित्य)	मेघ प्रकाशन, दिल्ली	प. पू. गोविंद शास्त्रीजी
१५४.	सेनप्रश्नोत्तर	४ उल्लास, १,०१४ प्रश्न	प. पू. आ. श्री सेनसूरिजी म.
१५५.	जीवसमास-वृत्ति	६,६२७ ग्रंथाग्र	पू. आ. श्री मलधारी हेमचंद्रसूरिजी म.
१५६.	Discovery of India		प. पू. श्री जवाहरलाल नहेरु
१५७.	भगवती आराधना, मूल	२,१७० श्लोक	प. पू. आ. श्री शिवार्यसूरि म.
१५८.	भवभावना	५३१ श्लोक	पू. आ. श्री मलधारी हेमचंद्रसूरिजी म.
१५९.	वसुनन्दि श्रावकाचार	५४६ श्लोक	प. पू. आ. श्री वसुनंदी सैद्धांतिक
१६०.	महानिशिथ ग्रंथ	६ अध्याय, ४,५४४ ग्रंथाग्र	पू. श्री गणधर भ. सुधर्मास्वामीजी म.
१६१.	श्रीमद्भागवतपुराण (छायानुवाद)	सुबोधिनी भाग - १ / २	प. पू. पुरुषोत्तम चरण
१६२.	जातकअट्ठकथा		प. पू. बुद्धघोष आचार्यजी
१६३.	दिव्यावदान		प. पू. श्री G. Tucci
१६४.	संयुक्तनिकाय		प. पू. श्री बुद्ध भगवान
१६५.	अंगुत्तरनिकाय		प. पू. श्री बुद्ध भगवान
१६६.	महावग्ग		प. पू. अज्ञात ऋषि
१६७.	कोकालियसुत्त		
१६८.	योगदर्शन व्यास-भाष्य मूल		प. पू. श्री वेदव्यासजी
१६९.	योगदर्शन व्यास-भाष्य टीका		प. पू. वाचस्पति मिश्र
१७०.	रिष्टसमुच्चय ग्रंथ	२६१ श्लोक	प. पू. दुर्ग देवाचार्यजी म.
१७१.	कृष्णराजीविमानविचार	१८ श्लोक	प. पू. आ. श्री जयशेखरसूरिजी म.
१७२.	विचारसप्ततिका	८१ श्लोक	प. पू. आ. श्री महेन्द्रसूरिजी म.
१७३.	श्रेणिक चरित्र	२ सर्ग	प. पू. आ. श्री क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
१७४.	लब्धिस्तोत्र ग्रंथ		
१७५.	पंचवस्तुक ग्रंथ	१,७१४ श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
१७६.	चैत्यवंदन भाष्य(संघाचार टीका)		प. पू. आ. श्री धर्मघोषसूरिजी म.
१७७.	उपदेशमाला (कर्णिका टीका)	१२,२७४ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री उदयप्रभसूरिजी म.
१७८.	योगशास्त्र (स्वोपज्ञ-वृत्ति)		प. पू. आ. श्री क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
१७९.	''शतक'' पंचम कर्मग्रंथ	१०० गाथा	प. पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.
१८०.	व्यवहार सूत्र	१० उद्देशक	प. पू. आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी म.

क्रम	ग्रंथनाम	प्रमाण	कर्ता
१८१.	जीवविचार प्रकरण	५१ श्लोक	प. पू. आ. श्री शांतिसूरिजी म.
१८२.	पंचास्तिकाय-मूल	१७३ श्लोक	प. पू. आ. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
१८३.	नयचक्र बृहत्		प. पू. उपा. श्री देवचंद्रजी म.
१८४.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	४८९ श्लोक	प. पू. आ. श्री कार्तिकेयस्वामीजी म.
१८५.	पंचसंग्रह-प्राकृत	१,७०५ श्लोक	प. पू. नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती
१८६.	पंचसंग्रह-संस्कृत		प. पू. आ. श्री अज्ञात विद्वानश्री
१८७.	संथारग पयन्ना	१२२ गाथा	प. पू. आ. श्री वीरभद्रसूरिजी म.
१८८.	निगोद षट्त्रिंशिका	३६ श्लोक	प. पू. आ. श्री रत्नसिंहसूरिजी म.
१८९.	षट्खंडागम	६,१७७ अध्याय	प. पू. श्री पुष्पदंत महाकविजी
१९०.	औपपातिक सूत्र (मूल)	४३ सूत्र	प. पू. आ. श्री पूर्वधर स्थविर भगवंतश्री
१९१.	तत्त्वानुशासन	२५९ श्लोक	प. पू. श्री नागसेन मुनिजी म.
१९२.	गोम्मटसार कर्मकाण्ड जीवतत्त्व प्रदीपिका		प. पू. नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीजी
१९३.	''कर्मविपाक''प्रथम कर्मग्रंथ	६० श्लोक	प. पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.
१९४.	सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार	१५० श्लोक	प. पू. आ. श्री जिनवल्लभगणि म.
१९५.	विभक्तिविचार	१४१ श्लोक	प. पू. आ. श्री अमरचंद्रसूरिजी म.
१९६.	कषायपाहुड	२३३ श्लोक	प. पू. आ. श्री गुणधरसूरिजी म.
१९७.	भावपाहुड-टीका	१५१ श्लोक	प. पू. आ. श्री कुंदकुंदाचार्यजी म.
१९८.	द्रव्यसंग्रह-मूल	५८ श्लोक	प. पू. नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीजी
१९९.	पंचसंग्रह प्राकृत-टीका		
२००.	कर्मबत्रिशी	३२ श्लोक	प. पू. आ. श्री भानुलब्धिजी म.
२०१.	तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक		प. पू. आ. श्री पूर्वधर-स्थविर कृत
२०२.	जीवाजीवाभिगम संग्रहणी		
२०३.	आराधना पताका-१	९९० गाथा	प. पू. आ. श्री वीरभद्रसूरिजी म.
२०४.	मार्गणासुबंधहेतूदयत्रिभंगी	६५ श्लोक	प. पू. गणि. श्री हर्षकुलवि. म.
२०५.	''षड्शीति''चतुर्थ कर्मग्रंथ	८६ श्लोक	प. पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.
२०६.	सूक्ष्मार्थसंग्रहप्रकरणम्	२०२ श्लोक	प. पू. आ. श्री जयतिलकसूरिजी म.
२०७.	''कर्मस्तव''द्वितीय कर्मग्रंथ	३४ श्लोक	प. पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.
२०८.	प्रशमरति	३१३ श्लोक, २२ अधिकार	प. पू. वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी म.
२०९.	जीवसमास-वृत्ति	६,६२७ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री मलधारी हेमचंद्रसूरिजी म.
२१०.	कर्मप्रकृति (कम्मपयडी)	४७५ श्लोक	प. पू. पूर्वधर आ. श्री शिवशर्मसूरिजी म.
२११.	पंचसंग्रह(भाग १/२)	९९१ श्लोक	प. पू. आ. श्री चंद्रमहत्तराचार्यजी म.
२१२.	उदयस्वामित्व	९७ श्लोक	प. पू. आ. श्री वीरशेखरसूरिजी म.
२१३.	उदीरणास्वामित्व		प. पू. आ. श्री वीरशेखरसूरिजी म.
२१४.	सत्तास्वामित्व	४२ श्लोक	प. पू. आ. श्री वीरशेखरसूरिजी म.
२१५.	उपशमनाकरण	२१२ श्लोक	प. पू. मुनि श्री गुणरत्न वि. म.
२१६.	उपशमश्रेणी		प. पू.सा. श्री. हर्षगुणाश्रीजी म.
२१७.	क्षपकश्रेणी (खवगसेढी)	२७१ श्लोक	प. पू. मुनि श्री गुणरत्नवि. म.
२१८.	देशोपशमना		प. पू. मुनि श्री गुणरत्नवि. म.
२१९.	अभिधानचिंतामणीनाममाला	६ कांड, १,४५२ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री. क.स. हेमचंद्रसूरिजी म.
२२०.	लघुक्षेत्रसमास	८८ श्लोक	पू. आ.श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजी म.
२२१.	हितोपदेशमाला	५२५ श्लोक	प. पू. आ. श्री प्रभानंदसूरिजी म.
२२२.	पंचवत्थुगं	१,७१४ श्लोक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
२२३.	नवतत्त्वभाष्य	१३८ श्लोक	प. पू. आ. श्री अभयदेवसूरिजी म.
२२४.	पंचाशक	९४० गाथा १९ पंचाशक	प. पू. आ. श्री हरिभद्रसूरिजी म.
२२५.	आराधना पताका	९३२ श्लोक	प. पू. आ. श्री अज्ञात जैनश्रमण म.
२२६.	चरणकरणमूलउत्तरगुण	५५ श्लोक	प. पू. आ. श्री चक्रेश्वरसूरिजी म.
२२७.	चंदावेज्झयं पयन्ना	१७५ श्लोक	प. पू. आ. श्री पूर्वधर स्थविरजी म.
२२८.	अणगारधर्मामृत	९ अध्याय / ९५४ श्लोक	प. पू. श्री आशाधर भट्टजी
२२९.	चारित्रसार	१,७०० ग्रंथाग्र	प. पू. श्री चामुंडरायजी म.
२३०.	शिवपुराण		प. पू. श्री वेदव्यासजी
२३१.	कल्पसूत्र	९ व्या. १,२१६ ग्रंथाग्र	प. पू. आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी म.
२३२.	ईशानसंहिता		प. पू. आ. श्री अज्ञात कर्तृ कृत
२३३.	सर्वतीर्थमहर्षिकुलकम्	२६ श्लोक	प. पू. आ. श्री जिनेश्वरसूरि शिष्य
२३४.	एकविंशतिस्थानप्रकरणम्	६६ श्लोक	प. पू. आ. श्री सिद्धसेनसूरिजी म.
२३५.	अष्टापदजी पूजा	८ ढाल	प. पू. मुनि श्री दीपविजयजी म.

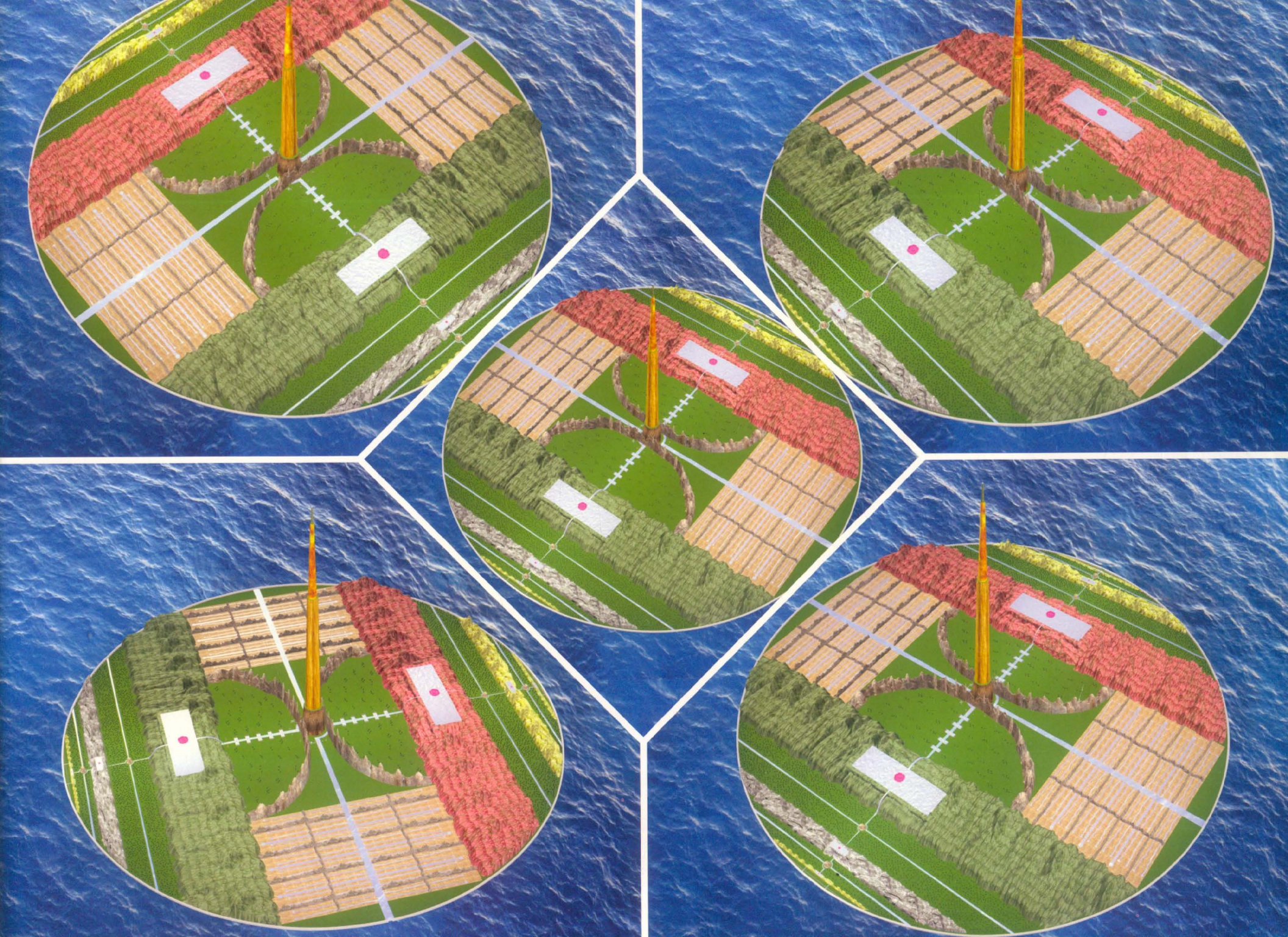

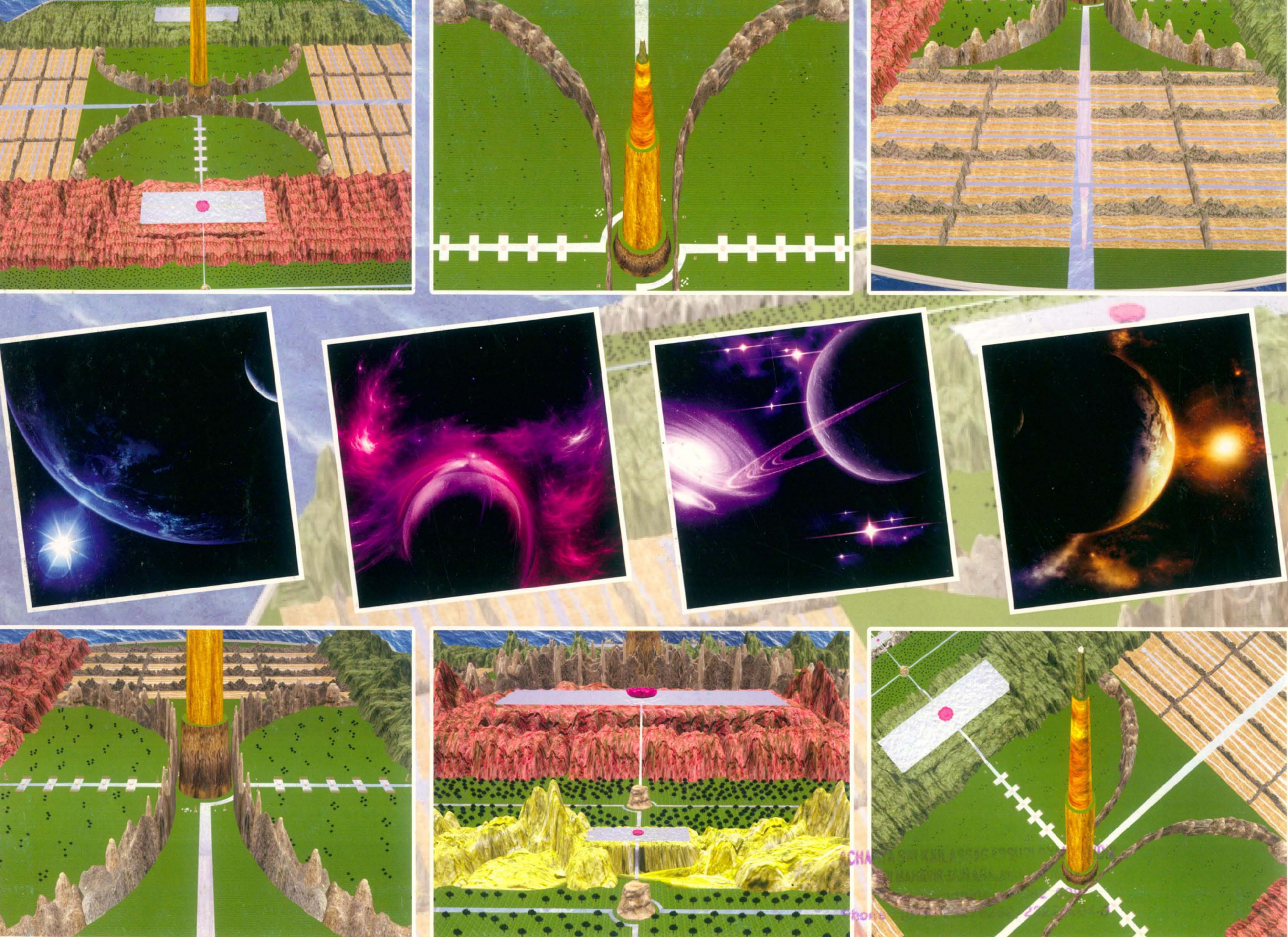

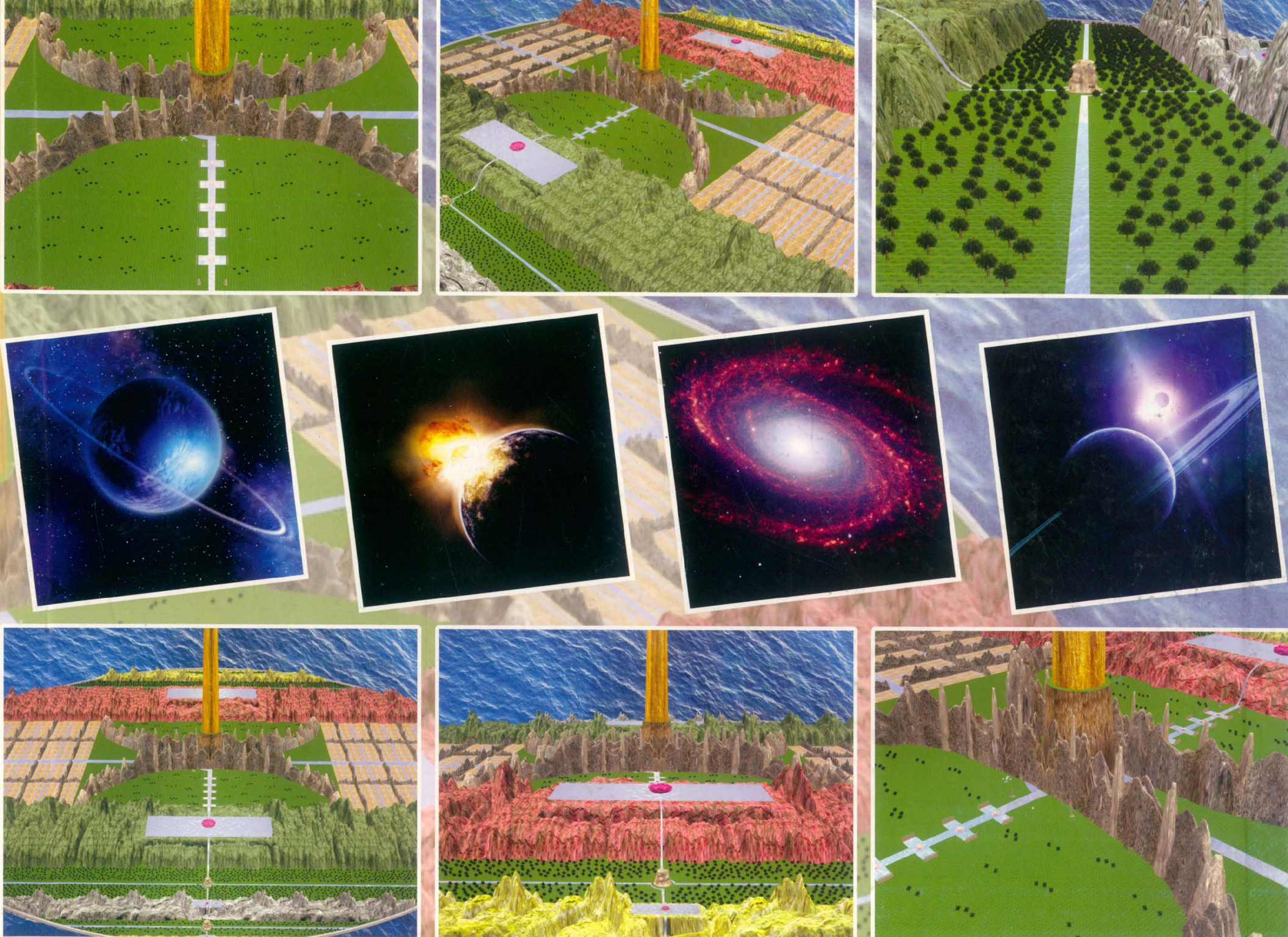

सचित्र तत्वज्ञान का नया नजराना
ILLUSTRATED
THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड
JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....
PART - 1
पावन प्रेरणा
प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
प. पू. प्रवचन प्रभावक आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा.
PART - 2
PART - 3
PART - 4
PART - 5
Printed By
NAVRANG
9428 500 401
Design By
Omkargraphics
9408031622